दक्षिण एशिया में सहयोग एवं भारत की विशेष भूमिका
(1985 - 1995)
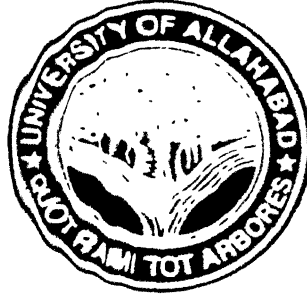
इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० दिवाकर दत्त कौशिक

प्रवक्ता

राजनीति विज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्ता

सीमा सिंह

एम०ए०

राजनीति विज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

राजनीति विज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद (उ०प्र०)

2002
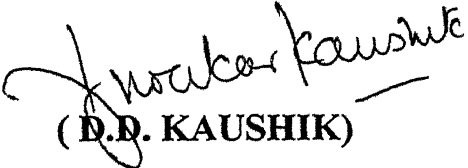
Dr. D.D. Kaushik
Political Science Department
University of Allahabad
Allahabad-211002

HIG-A-15 ADA Flats,
2, Circular Road
Allahabad-211001
Phone : 0532-2622981

Date 21.12.2002

This is to certify that the work submitted here for the D.Phil degree of the University of Allahabad entitled; **"Dakshin Asia Mein Sahyog Avam Bharat ki Vishesh Bhumika"** is original work of the candidate Seema Singh.

The candidate has so for as I know, fulfilled all the conditions laid down for submission of this thesis.

(D.D. KAUSHIK)

—: विषय सूची :—

प्राक्कथन

आभार प्रदर्शन

अध्याय-1 : दक्षिण एशिया एक संक्षिप्त परिचय 1—35

अध्याय-2 : भारत का अन्य दक्षिण एशियाई देशों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध एवं महाशक्तियाँ 36—95

अध्याय-3 : दक्षिण एशिया में सहयोग एवं विवाद के आधार तथा सार्क का उद्भव 96—139

अध्याय-4 : दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ के विभिन्न सम्मेलन 140—232

अध्याय-5 : दक्षिण एशिया में भारत की विशेष भूमिका 233—249

निष्कर्ष एवं सुझाव 250—261

सन्दर्भित ग्रन्थ 262—265

द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर काल में विश्व की महाशक्तियों (अमेरिका तथा सोवियत रूस) के नेतृत्व में पृथक पृथक रूप से सहयोग का दौर चला। साम्यवाद से भयभीत संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप के देशों ने अमेरिका के नेतृत्व में सहयोग के नाम पर कई संगठन गठित किये गये जिससे उन्हें स्थायित्व और सुरक्षा प्राप्त हो सके। सोवियत संघ भी पिछड़ने वाले देशों में नही था, प्रतिक्रिया स्वरूप उसने भी कुछ देशों के साथ सहयोगात्मक सन्धि को अन्जाम दिया। परन्तु ये संगठन मात्र सैनिक संगठन ही बन सके तथा इनसे विश्व में सैनिक प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई और विश्व द्विध्रुवीयकरण की ओर उन्मुख हुआ।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीय सहयोग आकर्षण का केंन्द्र बिन्दु रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व जापान द्वारा अपने साम्राज्यिक लिप्सा की पूर्ति हेतु छद्म रूप से क्षेत्रीय सहयोग की बात की गयी थी। जापान का उद्देश्य सुदूरपूर्व तथा दक्षिण पूर्व एशिया देशों पर आधिपत्य जमाना था। परन्तु कालान्तर में ऐसा सहयोग स्थिर नहीं हो सका।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका के नेतृत्व में 1949 में सर्वप्रथम यूरोपीय देशों द्वारा नाटो की स्थापना हुई जो मुख्य रूप से एक सुरक्षात्मक संगठन था। सन् 1955 में सोवियत रूस के नेतृत्व में वारसा पैक्ट की स्थापना हुई जो नाटो की ही भाँति एक सैन्य संगठन था। इसके बाद सन् 1956 में ई० ई० सी० एवं सन् 1958 ई० एफ० टी० ए० स्थापित हुए। इन संगठनों का प्रमुख उद्देश्य पश्चिमी यूरोपीय देशों की आर्थिक एवं व्यापारिक नीतियों में समन्वय बनाना था। इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण क्षेत्रीय सहयोग के कई उदाहरण हैं—सन् 1949 में स्थापित साम्यवादी देशों का आर्थिक संगठन कामकान, 1959 में स्थापित लैटिन अमेरिकी देशों का मुक्त व्यापार संघ, कैरिबियन देशों का मुक्त व्यापार संघ, अरबलीग, ओ० ए० यू० इत्यादि। इसी प्रकार दक्षिण पूर्व एशियाई देशों ने क्षेत्रीय सहयोग को आसियान के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

पूर्व तथा पश्चिमी यूरोप, उत्तर और दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका और खाड़ी के देशों ने भी अन्तत: अपने को विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों में आबद्ध कर लिया परन्तु दक्षिण एशिया का क्षेत्र इस प्रकार के सहयोग से

वंचित रहा। कालान्तर में दक्षिण एशिया में भी तीव्र विकास हेतु एंक क्षेत्रीय सहयोग संगठन की आवश्यकता महसूस की गयी। दक्षिण एशिया के सभी देश अल्पविकसित देशों के वर्ग में आते हैं। इन देशों में अधिकांशत: साम्यता होने के बावजूद सार्क की स्थापना के पूर्व इनके पास इस प्रकार के क्षेत्रीय सहयोग हेतु कोई संगठनात्मक अथवा संस्थात्मक व्यवस्था का अभाव था। दक्षिण एशियाई क्षेत्रों की जनता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने इस क्षेत्र को क्षेत्रीय स्तर पर एक सहयोगात्मक संगठन की स्थापना की और प्रेरित किया।

सार्क का शाब्दिक अर्थ कहीं पर दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन तथा कहीं पर दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ मिलता है, परन्तु अधिकांशत: प्रयोग दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ शब्द का ही किया गया है, जो अंग्रेजी के Association शब्द के अधिक नजदीक प्रतीत होता है। अत: संघ का प्रयोग किसी भिन्न रूप में न होकर संगठन के रूप में ही किया गया है।

सार्क के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ करने में सक्रीय भूमिका मई, 1980 में सर्वप्रथम बांग्लादेश के तत्कालीन राष्ट्रपति जनरल जियाउर रहमान को निभाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यद्यपि इसके पूर्व (1945 में) पं० जवाहर लाल नेहरू ने भारत, ईरान, ईराक, अफगानिस्तान तथा वर्मा आदि राष्ट्रों को मिलाकर क्षेत्रीय संगठन स्थापित करने का विचार किया था। कुछ राजनीतिक उथल पुथल के उपरान्त अन्तत: 7 दिसम्बर, 1985 को भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान तथा मालद्वीव इन सात राष्ट्रों को मिलाकर दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ की स्थापना की गयी। सार्क को एक राजनीतक संगठन नहीं कहा जा सकता। चूँकि इस संगठन में समानता का सिद्धान्त लागू होता है इसलिए यह क्षेत्रीय संगठनों से अपनी प्रकृति में पृथक् तथा मौलिक है।

दक्षिण एशिया के सभी देश अपने सहयोग संघ सार्क के माध्यम से विभिन्न सम्मेलनों के द्वारा निर्णायक दौर में पहुँच गये हैं। क्योंकि जहाँ एक ओर इन देशों में अत्यधिक गरीबी, अशिक्षा, तीव्र जनसंख्या वृद्धि, जातीय तनाव तथा राजनीतिक मतभेद अपने उच्चस्तर पर विद्यमान वहीं है दूसरी ओर ये अपने सहयोग के माध्यम से उक्त चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रतिबद्ध नजर आते हैं। दक्षिण एशियाई क्षेत्र में सार्क को अपने सदस्य देशों के बीच विवादों को समाप्त करने की तकनीकि तथा आर्थिक सहयोग की एक मुक्ति

के रूप में देखा जा रहा है। सार्क के सातवें शिखर सम्मेलन ढाका 1993 में पारित साप्टा (दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार समझोता) इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

एशिया महाद्वीप के मानचित्र पर दक्षिण एशिया का सामरिक महत्व इसके भौगोलिक तथा भू-राजनीतिक अवस्थिति के वजह से है। हिमालय के दक्षिण में अवस्थित एक क्षेत्र के रूप में दक्षिण एशियाई क्षेत्र में भारत, पाकिस्तान बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान तथा मालद्वीव देश शामिल हैं। दक्षिण एशिया का औपनिवेशिक काल के बाद का इतिहास स्थायी रूप से संघर्ष तथा तनाव का इतिहास रहा है विशेष रूप से इस क्षेत्र के देश, भारत और पाकिस्तान के बीच में और यही कारण है इस उपमहाद्वीप का शान्तिमाय वातावरण प्राय: तनाव से प्रभावित रहा है। महाशक्तियों की नीतियों ने भारत और पाकिस्तान के प्रतिस्पर्धा में और वृद्धि की है जिससे इन दोनों देशों के बीच सम्बन्ध प्राय: जटिल रहे हैं। परिणामस्वरूप दक्षिण एशिया महाशक्तियों के अस्त्र शस्त्र निर्यात का एक अखाड़ा बना हुआ है।

यद्यपि सार्क का प्रमुख उद्देश्य क्षेत्रीय सहयोग है परन्तु सार्क सदस्य देशों की भौगोलिक स्थिति इसकी सफलता का निर्णायक सूत्र नहीं है। सदस्य देशों के मध्य कतिपय मुद्दों पर विद्यमान तनाव व उन पर अन्य क्षेत्रों का प्रभाव इसमें गतिरोध को जन्म दे सकता है। भारत व पाकिस्तान दो बड़े सदस्य राष्ट्रों में पारस्परिक सम्बन्ध मधुर नहीं है। पश्चिम के कूटनीतिक राष्ट्र इन देशों के सम्बन्धों के स्वत: नियन्ता बनकर दक्षिण एशिया में अपना प्रभुत्व जमाना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, पाकिस्तान को अमेरिका द्वारा शस्त्रास्त्र की आपूर्ति करना, श्रीलंका में तमिल समस्या भारत मं जारी उग्रवादी कार्यवाही में पाकिस्तान का अप्रत्यक्ष सहयोग इत्यादि। दूसरी तरफ पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल पर चीन का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत है। चीन की नीति मुख्यत: भारत के विरुद्ध ही रही है। इन परिस्थितियों के चलते सार्क को अपनी सफलता हेतु विषम स्थितियों का सामना करना पड़ेगा। सार्क सम्मेलनों के पार्श्वगामी एवं दूरगामी प्रभावों की चर्चा करने पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह प्रकट होती है कि सम्मेलन के व्यवहार पर चाहे असर कम पड़े परन्तु भारत के पड़ोसियों के मध्य भावनात्मक वातावरण की सृष्ट अवश्य हुई है।

सार्क सदस्य देशों के साथ भारत का प्राचीन समय से ही किसी न किसी रूप में ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है। यह कहना अनुचित न होगा कि भारत इस क्षेत्र की केन्द्रीय शक्ति

रहा है और जिसकी उपेक्षा किसी भी रूप में नही की जा सकती। यही वजह है कि सार्क की स्थापना तथा इसकी सफलता में भारत का अपना विशेष महत्व एवं योगदान रहा है। इसकी महानता का प्रमाण स्व० प्रधानमंत्री इन्दिरागाँधी एवं स्व० प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के इस कथन से ही लग जाता है कि यद्यपि भारत इस क्षेत्र का बड़ा देश है। यह सुरक्षा व्यवस्था, आर्थिक विकास तकनीकी ज्ञान एवं जनशक्ति में भी अग्रिम है। किन्तु फिर भी यह समानता एवं समान प्रभुसत्ता में विश्वास रखता है और किसी भी प्रकार का प्रभुत्व इस क्षेत्र में दिखाना नहीं चाहता। यही कारण है कि सार्क चार्टर छोटे बड़े राज्य या क्षेत्रीय भेदभाव को पृथक् करते हुए समान प्रभुसत्ता एवं पारस्परिक सहयोग आदि जैसे मानवीय तत्वों को आधार बनाकर इसकी कार्ययोजना पर बल दिया गया है। इस संगठन की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें कोई भी निर्णय सातों सदस्य देशों के सामूहिक मतैक्य के आधार पर लिया जाता है, जिसमें ठोस समानता की भावना प्रतिबिम्बित है।

सार्क संगठन पर अब तक उपलब्ध साहित्य प्रायः घटनाक्रम की पृष्ठभूमि पर आधारित है परन्तु यह शोधग्रन्थ केवल घटनाक्रम का विश्लेषण ही न होकर तथ्यों के क्रिया प्रतिक्रियाओं पर आधारित विकास क्रम को नवीन रूप में अभिव्यक्त करता है। शोध का मुख्य उद्देश्य यह है कि इस संगठन की आन्तरिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए तथा विश्व के संगठनों की तुलना में उनका मूल्यांकन करते हुए भारतीय भूमिका एवं योगदान को उभारकर सामने लाया जाय, जिसके कारण सार्क का अस्तित्व न केवल सुरक्षित हुआ है अपितु स्थायित्व भी प्राप्त हुआ है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में ऐतिहासिक विश्लेषण आलोचनात्मक एवं समीक्षात्मक पद्धति के आधार पर विचारों को समक्ष रखने का प्रयास किया गया है। जिसमें अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा में लिखित प्राथमिक एवं सहायक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। शोधग्रन्थ में प्रयोग किये गये स्रोतों का विवरण इस प्रकार है—एशियन रिकार्डर, इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्स, सार्क चार्टर, अधिकारिक घोषणाएँ, सार्क के सभी राष्ट्राध्यक्षों द्वारा शिखर सम्मेलनों के अवसर पर औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप में दिये गये वक्तव्य संसदीय वक्तव्य, फारेन अफेयर्स रिपोर्ट्स विशषज्ञों के ग्रन्थों का अवलोकन, पत्र-पत्रिकायें, लेख विश्वसनीय समाचार पत्र एवं अन्य सम्बन्धित साहित्य आदि।
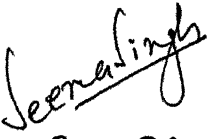
आभार

इस शोध अध्ययन में विषय चयन से लेकर कार्य की पूर्णता तक अतुलनीय सहयोग, प्रोत्साहन, असीम धैर्य व सौम्यता के प्रतीक परम श्रद्धेय निर्देशक डॉ० दिवाकर दत्त कौशिक का उल्लेख करना चाहती हूँ, जिनकी प्रेरणा व मार्ग दर्शन से यह शोध कार्य पूर्ण हो सका।

मैं ऐसे स्नेहिल व्यक्तित्व, आत्मीय मार्ग दर्शक के अमूल्य योगदान के प्रति शत-शत आभारी एवं कृतज्ञ हूँ।

सहयोग की अगली कड़ी में मैं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रति अत्यन्त आभारी हूँ जिसके सभी अधिकारियों व कर्मचारियों के सहयोगपूर्ण व्यवहार से मुझे संदर्भित ग्रन्थ उपलब्ध हुए।

अंत में उन सभी मित्रों व सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मुझे सहयोग दिया।

Seema Singh

सीमा सिंह

दक्षिण एशिया के देश ही भारत के निकटतम पड़ोसी देश भी है। नेपाल को छोड़कर सम्पूर्ण दक्षिण एशिया द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व ब्रिटिश प्रशासन के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में था। दौ सौ वर्षों के ब्रिटिश सासन ने विरासत के रूप में दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के लिए लगभग एक तरह की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याएं छोड़ी। औपनिवेशिक काल में भी इस क्षेत्र के देशों की अर्थव्यवस्था काफी निम्नस्तर की थी। आजादी के बाद इस क्षेत्र में अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार कुल विदेशी व्यापार की अपेक्षा लगभग 8 प्रतिशत ही रहा हैं। यदि हम दक्षिण एशियाई देशों की अर्थव्यवस्था पर दृष्टिपात करे तो हम यह जान पायेगें कि दक्षिण एशियाई देशों मं विद्यमान कुछ समस्याओं में काफी समानता दृष्टिगत है। उदाहरण स्वरूप अशिक्षा, कानून, चिकित्सा, प्रतिव्यक्ति निम्न आय, जनसंख्या विस्फोट, कुपोषण, गरीबी आदि और अर्थव्यवस्था के द्वितीय पहलू पर ध्यान केन्द्रित करे तो सभी दक्षिण एशियाई देश पूर्ण रूप से कृषि पर निर्भर है तथा इसमें मौजूद बेरोजगारी, व्यापारिक प्रतिकूलता, निम्नश्रम उत्पादकता असमान आय, निम्नस्तरीय उपभोग, आर्थिक संरचना की कमी इत्यादि समस्याए लगभग एक सी है।

कई दशको के बाद जो उपलब्धिया प्राप्त हुई जैसे आर्थिक संरचना में विस्तार, राष्ट्रीय आय में बढ़ोत्तरी और मानव श्रम शक्ति में विकास इत्यादि, उनसे मुख्यत: उच्च सामाजिक आर्थिक वर्ग ही लाभान्वित हुए गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी जैसी मुख्य समस्याएं तो दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के लिए यथावत् बनी है जिनके हल के लिए गम्भीर अनुसन्धान की आवश्यकता है। साधारणतया जनसंख्या में तीव्र वृद्धि दर ही आर्थिक और राजनीतिक स्थिरता में बाधकतत्व है। इन समस्याओं से निजात पूर्ण मनोयोग पूर्वक क्षेत्रीय सहयोग के द्वारा ही पाया जा सकता है और क्षेत्रीय सहयोग में आर्थिक सहयोग का महत्वपूर्ण स्थान है जिसे सफल बनाने हेतु राजनीतिक धार्मिक तथा विचारात्मक स्तर पर सहयोग की आवश्यकता है।

दक्षिण एशियाई देशों का आयात निर्यात विश्व की तुलना में काफी कम है 'सार्क' देश विश्व के निर्यात का मात्र 0.6% ही निर्यात करते है तथा इसी प्रकार आयात केवल 1.2% है। दक्षिण एशियाई सभी देश खाद्यान्न का आयात करते है परन्तु भारत को छोड़कर दक्षिण एशियाई अन्य देश खाद्यान्न उत्पादन में अभी आत्मनिर्भरता हासिल नहीं कर पाये है।

दक्षिण एशियाई क्षेत्रों में विगत वर्षों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व सैनिक व्यय में वृद्धि का रहा है। 1978 के वर्ष में इस सम्पूर्ण क्षेत्र का सैनिक व्यय 4.3 बिलियन अमेरिकी डालर था जो कि कुल जी० एन० पी० का 3% था। 1981 में सैनिक व्यय ने 7 बिलियन अमेरिकी डालर से ऊपर छलांग लगा ली जो कि कुल जी० एन० पी० का 4.5% था।[1]

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ के देशों में जहाँ धार्मिक दृष्टि से कुछ समानताओं एवं असमानताओं ने तनाव को जन्म दिया है वहीं सहयोग का मार्ग भी प्रशस्त किया है। भारत धर्म निरपेक्षता पर जोर देता है और पाकिस्तान तथा बांग्लादेश द्वारा स्वयं को इस्लामिक राज्य घोषित किया गया। पाकिस्तान में इस्लाम और उर्दू, बांग्लादेश में इस्लाम और बंगाली, श्रीलंका में बौद्ध तथा सिंहली, इसी तरह भूटान में बौद्धवाद, नेपाल में हिन्दुत्व, मालद्वीव में इस्लाम धर्म राज्य द्वारा पोषित है। इन देशों में कुछ अल्पसंख्यक जातियाँ भी निवास करती है जिनका सम्बन्ध दूसरे देशों से स्थापित किया जाता है जैसे श्रीलंका में तमिल, पाकिस्तान और बांग्लादेश में हिन्दू, जो कि तनाव का एक कारण रहा है। इन अल्पसंख्यक जातियों की भावात्मक लगाव दूसरे देशों से रहा है जिससे सहयोगात्मक प्रवृत्ति प्रकट हुई है।

राजनीतिक दृष्टि से भारत और श्रीलंका में निर्वाचित संसद और राजनीतिक दलों का अस्तित्व रहा है। बांग्लादेश और पाकिस्तान में सैनिक शासन का अपना एक इतिहास मौजूद है लेकिन विगत् कुछ वर्षों से इन देशों ने भी प्रजानन्त्र में अपनी जड़े जमाना प्रारम्भ कर दिया है। भूटान और मालद्वीव में राजनीतिक दलों का अस्तित्व स्वीकार्य नहीं है। यही बात नेपाल पर भी लागू थी परन्तु वर्तमान में वहां भी प्रजातन्त्र कायम हो गया है। इस प्रकार 'सार्क' के अधिकतर राष्ट्र प्रजातन्त्र की राह पर निरन्तर अग्रसर है। भारत विश्व में सबसे बड़े लोकतान्त्रिक गणराज्य के रूप में प्रतिष्ठित है। इन देशों में राजनीतिक स्थायित्व का होना आपसी सहोयग के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अन्तर्राष्टीय शक्ति सन्तुलन में भारत और भूटान को छोड़कर शेष अन्य 'सार्क' के देशों का आकर्षण अमेरिका से रहा है।

---

1. पान्डा, राजाराम : रिसेन्ट डेवलपमेन्ट इन साउथ एशिया, साउथ एशिया रीजनल कोआपरेशन, संपादक—एम० डी० धर्मदासानी शालियार, पब्लिशिंग हाऊस, लंका वाराणसी.

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान विध्वंस हुई आर्थिक अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण हेतु जहां विश्व के समस्त, देश राजनीतिक एवं सैन्य दृष्टि से सबल बनने के लिए 'नाटो', सीएटो' और सेन्टो इत्यादि सैनिक संगठन में शामिल हुए वही दूसरी ओर आर्थिक दृष्टि से अपने को सबल एवं सुदृढ़ करने के लिए क्ष्त्रीय सहयोग संगठनों जैसे—ई० ई० सी०, एसिआन, सार्क इत्यादि का जन्म हुआ। तब से अब तक अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थक, सांस्कृतिक संगठनों का निर्माण किया गया है। इस सम्बन्ध में दक्षिण एशियाई राष्ट्रों का प्रयत्न अर्वाचीन है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सन्दर्भ में एक लम्बें अन्तराल तक दक्षिण एशिया को 'क्षेत्रवाद रहित क्षेत्र' कहा जा सकता है।[1] विश्व के सभी प्रमुख क्षेत्रों में क्षेत्रवाद के विकास के बावजूद 1980 के दशक के मध्य तक यहाँ क्षेत्रवाद नहीं पनप सका।

क्षेत्रीय सहयोग की धारणा सम्प्रभु राष्ट्रों के सामान्य हित तथा पारस्परिक लाभ पर आधारित विंचारधारा है जिसका विकास मुख्यत: द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शीतयुद्ध के कारण राष्ट्रों में निरन्तर बढ़ती असुरक्षा की भावना एवं युद्धकाल में नष्ट अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण की आवश्यकता को देखते हुए हुआ है। नाटो, सीएटो वारसा पैक्ट एवं सेन्टों जैसे सैनिक संगठनों का गठन असुरक्षा की भावना से प्रेरित होकर ही किया गया। अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए ऐसे सकारात्मक क्षेत्रीय संगठन निर्मित किए गए जिससे उनके द्वारा क्षेत्रीय संसाधनों का संयुक्त रूप से पूर्व दोहन एवं वितरण किया जा सके, जैसे—यूरोपीय आर्थिक समुदाय (ई० ई० सी०) और यूरोपीय मुक्त व्यापार संघ (ई० एफ० टी० ए०), ये दोनों पश्चिमी यूरोप के आर्थिक और व्यापारिक हितों में समन्वय स्थापित करने वाले संगठन थे। इनके अतिरिक्त आर्थिक तत्वों से सम्बद्ध अन्य क्षेत्रीय संगठन भी स्थापित हुए जैसे—अरब लीग (1945), पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद (सी० ई० एम० ए०-1959), तेल निर्यातक देशों का संगठन (ओपेक-1960), अफ्रीकी एकता संगठन (1962) तथा दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्र संगठन (एसियान-1967) आदि। दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) की तुलना इन संगठनं से मेल नहीं खाती जिनका निर्माण केवल आर्थिक सुरक्षा या राजनीतिक पृष्ठभूमि पर हुआ है। 'सार्क' अपने क्षेत्रीय सहयोग की बनावट, आकार, सिद्धान्त एवं उद्देश्यों की दृष्टि से एक अलग ही स्थान रखता है। 'सार्क' की अन्य देशों की तुलना में कुछ ऐसी मौलिक विशेषताएं है, जो दक्षिण एशिया को एकता

---

1. पीटर लियोन का कथन वी० एन० हैविट, दां इन्टरनेशनल पालिटिक्स ऑफ साऊथ एशिया, मान्चेस्टर, 1992, पृ० 75.

के सूत्र में बांधे रखने में पूर्णत: सक्षम है। दक्षिण एशयाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन की मुख्य विशेषता 'समानता का सिद्धान्त' है। सार्क के विभिन्न देश आकार-प्रकार की दृष्टि से भले ही असमानता रखते हो, परन्तु इस मंच पर वे सभी एक समान हो जाते है और सार्क का प्रत्येक निर्णय समान सहमति के आधार पर लिया जाता है। दक्षिण एशियाई राष्ट्रों की भू-भौतिकी, राजनीतिक, व्यवस्था, सामाजिक महत्व तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण काफी हद तक क्षेत्रीय सहयोग को प्रभावति करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन करते है।

यद्यपि पश्चिमी देशों की तुलना में दक्षिण एशिया के सभी देश सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से काफी पिछड़े हुए है तथापि आठवें दशक के पूर्वाद्ध में आर्थिक विकास हेतु इन देशों को भी पारस्परिक सहयोग की तीव्र आवश्यकता हुई परिणामस्वरूप विभिन्न प्रयासो के बाद 1985 में ढाँका में 'सार्क' की स्थापना की गई। पश्चिम में पाकिस्तान से पूरब में भूटान तक तथा उत्तर में भारत से दक्षिण में मालद्वीव तक फैले दक्षिण एशिया के सभी सम्प्रभु देश भौगोलिक निकटता के कारण संयुक्त भौगोलिक क्षेत्र का निर्माण करते है। सार्क का गठन केवल भौगोलिक सुविधा के कारण ही नहीं हुआ है बल्कि इनके पीछे कुछ निश्चित कारण है। हमे यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि मानवशास्त्रीय, ऐतिहासिक और सामाजिक स्तर पर इनमें कई विभिन्नताएं मौजूद है परन्तु इसके बावजूद दक्षिण एशियाई देशों का औपनिवेशिक और साम्राज्यिक इतिहास समान रहा है फलत: इनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और जातीय विभिन्नताओं में भेद काफी कम हो गया है।

दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के सन्दर्भ में सक्रिय प्रयास बांग्लादेश के राष्ट्रपति जिया-उर-रहमान द्वारा किया गया था। परन्तु इसके पूर्व भी क्षेत्रीय सहयोग के लिए बाच-चीत की गई थी। भारत की स्वतन्त्रता से पहले सन् 1945 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी दक्षिण एशियाई एक संघ की बात उठायी थी और दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के विकास का एक प्रबल पक्ष रखा था। क्षेत्रीय सहयोग के लिए दूसरा प्रयास 1970 में उस समय आरम्भ हुआ जब इसके लिए अनुकूल वातावरण बन गया था। महादेशों की प्रतिस्पर्धा हिन्दमहासागर में बढ़ने लगी और दक्षिण एशियाई

देशों की सुरक्षा खतरें में पड़ने लगी। 1976 के बाद दक्षिण एशियाई देशों में कई राजनीतिक बदलांव परिलक्षित हुए जैसे—भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और श्रीलंका ये सरकारें द्विपक्षीय सम्बन्ध सुधारने को उत्सुक थी और इस तरह शैन:-शैन: क्षेत्रीय सहयोग का वातावरण बनना आरम्भ हो गया।[1]

अफगानिस्तान में सोवियत रूस द्वारा सैनिक हस्तक्षेप के बाद एशिया में शीतयुद्ध का आगमन हो गया था। फलस्वरूप क्षेत्रीय सहयोग की संभावना ने और जोर पकड़ लिया था। अपनी नियमित आदत के अनुसार अमेरिका ने परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए 23 जनवरी, 1980 में 'कार्टर सिद्धान्त' के तहत दक्षिण तथा पश्चिम एशिया में सुरक्षा व्यवस्था लागू करने का वायदा किया, इससे यह क्षेत्र सावधान हो गया था।[2] अत: उपर्युक्त समस्त परिस्थितियों को मददे नजर रखते हुए यदि दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग की पहल को 'कार्टर सिद्धान्त' की प्रतिध्वनि कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। अतएव सार्क की स्थापना अकारण नहीं थी। भारत ने सार्क के गठन को इस शर्त पर स्वीकृति दी कि इस क्षेत्र में अमेरिका का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। पाकिस्तान भी सार्क में शामिल नहीं होना चाहता था। भारत और पाकिस्तान में एक समान राजनीतिक उद्देश्यों के कारण गम्भीर द्विपक्षीय समस्याएं विद्मान थी, जिनके रहते क्षेत्रीय सहयोग असंभव था।[3] अफगानिस्तान रूसी सैनिक हस्तक्षेप के कारण इस क्षेत्र के देशों में सुरक्षा का खतरा बढ़ता देख चीन ने विवशतावंश सार्क का समर्थन किया। सोवियत रूस की सार्क के प्रति कभी कोई रूचि नहीं थी, लेकिन वह इस क्षेत्र में भारत को अत्यन्त महत्व प्रदान करता रहा है, इसलिए शायद अन्य दक्षिण एशियाई देश परिश्चमी देशों के प्रति ज्यादा आकर्षित रहे है। अत: दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ 'सार्क' का गठन ऐसी परिस्थितियों में हुआ जिसपर महादेश अपनी निगाहें जमाएं बैठे थे। अमेरिका और चीन इनमें मुख्य थे तथा रूस भारत का समर्थक था। सार्क ने अपने गठन में बाह्य शक्तियों के साथ किसी प्रकार की सुरक्षात्मक सन्धि या समझौता न करके क्षेत्रीय अनुकूलता को ही स्वीकारा जिसे इस क्षेत्र के सभी देशों ने अपनी सहमति दी।

---

1. अग्रेती, बी० सी० रीजनल कोआपरेशन इन साउथ एशिया, नेपाल्स रोल एण्ड एट्टीट्यूड, साउथ एशियन रीजन कोआपरेशन, संपादक एम० डी० धर्मदासानी, शालीयार पब्लिसिंग हाउस, लंका, वाराणसी, पृ० 140।
2. दी हालीडे पीकली, ढाँका, 15 जून, 1980।
3. डान, करांची, 29 मई, 1980।

दक्षिण एशिया के सभी देश समान रूप से राजनीतिक दासता और आर्थिक विपन्नता की वजह से एकता और परस्पर निर्भरता की ओर उन्मुख हुए। ये सभी देश नवस्वतन्त्र देश है तथा अपनी राष्ट्रीय एकता को यथावत बनाए रखने की समस्या का सामना कर रहे है। सार्क के सभी सदस्य देश अपने आर्थिक जीवन के स्तर को ऊपर उठाने में निरन्तर प्रयत्नशील हैं। इस दृष्टि से सार्क देशों में काफी असमानता है। दक्षिण एशिया में सहयोगात्मक संगठन के लम्बे समय तक न बनने या उसके बाद होने वाले प्रभाव जो भी हो लेकिन भारत इन गतिविधियों के परिणामों से अछूता नहीं रह सकता। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारत दक्षिण एशिया का 'केन्द्र' है अर्थात् इसके बिना इस क्षेत्र की समस्त गतिविधिया सफल नहीं हो सकती तथा इस क्षेत्र में होने वाले घटनाक्रम से भारत अलग नहीं रह सकता। दक्षिण एशियाई अन्य देशों की अपेक्षा भारत अधिक विकसित है। भारतीय उद्योग धन्धे, व्यापार, आयात-निर्यात अन्य दक्षिण एशिया के देशों की तुलना में अधिक विकसित अवस्था में है। दक्षिण एशियाई क्षेत्र में काफी लम्बे समय तक आपसी सहयोग ने होने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि इस क्षेत्र में कुछ उपलब्ध असमानताओं ने काफी बाधाएं उत्पन्न की हैं। भौगोलिक दृष्टि से इस क्षेत्र में गहरी असमानताएं मौजूद रही है जिससे इस क्षेत्र के देशों में आपसी सन्देह होना सामान्य सी बात है। भारत क्षेत्रफल में सबसे बड़ा देश रहा है जो इस क्षेत्र के कुल 73 प्रतिशत भूमि का स्वामी है। इस क्षेत्र का दूसरा बड़ा देश पाकिस्तान है शेष अन्य देशों का भौगोलिक क्षेत्रफल काफी कम है।[1]

जनसंख्या की दृष्टि से भी दक्षिण एशिया के देशों में असमानता विद्यमान है। दक्षिण एशिया की कुल जनसंख्या 1.13 बिलियन है जो विश्व आबादी में लगभग 21.4 प्रतिशत स्थान रखती है। भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में द्वितीय स्थान पर होने के साथ-साथ अपने क्षेत्रों के सारे देशों की कुल आबादी का तीन गुना ज्यादा आबादी रखता है। इस क्षेत्र के दूसरे स्थान पर आबादी वाले देश बांग्लादेश से इसकी जनसंख्या आठ गुना ज्यादा है।[2]

---

1. क्रिस्टीयन वागनर, "रिजनल कॉपरेशन इन साउथ एशिया : रिव्यू ऑव दॉ सार्क," आर्मैन पोलिटिक, वाल्यूम 44, अंक 2, 1993 पृष्ठ 183.

2. रमेश ठाकुर, दॉ पालिटिक्स एण्ड ईकोनोमिक्स ऑफ इंडियाज फॉरैन पालिसी, दिल्ली, 1994 पृ० 178

आर्थिक दृष्टि से भी भारत और अन्य दक्षिण एशियाई देशों के मध्य गहन अन्तर विद्यमान है। भारत इस क्षेत्र की कुल राष्ट्रीय आय (जी० एन० पी०) का 78 प्रतिशत भाग रखता है इसके अतिरिक्त खनिज पदार्थों के सन्दर्भ में स्थिति असमानता पर आधारित है। दक्षिण एशियाई क्षेत्र में प्राप्त होने वाले यूरेनियम, ताबाँ, सोना, शीशा तथा चांदी का 100 प्रतिशत भण्डार तो भारत में ही प्राप्य है।[1]

सैन्य क्षेत्र में भारत की क्षमता दक्षिण एशिया के सभी देशों से सर्वोत्कृष्ट होने के साथ-साथ अत्यधिक भी है। भारत की सेना की संख्या के साथ-साथ उसकी हथियारों के उत्पादन की क्षमता शेष अन्य देशों की अपेक्षा उत्तम प्रकार की है। इसके द्वारा रक्षा अनुसंधान एवं प्रक्षेपास्त्रों के उत्पादन के कारण पड़ोसी राज्यों में सुरक्षात्मक विश्वास की जगह सन्देह का वातावरण बन गया है।

उपरोक्त विभिन्नताओं के रहते हुए भी दक्षिण एशिया के देशों के मध्य कई मूलभूत विषयों में उपलब्ध समानताओं एवं सभी देशों की कुछ मजबूरियों की वजह से ये सभी दक्षिण एशियाई देश क्षेत्रीय सहयोग की तरफ उन्मुख हुए है। इन देशों में आपसी व्यापार बाह्य व्यापार की तुलना में न के बराबर है। भौगोलिक दृष्टि से दक्षिण एशियाई देशों में आपसी व्यापार को व्यापक स्तर पर क्रियान्वित किया जा सकता है। इन देशों का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इतिहास लगभग एक तरह का रहा है तथा वर्तमान में ये सभी दक्षिण एशियाई देश गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सदस्य है। गरीबी, भुखमरी, बीमारी, पिछड़ापन, अशिक्षा, बेरोजगारी इत्यादि सामान्य समस्याओं से ग्रसित ये देश आपसी व्यापार एवं सहयोग को तीव्रगति से बढ़ाकर ही विकसित हो सकते है।

इन सबके अलावा दक्षिण एशियाई देशों में विरोध और संघर्ष भी प्राय: होते रहते है। इस क्षेत्र के कुछ देशों में आपस में युद्ध भी हुए है। इनके आपसी सम्बन्धों में कटुता बढ़ाने वाले कारणों में साम्प्रदायिक हिंसा और लोकप्रिय आन्दोलन रहे है। इन देशों के आपसी सम्बन्धों में व्याप्त कटुता के कारण ही महाशक्तियाँ इनकी तरफ आकर्षित हुई। लेकिन विगत दिनों में ये दक्षिण एशियाई देश राजनीतिक और आर्थिक कारणों से विवश होकर आपसी सम्बन्धों में परिपक्वता का विकास किया है और आपसी वैमनस्य को समाप्त कर गरीबी तथा शोषण जैसी काली छाया से लड़ने को एक मंच पर एकत्रित हुए है।

---

1. वागनर, पाद टिप्पड़ी संख्या 3, पृ० 183.

भारत— भारत दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा और सर्वाधिक महत्वपूर्ण देश है शायद यही वजह है कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का भारत प्राय: आकर्षण का केन्द्र बिन्दु रहा है। विश्व के सर्वाधिक विस्तार वाले देशों में भारत सातवे स्थान पर है। विषुवत वृत्त के उत्तर में स्थित होने के कारण भारत पूर्णतया उत्तरी गोलार्द्ध में आता है। कर्क रेखा भारत को लगभग दो समान भागों में विभाजित करती हैं। इसका दक्षिणी अर्द्धभाग जिसमें प्रायद्वीपीय भारत सम्मिलित है, उष्णकटिबन्ध में आता है। उत्तरी अर्द्ध भाग जिसकी प्रकृति महाद्वीपीय है, उपोष्ण कटिबन्ध के अन्तर्गत आता है। प्रधान मध्याह्न रेखा के पूर्व में स्थित होने के कारण भारत पूर्वी गोलार्द्ध में आता है। इसका क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है, जो हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों से लेकर दक्षिण के उष्णकटिबंधीय सघन वनों तक फैला हुआ है विश्व के इस सातवें विशालतम देश को पर्वत तथा समुद्र शेष एशिया से पृथक करते है, जिससे इसका अलग भौगोलिक अस्तित्व है। इसके उत्तर में महान हिमालय पर्वत है, जहां से यह दक्षिण में बढ़ता हुआ कर्क रेखा तक जाकर, पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर के मध्य हिन्दमहासागर से जा मिलता है। इसकी मुख्य भूमि 8°4 और 37°6' उत्तरी अक्षांश और 68°7' और 97°25' पूर्वी देशान्तर के मध्य फैली हुई है। उत्तर से दक्षिण तक इसका विस्तार 3, 214 किलोमीटर और पूर्व से पश्चिम तक 2, 933 किलोमीटर है। इसकी भूमि सीमा 15, 200 किलोमीटर है और तटरेखा 6100 किलोमीटर है। मुख्य भूमि, लक्षद्वीप समूह और अंडमान-निकोबार द्वीप समूह के समुद्रतट की कुल लम्बाई 7, 516.6 किलोमीटर हैं। भारत के सीमावर्ती देशों में उत्तर-पश्चिम में पाकिस्तान और अफगानिस्तान स्थित है। उत्तर में चीन, नेपाल और भूटान स्थित है। पूर्व में म्यांमार और पश्चिम के पूर्व में बांग्लादेश है। मन्नार की खाड़ी और पाकजलडमरूमध्य, भारत को श्रीलंका से पृथक करते हैं।

अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत तथा विविधताओं के कारण भारतीय सभ्यता विश्व की सर्वप्राचीन सभ्यता है। इसने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात के वर्षो में बहुआयामी सामाजिक आर्थिक प्रगति की है। भारत को आर्थिक दृष्टि से इस क्षेत्र के सार्वाधिक विकसित होने का गौरव प्राप्त है। भारत खनिज संसाधनों में अत्यधिक सम्पन्न है। इन संस्धानों का आर्थिक महत्व और बढ़ जाता है जब मनुष्य इन्हें उपयोगी बनाकर इनका मूल्य बढ़ा देता है। वर्तमान कालीन औद्योत्रिक युग में भूमिगत संसाधन अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते है। देश का औद्योगिक विकास बहुत कुछ किन्ही

संसाधनों पर आघृत है। संभवत: यही कारण है कि भारत खनिज संसाधनों के प्रचुर मात्रा में उपलब्धता के कारण एक औद्योगिक शक्ति बनने की क्षमता रखता है। इन खनिज संसाधनों में, कोयला, बाक्साइट, अभ्रक, जस्ता सीसा, ताँबा, लौहअयस्क, मैगंनीज, सोना इत्यदि मुख्य है। भारत लौहअयस्क, मैगंनीज, अभ्रक, बॉक्साइट में समृद्ध है और सीमेंट बनाने के काम आने वाले खनिजों जैसे डोलामाइट, तथा चूना पत्थर आदि में आत्मनिर्भर है। यह क्रोमाइट, संगमरमर तथा अन्य इमारती पत्थरों, सोडियम लवणों एवं बहुमूल्य पत्थरों में भी आत्मनिर्भर है।

भारत का अन्य सार्क सदस्य देशों के साथ व्यापरिक सम्बन्धों पर यदि एक दृष्टि डाले तो हम पाते है कि भारत और पाकिस्तान के मध्य जहाँ नाममात्र का व्यापार होता है वही भारत और नेपाल के मध्य नेपाल का 90 प्रतिशत व्यापार सम्पन्न होता है। भारत और भूटान के बीच भी व्यापारिक सम्बन्ध है। भारत और बांग्लादेश के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध लगभग नगण्य ही है। जूट के क्षेत्र में बांग्लादेश भारत का प्रतिद्वन्द्वी देश है भारत की अपने पड़ोसी देशों के प्रति लगभग प्रत्येक क्षेत्र में प्राय: सहयोगात्मक प्रवृत्ति रही है लेकिन दक्षिण एशिया के कुछ देशों का, भारत पर अपनी निर्भरता को कम करने की दृष्टि से, चीन तथा अन्य शक्तिशाली देशों की तरफ झुकाव हुआ है। यही वजह है कि भारत का अन्य सार्क के महत्वपूर्ण सदस्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध नाममात्र का है। जबकि अगर इनमें व्यापारिक सहयोग में वृद्धि होती है तो क्षेत्रीय सहयोग का आधार और मजबूती धारण करेगा। आर्थिक दृष्टि से क्षेत्रीय सहयोग अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। दक्षिण एशिया हमेशा से भारत से एक जिम्मेदारीपूर्ण सहयोग के लिए अपेक्षित रहा है इसके पीछे कारण यही है कि भारत इस क्षेत्र की सबसे बड़ी शक्ति है तथा यहां राजनीतिक स्थायित्व विद्मान है इसलिए इसकी भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

15 अगस्त, 1947 का वह दिन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी दिन भारत ने अपने दो सौ वर्षो की औपनिवेशिक दांसता से मुक्ति पायी थी। 55 वर्षो की स्वतन्त्रता के बाद पूरी जनसंख्या की लगभग मिलियन जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे है इसकी जनसंख्या की लगभग 70% आबादी गांवों में निवास करती है। धर्म के सम्बन्ध में अधिसंख्य रूप से हिन्दू और अल्पसंख्यक रूप से मुसलमान, सिख, ईसाई, बौद्ध तथा पारसी है। दक्षिण एशियाई देश इस समय गरीबी, निरक्षरता, बेरोजगारी और पिछड़ेपन से कठोर रूप से जूझ रहे है। भारत उन विकासशील देशों में से एक गिना जाता है जहाँ

की आर्थिक व्यवस्था की प्राथमिक ईकाइयां जैसे—भारी उद्योग, यातायात और संचार, बैंकिंग और बीमा सीधे राज्य के नियन्त्रण में है। भारत ने स्वतन्त्रता के बाद के 55वर्षो में बहुआयामी सामाजिक-आर्थिक प्रगति की है। भारत इस समय खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर है तथा विश्व के औद्योगिक क्षेत्र में इसका दसवां स्थान है। जनहित के लिए प्रकृति पर विजय पाने हेतु अन्तरिक्ष में जाने वाले देशों में इसका छठा स्थान है। राजनीतिक रूप से भारत में प्राय: स्थिरता रहती हैं और यही कारण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था प्रगति की ओर निरन्तर अग्रसर है। सरकार की आर्थिक नीति आत्मनिर्भरता और गुणात्मक सुधारों के साथ अधिकाधिक उत्पादन करने की होती है। यद्यपि प्रकृति प्रदत्त आकस्मिक समस्याएँ जैसे सूखा, बाढ़, भूकम्प से प्रत्येक वर्ष काफी जनधन की हानि होती हैं जो बड़े पैमाने पर भारतीय अर्थव्यवस्था के विकासदर को निप्रभावी बना देता है फिर भी भारत आर्थिक उन्नति, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय प्राप्त करने में निरन्तर प्रयासरत है।

राज्यों का संघ भारत, सम्पूर्ण प्रभूतासम्पन्न सामाजवादी धर्म निरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणराज्य है जिसमें संसदीय प्रणाली की सरकार है। भारत में 28 राज्य और 7 केन्द्रशासित प्रदेश है। भारत में राष्ट्रध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति है और शासनाध्यक्ष के रूप में सरकार का प्रधान प्रधानमंत्री है। इसी प्रकार राज्यों में (प्रदेशों और केन्द्र शासित प्रदेशों) राज्यपाल और प्रशासक है परन्तु वास्तविक शासक मुख्यमंत्री होता है। केन्द्र और राज्य दोनों में एक मन्त्रिपरिषद होती है। मन्त्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा और विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। केन्द्र शासित प्रदेश का प्रधान लेफ्टीनेंट गवर्नर होता है। ब्रिटिश शासन पर आघृत भारतीय केन्द्रीय विधायिका दो सदनीय है। निम्न सदन को लोकसभा तथा उच्चसदन को राज्यसभा कहते है। संविधान में विधायी शक्तियां संसद एवं राज्य विधानसभाओं में विभाजित की गई है तथा शेष शक्तियां संसद को प्राप्त हैं।

भारत के पास एक अतिप्रचीन सभ्यता और संस्कृति की धरोहर है। स्वतन्त्रता के बाद भारत द्वारा जिस विदेशनीति का निर्माण किया गया वह देश की सभ्यता, संस्कृति तथा राजनीनितक परम्परा को प्रतिबिम्बित करती है। भारत की विदेश नीति के निर्माताओं के समक्ष प्राचीन भारतीय विद्वान कौटिल्य का दर्शन उपलब्ध था। कौटिल्य एक यथार्थवादी राजनेता था जो कि युद्ध को शक्ति एवं विदेश नीति का प्रमुख साधन समझता था। भारतीय नीति निर्माता सम्राट अशोक की बौद्ध परम्पराओं से भी प्रभावित थे। अशोक शान्ति, स्वतन्त्रता तथा समानता के मूल्यों का पक्षधर था। भारत के प्रथम

प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने सम्राट अशोक के आदर्शों पर चलने का निश्चय किया और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा आन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान जैसे मूल्यों को संविधान के भाग चार में उल्लिखित राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में भी सम्मिलित करवाया। भारत की विदेश नीति मूल रूप से गांधी जी के दर्शन हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के आदर्शो तथा भारतीय परम्परा के मौलिक सिद्धान्त वसुधैव कुटुम्बकम् (समस्त विश्व एक परिवार के समान है) पर आधारित है। आन्तरिक परिस्थितियाँ जिन्होंने विदेश नीति के निर्धारण में मुख्य भूमिका का निर्वाह किया, उनमें धार्मिक जातीय, क्षेत्रीय एवं भाषा सम्बन्धी समस्याएं शामिल थी। ये समस्याएँ आज भी विदेशनीति निर्माताओं के निर्णयों को प्रभावित करती है। किसी भी अन्य देश की भांति, भारतीय विदेशनीति निरन्तर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित होती रही है। स्वतन्त्रता के दौरान विश्व में शीतयुद्ध आरम्भ हो चुका था। विश्व का विभाजन दो परस्पर विरोधी गुटो में हो गया था। शीतयुद्ध की, गुट आधारित, राजनीति ने एक लम्बे अन्तराल तक भारतीय विदेश नीति को प्रभावित किया। चीन के साथ भारत की एक लम्बी सीमा है। चीन के संग भारत का सीमायुद्ध एक दुखद घटना थी। भारत-चीन विवाद भारत के विदेश नीति निर्धारकों का ध्यान निरन्तर आकर्षित करता रहा है। पाकिस्तान भारत-विभाजन का परिणाम था। 54-55 वर्ष तक इन दोनों पड़ोसी देशों के मध्य कायम तनाव, उनके बीच लड़े गए चार युद्ध और पाकिस्तान का यह प्रयत्न कि भारत के सीमावर्ती राज्यों में विघटनकारी शक्तियों को आतंकवाद के द्वारा बढ़ावा दिया जाए ऐसी परिस्थितियां है जो भारतीय विदेश नीति को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती।

ब्रिटिश दासता से मुक्ति के बाद तत्काल ही भारत को अपनी विदेश नीति निर्मित करनी थी। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का सदस्य बनते ही, विश्व में उपनिवेशवाद के उन्मूलन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। भारत ने एशिया, अफ्रीका के देशों मे उपनिवेशवाद विरोधी तथा साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को पूर्ण समर्थन दिया। फिर भी भारतीय विदेश नीति मौलिक रूप से उसके इतिहास और उसकी संस्कृति पर आधारित है।

भारतीय विदेश नीति की एक मजबूत आधारशिला स्वयं नेहरू ने रखी थी। किसी भी अन्य विदेशी नीति निर्माता की भांति नेहरू ने भी भारत के राष्ट्रीय हित को विदेशनीति का मुख्य निर्धारक मान था, परन्तु ऐसा करने से पूर्व, जवाहरलाल नेहरू ने अन्तरिम सरकार के प्रमुख की हैसियत से

सितम्बर 1946 में रेडियों पर राष्ट्र के नाम एक सन्देश में भारतीय विदेशनीति के प्रमुख उद्देश्यों की घोषणा करी थी। उन्होंने कहा था—

"हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में एक स्वतन्त्रराष्ट्र के रूप, में अपनी नीति के अनुसार, पूरी भागीदारी करेंगे। हम किसी अन्य राष्ट्र के पिछलग्गू (Satellite) के रूप में किसी सम्मेलन में भाग नहीं लेगें। हमें आशा है कि हम अन्य राष्ट्रों के साथ प्रत्यक्ष और नजदीकी सम्बन्ध स्थापित करेगें तथा विश्व शान्ति एवं स्वतन्त्रता की अभिवृद्धि के लिए उनके साथ सहयोग करेगें ......हमारी विशेष इच्छा है कि औपनिवेशिक तथा पराधीन देशों और लोगों का उद्धार हो, और सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों में सभी जातियों के लोगों को समान अवसर प्राप्त हो।"[1]

भारतीय विदेश नीति जिन परिस्थितियों में निश्चित करने थे वे अत्यन्त दुस्सह थी। ब्रिटिश भारत के विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना से घृणा का वातावरण चारों ओर व्याप्त था और विभिन्न वर्गों के मध्य वैमनस्य की भावना ने गहरे घाव छोड़े थे। आजादी से पूर्व सम्पूर्ण भारत एक आर्थिक इकाई था। इसके विभाजन ने कई आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया। पाकिस्तान से विस्थापित लाखों हिन्दू और सिखों ने भारत में शरण ली तो समस्या और भी गम्भीर हो गई इन विस्थापितों का पुनर्वास करना था। शीघ्र ही कश्मीर पर पाकिस्तान द्वारा समर्थित कवालियों के आक्रमण से भारत को एक युद्ध झेलना पड़ा जिसने अर्थव्यवस्था को गहरे संकट में डाल दिया। वामपंथियों द्वारा आह्वान की गई हड़तालों ने आर्थिक परिस्थिति को और भी बिगाड़ दिया। साथ ही देश की विशाल जनसंख्या हेतु प्राथमिक आवश्यकता जैसे खाना, कपड़ा और आवास की भलिभांति पूर्ति कर पाना सरकार के लिए एक बहुत बड़ी समस्या बन गई थी। सैन्य बल की दृष्टि से भारत शक्तिशाली नहीं था। कश्मीर युद्ध के बाद भी पाकिस्तान के भारत विरोधी दृष्टिकोण ने हमारी सुरक्षा की समस्या को और भी गम्भीर बना दिया था इसमें सन्देह जैसी कोई बात नहीं कि भारत के पास संसाधनों की कोई कमी नहीं थी और देश की विशाल जनसंख्या का प्रयोग आर्थिक और सैनिक शक्ति की वृद्धि के लिए किया जा सकता था। इसके अलावा एक और समस्या भारत के सामने मुंह

---

1. जवाहर लाल नेहरू, "इंडियाज फॉरेन पालिसी : स्लेकेटिड स्पीचीज, सितम्बर 1946 से अप्रैल 1961, नई दिल्ली, 1961 पृ० 167

बाए खड़ी थी जिसका सम्बन्ध देश के आन्तरिक एकीकरण से था। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ काफी जटिल थी। शीतयुद्ध के आरम्भ होने से पूर्व पश्चिम सम्बन्ध तीव्रता से बिगड़ रहे थे। अत: इन परिस्थितियों में भारत ने विश्व शान्ति को अपनी विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य बनाया। भारत विश्व शान्ति को केवल एक आदर्श ही नहीं मानता था परन्तु वह विश्वास करता था कि विश्व शान्ति से स्वयं भारत की सुरक्षा सुनिश्चित हो सकेगी।

भारत की विदेश नीति के सिद्धान्त

(1) गुट निरपेक्षता— द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के समस्त देश परस्पर दो विरोधी गुटों में विभाजित हो गए। इनमें एक गुट का नेतृत्व अमेरिका और दूसरे गुट का नेतृत्व भूतपूर्व सोवियतसंघ कर रहा था। गुटों की इस राजनीति के बीज से शीतयुद्ध जैसे विशाल पेड़ को उत्पन्न किया। भारत ने आरम्भ से ही किसी भी गुट में शामिल न होने का निर्णय लिया क्योंकि वह सभी देशों के साथ मित्रता के आदर्श और विश्व शान्ति के नैतिक मूल्यों में विश्वास करता था। भारत ने यह निर्णय लिया कि वह अपनी क्षमता का प्रयोग देश के आर्थिक विकास के लिए करेगा। इस उद्देश्य के लिए भारत को न केवल सभी देशों के साथ मित्रता की अपेक्षा थी परन्तु वह यह भी चाहता था कि जहाँ से संभव हो सके उसे आर्थिक सहायता प्रात हो। इसलिए गुटनिरपेक्षता की नीति को भारतीय विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ माना जाता है।

(2) पंचशील और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व— विभिन्न विचारधाराओं में विश्वास करने वाले देशों के मध्य शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का आदर करना भारतीय विदेश नीति का एक प्रमुख सिद्धान्त है। भारतीय दर्शन के इस मूल सिद्धान को 1954 में तब औपचारिक मान्यता दी गई जब भारत और चीन ने आपसी सम्बन्धों के आधार के रूप में पंचशील के सिद्धान्तों की घोषणा पर हस्ताक्षर किए। इन पाँच सिद्धान्तों की व्याख्या 29 अप्रैल 1954 के भारत-चीन समझौते में विस्तार से की गई थी। यह समझौता भारत और चीन के तिब्बत क्षेत्र के बीच व्यापार सम्बन्ध सुनिश्चित करने के लिए किया गया था। समझौते की प्रस्तावना में निम्नांकित पाँच सिद्धान्त उल्लिखित किए गए थे।[1]

---

1. भारतीय संसद, पार्लियामैन्टरी डिबेट्स (लोकसभा), वाल्यूम VI, अंक 70, 15 मई 1954, पृ० 7495.

(i) एक दूसरे की क्षेत्रीय अखण्डता और सम्प्रभुता का आदर करना;

(ii) एक दूसरे के विरुद्ध आक्रमण न करना;

(iii) एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना;

(iv) समानता और परस्पर मित्रता की भावना; तथा

(v) शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व

(3) साम्राज्यवाद का विरोध—भारत ने प्रारम्भ से ही उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का विरोध किया। उसने एशिया और अफ्रीका के पराधीन देशों के स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्ण समर्थन दिया। अब जब कि उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की जड़े पूर्ण रूप से उखड़ चुकी हैं तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भारतीय विदेश नीति में इस सिद्धान्त की क्या प्रांसगिकता रह गई है। भारतीय दृष्टिकोण से यह सिद्धान्त अब भी महत्वपूर्ण है क्योंकि अनेक पश्चिमी देशों ने अपने भूतपूर्व उपनिवेशों पर अपना प्रभुत्व समाप्त नहीं किया है। भारत सहित एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में नव-उपनिवेशवाद (Neo-colonialism) का प्रयोग किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में जो देश राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र होने के बाद भी आर्थिक पराधीनता के शिंकजे में है उनको नव -उपनिवेश का शिकार कहा जा सकता है। भारत नव-उपनिवेशवाद के सभी प्रकारों का विरोध करता है क्योंकि उसका विश्वास है कि आर्थिक शोषण स्वयं ही राजनीतिक नियन्त्रण में परिवर्तित हो जायेगा।

जातिभेद का विरोध— भारत ने प्राय: एक ऐसे समाज की स्थापना पर बल दिया है जहां रंग, जाति, वर्ग, इत्यादि पर आधारित कोई भेद-भाव न हो यही वजह है कि दक्षिण अफ्रीका में व्याप्त रंगभेद नीति के विरुद्ध विश्व जनमत को तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। चार दशक से अधिक संघर्ष के बाद 1994 के आरम्भ में रंगभेद नीति पर विजय मिली। भारत ने संयुक्त राष्ट्र के उन सभी प्रयत्नों का पक्ष लिया है जिनके परिणामस्वरूप मानव अधिकारों की घोषणा के आधार पर पूरे विश्व में मूल स्वतन्त्रता को बल मिला है।

अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शान्तिपूर्ण समाधान—अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान खोजना भारतीय विदेशनीति का स्पष्ट उद्देश्य है। नैतिकता के आधार पर भी भारत युद्धों के खिलाफ

है। 'शान्तिपूर्ण समाधान में', 'समाधान' की तुलना में 'शान्तिपूर्ण' पर अधिक जोर दिया जाता है। भारतीय संविधान निर्माता इस बात के लिए उत्साहित थे कि भविष्य में देश की सरकारें विवादों के समाधान का शान्तिपूर्वक प्रयास करे इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 51 में यह निर्देश उल्लिखित है कि सरकार अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्वक निपटाने की कोशिश करेगी।

गुजराल सिद्धान्त— गुजराल सिद्धान्त भारत की उस विदेशनीति की अभिव्यक्ति है जिसका प्रारम्भ विदेश मन्त्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल ने किया था कालान्तर में स्वयं प्रधानमंत्री बने थे। गुजराल सिद्धान्त (1996) का सार यह है कि पड़ोसी देशों से सम्बन्ध सुधारने के लिए कुछ एक तरफा रियायतें दी जाये तथा भारत और अन्य देशों के लोगों के मध्य सम्बन्ध स्थापित किए जाएं। इस नीतिके अधीन 1996 के अन्त में भारत ने बांग्लादेश के साथ गंगाजल के बटवारे पर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समझौता किया। इसी समझौते के द्वारा भारत और चीन के द्विपक्षीय सम्बन्धों को सुधारने के प्रयत्न किए जायेंगे। इसके लिए दोनों देशों ने इस बात पर सहमति जतायी कि कुछ समय तक सीमा विवाद पर कोई बातचीत न हो।

पचपन वर्ष की भारत की विदेश नीति की यदि समीक्षा की जाए तो भारत एक स्वतन्त्र विदेशनीति पर चलता रहा है। समय-समय पर प्रधानमंत्रियों और विदेशमंत्रियों के परिवर्तन होने के बावजूद हमारी विदेश नीति की प्रतिबद्धता में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है।[1]

पाकिस्तान— दक्षिण एशिया का दूसरा महत्वपूर्ण देश पाकिस्तान है। पाकिस्तान दक्षिण एशिया में स्थित एक इस्लामिक गणराज्य हैं। पाकिस्तान को एक अलग मुस्लिम राष्ट्र बनाये जाने का विचार सर्वप्रथम एक कवि दार्शनिक मोहम्मद इकबाल द्वारा 1930 में सामने लाया गया था। 30 मार्च 1940को लाहौर में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने मुसलमानों के किए एक अलग राज्य की मांग को अपने अधिवेशन में पास किया अर्थात् स्वीकार कर लिया। इस प्रकार स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए एक अलग राजनीतिक मंच के रूप में उदित हुई। यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में काफी बड़ी मात्रा मे मुसलमान पदारूढ़ थे,

---

1. वी० एन० खन्ना—लिपाक्षी अरोड़ा, 'भारत की विदेश नीति' तृतीय संस्करण, पृ० 57

तथापि मुस्लिम लीग ने इसका हिन्दुओं की पार्टी के रूप में नामकरण दिया। दोनों दलों में कोई भी समझौता संभव न हो पाने के कारण ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन ने एक घोषणा द्वारा भारत का विभाजन भारत और पाकिस्तान के रूप में किया। इस प्रकार पूर्वी बंगाल और असम का कुछ हिस्सा तथा पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, बलूचिस्तान और उत्तर-पश्चिमी सीमान्त राज्य के रूप में पाकिस्तान अस्तित्व में आया। भारतीय स्वाधीनता के साथ-साथ एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में पाकिस्तान का उदय 14 अगस्त, 1947 को विश्व पटल पर हुआ। इसके पश्चिम में ईरान, उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान, पूर्व में भारत तथा दक्षिण में अरब सागर स्थित है।

भारत के पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित पाकिस्तान लगभग 23° 5' अक्षांस उत्तर से 36°5' अक्षांस उत्तर तक तथा लगभग 63° पूवी देशान्तर से 81° पूर्वी देशान्तर तक विस्तृत है। पाकिस्तान का क्षेत्रफल 796,095 वर्ग किलोमीटर है।[1] पाकिस्तान में सिध पंजाब, बलूचिस्तान और उत्तर पूर्वी प्रदेश का बहुत बड़ा भू-भाग पर्वतों से घिरा हुआ है। यहाँ की जनसंख्या लगभग 156 मिलियन है।[2] पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि, वस्त्र उद्योग अनाज और रसायन उद्योगों पर आधारित है। पाकिस्तान में प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद 490 डॉलर है।[3] इस देश की जलवायु शुष्क है। इसका मैदानी भाग उर्वर है तथा यहाँ सिंचित भूमि का प्रतिशत विश्व में सर्वाधिक है। इसका विकास 1960 ई० में भारत द्वारा सिन्ध जल समझौते के बाद अधिक हुआ है। विश्व बैंक द्वारा इसे निम्न आय अर्थव्यवस्था वाले देशों की श्रेणी में रखा गया है।

पाकिस्तान में प्रथम पंचवर्षीय योजना सन् 1955 में आरम्भ हुई, परन्तु राजनीतिक अस्थायित्व के कारण योजना के क्रियान्वयन में निराशा ही हाथ लगी। यहां यतायात, सिंचाई विद्युत शक्ति और भूमि सुधार सीधे केन्द्रीय सरकार के अधीन है, लेकिन एक लम्बी अवधि तक आर्थिक विषयों पर सरकार का नियन्त्रण बहुत मामूली रहा। पाकिस्तान में सार्वजनिक क्षेत्र लगभग नहीं के बराबर है। निजी क्षेत्र ने यहां स्वयं की भूमिका को निम्न करते हुए सरकार से अधिक रियायत हासिल कर ली।

---

1. द स्टेट्स मैन्स ईयर बुक-2001-02, मैकमिलन प्रेस लिमिटेड, लन्दन।
2. स्टेटिस्टिकल ईयर बुक फार एशिया एण्ड पेसिफिक-2002।
3. द स्टेट्समैन्स ईयर बुक, 2001-02, मैकमिलन प्रेस लिमिटेड, लन्दन।

जब जुल्फिकार अली भुट्टों सत्ता में आए तो थोड़े समय के लिए स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ। भुट्टों ने इस्लामी समाजवाद की घोषणा की और आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए राष्ट्रीयकरण की बात की तथा सार्वजनिक क्षेत्र में अपना समर्थन जताया परन्तु 1977 में भुट्टों को बलात सत्ता से पदच्युत करने के बाद यही नीति स्वयं समाप्त हो गई। पाकिस्तान ने मध्यपूर्व के साथ अच्छा सम्बन्ध स्थापित किया। 1982 में सत्तासीन सैनिक सरकार ने निजी क्षेत्र के लिए एक नई घोषणा की और उस पर से नौकरशाही के नियन्त्रण को निम्न किया। इस प्रकार भुट्टो द्वारा स्थापित प्रक्रिया का यह संशोधित रूप था। सैनिक शासन के दौरान पाकिस्तान की आर्थिक व्यवस्था काफी उन्नति शील हुई इसका प्रमाण इसी बात से लगाया जा सकता है कि सन् 1977 में पाकिस्तान का विकासदर 6 प्रतिशत था।[1]

भारत की तुलना में लोकतन्त्र की दृष्टि से पाकिस्तान में स्थिति बिल्कुल विपरीत है। इस देश में लोकतन्त्र अपनी जड़े नहीं जमा पाया है वहां अशान्त संसदीय शासन और एक लम्बे समय तक सैनिक शासन, दोनों व्यवस्थाएं फेर-बदल करके रही है।[2]

पाकिस्तान को अपने देश के प्रशासन को प्रारम्भ करने में काफी बाधाओं का सामना करना पड़ा, परन्तु भारत को प्रशासकीय प्रणाली विरासत में ब्रिटिश शासन से मिली थी। यह सत्य है कि मुहम्मद अली जिन्ना एक विलक्षण प्रतिभा के धनी और चमत्कारी नेता थे, वे न केवल प्रथम गवर्नर जनरल थे, बल्कि वे संविधान सभा के अध्यक्ष और मुस्लिम लीग के भी अध्यक्ष थे। परन्तु दुर्भाग्यवश स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शीघ्र ही सितम्बर 1948 में स्वर्गवासी हो गये। इस घटना के तीन वर्ष पूरे होते ही पाकिस्तान के प्रथम प्रधानमंत्री लियाकत अली खान की हत्या कर दी गई। पाकिस्तान में प्रशासन लगभग एक दशक तक स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व स्थापित विधि के अनुसार ही चलता रहा। सन् 1956 में इस्लामी संविधान' बन कर तैयार हुआ। कुछ समय बाद सन् 1958 में प्रजातन्त्र को उखाड़ फेका गया और उसके स्थान पर फील्ड मार्शल के नेतृत्व में सैनिक शासन लागू कर दिया गया। अयूब खान

---

1. पाकिस्तान इन 1986; एन आफिसियल हैम्ड बुक, (इस्लामाबाद); डाइरेक्टोरेट ऑफ फिल्म्स एण्ड पब्लिकेशन, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, पाकिस्तान सरकार, 1986 पेज 11।

2. रशबुक विलियम्स; एल० एफ० (1986), द स्टेट ऑफ पाकिस्तान; द्वितीय संस्करण, लन्दन, पेज 99-111।

ने प्राथमिक प्रजातन्त्र की घोषणा की परन्तु उसका परिणाम भी नकारात्मक रहा। अयूब खान का काल सन् 1969 में समाप्त हुआ उसके बाद याह्याखान ने सत्ता सम्भाली। याह्याखान ने एक वर्ष के शासन के बाद एक विधि निकाय का गठन किया जिसकी एक सांविधानिक विधि द्वारा सन् 1970 में पाकिस्तान में चुनाव हुआ। इसका परिणाम पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान में तीव्र ध्रुवीकरण के रूप में सामने आया। पश्चिमी पाकिस्तान में बहुमत के नेता भुट्टो हुए जिनकी सांठ-गांठ याह्याखान से थी और पूर्वी पाकिस्तान का नेतृत्व, शेख मुजीब ने पूर्व बहुमत हासिल करके किया, परन्तु भुट्टो ने इसे मानने से इन्कार कर दिया। मुजीब की आवामी लीग ने पूर्ण स्वायत्तता हेतु पांच सूत्रीय कार्यक्रम के आह्वान पर आन्दोलन छेड़ दिया और राष्ट्रीय संसद में बहुमत हासिल किया। फलतः पाकिस्तान में गृह युद्ध छिड़ गया। भारत के सहयोग से दिसम्बर 1971 ई० में पूर्वी पाकिस्तान एक नया देश बांग्लादेश जनतन्त्रीय गणराज्य के रूप में सामने आया।[1] भुट्टो ने सन् 1973 में एक नवीन संविधान लागू किया लेकिन कुछ समय बाद ही सैनिक तानाशाह जियाउल हक द्वारा उन्हें पदच्युत कर दिया गया और अन्ततः उन्हें फांसी दे दी गयी। पाकिस्तान के प्रत्येक शासक उसके विभाजन के पूर्व और बाद में पाकिस्तान को एक इस्लामी राज्य या इस्लामिक गणतन्त्र का नारा देते रहे। यह नारा अस्पष्ट तथा अनिश्चित है लेकिन राजनीतिक आवश्यकता ने पाकिस्तानी शासकों को ऐसा करने के लिए मजबूर कर दिया है। यह स्पष्ट है कि आधुनिक आर्थिक व्यवस्था और सामाजिक वास्तविकता को ईश्वरपरक विचार से मेल करवाना सरल नहीं है। अन्ततः यह विवादित विषय है कि इस्लामी राज्य या इस्लामी गणराज्य ठीक-ठीक क्या है? कुछ निहित स्वार्थवश तत्वों ने इसको उलझा कर रख दिया गया है। वास्तव में इस्लाम वहाँ के शासकों के लिए प्रारम्भ से ही तुरुप का पत्ता बना हुआ है। लोकतान्त्रिक तरीके से निर्वाचित शासक या सैनिक तानाशाह, सबने सत्ता इसी के द्वारा प्राप्त की ओर किसी ने भी इसकी व्याख्या स्पष्ट रूप से करने का प्रयास नहीं किया।

पाकिस्तान में सत्ता के सम्बन्ध में सेना की केन्द्रीय भूमिका रही है और शायद यही वजह है कि सुदूर पश्चिम से लेकर एशिया के धुर दक्षिण तक लोकतन्त्र की जो पवित्र स्थापना की गई है

---

1. चौधरी, जी० डब्ल्यू० : 'द लास्ट डेज ऑफ यूनाइटेड पाकिस्तान'', इन्टरनेशनल अफेयर्स, भाग-44, नं-2 अप्रैल 1973, पेज 233-239।

उसी पवित्रता को पाकिस्तान में कई बार खण्डित किया गया हैं। भारत के प्रति पाकिस्तान का रवैया प्राय: कटुतापूर्ण रहा है। कारगिल की लड़ाई में पाकिस्तान को मुंह की खानी पड़ी प्रधानमंत्री नवाजशरीफ को अपदस्थ कर आजीवन कारावास की सजा मिली और सैन्य शासक जनरल परवेज मुशर्रफ ने राष्ट्रपति की कमान संभाली।

आज पाकिस्तान स्वयं पाकिस्तान के लिए संकट बना हुआ है। पाकिस्तान अपने जन्म से ही अपने इतिहास, भूगोल, राजनीतिक सामाजिक यथार्थ और अपनी सांस्कृतिक विरासत से लड़ रहा हा। पाकिस्तान आज तक यह नहीं तय कर पा रहा है कि वह एक राष्ट्र के रूप में अपने इतिहास और भूगोल को किस प्रकार समझे और इस समझ का प्रयोग वह भविष्य के पाकिस्तान के निर्माण में किस प्रकार करे। पाकिस्तान ने अपने राष्ट्रराज्य निर्माण और संचालन के जान-अनजाने या मजबूरन जो दो तत्व थाम रखे है वे है भारत के प्रति शत्रुता ओर इस्लाम। पाकिस्तान का दुर्भाग्य ही यह है कि दोनों ही तत्व वर्तमान परिस्थितियों में उसकी मदद नहीं कर पा रहे है। भारत के प्रति शत्रुता और इस्लाम के नाम पर जो भी राजनीतिक ताकत पाकिस्तानी जनता को ख्याली ज्वार में बहा ले जाती है वही सत्ता पर कब्जा करने में कामयाब हो जाती है, परन्तु आधुनिक राष्ट्र राज्य के संचालन मे जब ये दोनों तत्व विफल हो जाते है तो उसके साथ ही इनकी दुहाई देकर सत्तासीन राजनीतिक ताकत भी विफल हो जाती है। अत: अब समय आ गया है कि पाकिस्तान वास्तविकताओं को स्वीकार करे तथा संसार में राज्य संचालन की जो नयी प्रवृत्ति विकसित हुई है उनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाये और क्षेत्रीय सहयोग की ओर अग्रसर रहे।

बांग्लादेश— पूर्वी पाकिस्तान के भू भाग से निर्मित बांग्लादेश दक्षिण एशियाई क्षेत्र का सबसे छोटा देश है। यह दिसम्बर 1971 में स्वतन्त्र हुआ। सन् 1969 में भुट्टो-मुजीब संघर्ष के परिणामस्वरूप इसकी उत्पत्ति एक सम्प्रभु राज्य के रूप में हुई। इसका विस्तार लगभग 22° उत्तरी अक्षांस से 26 1/2° उत्तरी अक्षांस तक तथा लगभग 88° पूर्वी देशान्तर से 93° पूर्वी देशान्तर तक है। इस देश की सीमा पश्चिमोत्तर और उत्तर में भारत से, पूर्व में भारत और वर्मा से तथा दक्षिण में बंगाल की खाड़ी से मिली हुई है। इसका क्षेत्रफल 148,393 वर्ग किलोमीटर तथा यहाँ की जनसंख्या लगभग 12.1

मिलियन है।[1] बांग्लादेश में नौकायन के लिए नदियां है यहां की मिट्टी जलोढ़ है। आर्थिक विकास में रुकावट यहा अत्यधिक जनसंख्या का विकास है। अधिसंख्य जनसंख्या बंगाली मुसलमानों की है जो कि प्राचीन संस्कृति को संजोये रखना चाहते है।[2]

अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि पर आधारित है। चावल सबसे मुख्य खाद्य फसल है। बांग्लादेश विश्व में जूट का सबसे बड़ा उत्पादक देश है, संसार में पैदा होने वाले सम्पूर्ण जूट का 80 प्रतिशत जूट इसी देश में होता है जो विदेशी मुद्रा कमाने का प्रमुख साधन है। उद्योगों की दृष्टि से बाग्लादेश एक पिछड़ा हुआ देश है। प्रमुख औद्योगिक उत्पादन है—वस्त्र, चीनी, जूट, चाय, कालीमिर्च, उर्वरक, प्राकृतिक गैस, बिजली, इस्पात, सिले-सिलाए कपड़े, तम्बाकू, रबर, रसायन, और मशीने। मुख्य निर्यात की वस्तुओं में चाय, जूट, जूट उत्पादित वस्तुएं, चमड़ा और मछली हैं।

बांग्लादेश जब एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अस्तित्व में आया तब उसे गरीबी को समाप्त करने और जनसंख्या दबाव के कारण अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान यहां की आर्थक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। पाकिस्तान सरकार द्वारा यहा की मुख्य सम्भावित औद्योगिक क्षेत्र को नष्ट कर दिया था। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने इस नवसृजित देश की आर्थिक समस्याओं को कम करने में काफी सहयोग दिया। इन सहभागिताओं में भारत प्रमुख था। परन्तु फिर भी बांग्लादेश इस क्षेत्र के (दक्षिण एशिया) बहुत पिछड़े देशों में से एक है।[3] इसकी आर्थिक समस्याओं की पृष्ठभूमि में गरीबी और जनसंख्या प्राकृतिक आपदाओं के रूप में गम्भीर कारक है। इसकी आर्थिक व्यवस्था अपने पड़ोसियों तथा मध्य पूर्व के देशों की उदारता और नेक-नियति पर मुख्यत: आधारित है।

बांग्लादेश में आत्मनिर्भरता के लिए प्रयास 1971 मे शेख मुजीबुर्ररहमान के नेतृत्व में आरम्भ किया गया था। स्वतन्त्रता के बाद बांग्लादेश में 16 दिसम्बर, 1972 के संविधान द्वारा धर्म निरपेक्ष

---

1. द स्टेट्स मैन्स ईयर बुक, 2001-02, संपादक-ब्रेन हन्टर, मैड मिलन प्रेस लिमिटेड, लंदन.
2. क०, स्पीदचेको : विश्व के आर्थिक और राजनीतिक भूगोल की रूपरेखा, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पेज 136।
3. फालैण्ड जे० एण्ड पाकिस्तान जे० आर०, बांग्लादेश, व टेस्ट केस फार डेलवपमेन्ट, लन्दन।

संसदीय प्रजातन्त्र की स्थापना की गयी। शेख मुजीब इसके प्रथम प्रधानमंत्री थे। इन्होंने अत्यन्त दुस्साह परिस्थितियों में देश के शासन का बागडोर सम्हाला। उस समय देश की अर्थव्यवस्था लगभग नष्ट प्राय हो गई थी। देश की स्थिति अव्यवस्थित थी, आर्थिक स्थिति अत्यन्त कठोर सम्भावनाओं से गुजर रही थी तथा दुश्मन सक्रिय थे। शेख मुजीब ने काफी अल्प समयान्तराल में देश के आर्थिक कार्यक्रम को सफलतापूर्वक प्रारम्भ किया तथा राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ किया, लेकिन इसमें भी बहुत कमजोरिया थी और शीघ्र ही प्रसासकीय मशीनरी ढीली पड़ गयी तथा जनता की मांग को लेकर इसमें दरार पड़ गयी। इन सब कारणों से शेख मुजीब ने स्वयं देश का राष्ट्रपति घोषित कर दिया और जनवरी 1975 को उन्होंने एक दलीय व्यवस्था का आरम्भ किया परन्तु 15 अगस्त, 1975 को शेखमुजीबुर्ररहमान की परिवार सहित हत्या कर दी गयी। देश में मार्शल लॉ लागू हो गया और मुश्ताक अहमद देश के नये राष्ट्रपति घोषित हुए। देश की वास्तविक शक्ति सशस्त्र सेना के पास थी और इस प्रकार अनिश्चितता और अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो गई। अन्ततः जियाउर्ररहमान ने एक बगावत के माध्यम से स्वतन्त्र बांग्लादेश की सत्ता सम्भाली। उन्होंने बांग्लादेश को एक इस्लामी गणराज्य के रूप में प्रतिष्ठित किया और आम चुनाव में विजय हासिल की। अपनी शक्ति को दृढ़ता प्रदान करने के बाद जियाउर्ररहमान ने अप्रैल 1979 में मार्शल लॉ को समाप्त कर दिया और देश के प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति हुए, लेकिन दो वर्ष तक सत्ता में रहने के बाद उनकी हत्या सेना के ही एक अधिकारी वर्ग द्वारा कर दी गयी जिसका नेतृत्व एम० ए० मनसूर ने किया। उसके पश्चात् अब्दुल सत्तार राष्ट्रपति घोषित हुए। 5 नवम्बर 1981 के चुनाव में वे राष्ट्रपति निर्वाचित घोषित हुए, परन्तु 23 मार्च 1982 को लेफ्टीनेंट जनरल हुसैन मुहम्मद इरशाद द्वारा उन्हें अपदस्थ कर दिया गया। इसाद मुख्य मार्शल लॉ प्रशासक हुए और उन्होंने संविधान को निरस्त कर दिया। कालान्तर में उन्होंने स्वयं को राष्ट्रपति घोषित किया। जनरल इरशाद ने सैनिक और असैनिक प्रसासन में अपनी सत्ता को स्थायित्व प्रदान किया और चुनाव में विजयी होकर शासन को वैधता प्रदान की। मुख्य विरोधी दलों ने इस चुनाव का बहिष्कार किया। जनरल इरशाद की आर्थिक नीतियों के परिणाम स्वरूप बांग्लादेश ने कुछ ठोस प्रगति की। बेगम खालिदा जिया (जियाउर्ररहमान की पत्नी) के नेतृत्व में बांग्लादेश में पुनः संसदीय प्रजातन्त्र कायम हुआ है तथा वर्तमान में वो बांग्लादेश की प्रधानमंत्री हैं।

प्रधानमंत्री श्रीमती खालिदा जिया अपने पड़ोसी देशों से सम्बन्ध मधुर रखने की इच्छुक है। बांग्लादेश भारत और भूटान का निकटस्थम पड़ोसी देश है तथा वह व्यापार के माध्यम से (व्यापार और अधिक बढ़ाकर) अधिकाधिक लाभान्वित हो सकता है।

पाकिस्तान की ही तरह बांग्लादेश भी एक मुस्लिम राज्य घोषित हो चुका है, परन्तु फिर भी उसका सम्बन्ध पाकिस्तान के साथ सुमधुर नहीं है। अन्य सार्क सदस्य देशों के साथ बांग्लादेश के सम्बन्धों का जहां तक प्रश्न है, उसमें भी कमोवेश यही स्थिति है। लेकिन भारत के साथ बांग्लादेश की कुछ समस्याएँ है जिन्हें सुलझा लेना आवश्यक है अन्यथा सार्क संगठन एक औपचारिकता मात्र रह जायेगा।

श्रीलंका—श्रीलंका हिन्दमहासागर के मध्य में स्थित है। पाक जलडमरू मध्य नामक जल की एक पतली पट्टी भारत और श्रीलंका को विभाजित करती हैं। श्रीलंका भारतीय प्रायद्वीप के बिल्कुल दक्षिण में स्थित है। यह एशिया का सबसे बड़ा द्वीप है। श्रीलंका लगभग 8° अक्षांस उत्तर से 10° अक्षांस उत्तर तक तथा लगभग $79^1/_2$ पूर्वी देशान्तर से लेकर $81^1/_2$ पूर्वी देशान्तर तक विस्तृत है। इस देश का क्षेत्रफल 65,610 वर्ग किलोमीटर है। श्रीलंका में जनसंख्या 18.8 मिलयिन (2001) है।[1] जिसमें कई जाति के लोग शामिल है। सबसे बड़ा जातियों का समुदाय सिंहली है। सिंहली बौद्ध धर्मावलम्बी है। राज्य की सरकारी भाषा सिंहली है जबकि राष्ट्रीय भाषाएं सिंहली और तमिल हैं। यहाँ बौद्ध, हिन्दू, इस्लाम और ईसाई धर्म को मानने वाले लोग निवास करते हैं। अन्य दक्षिण एशियाई देशों की भांति श्रीलंका भी कृषि पर आधारित देश है। इसके एक तिहाई भाग पर कृषि ही की जाती है तथा आधे से अधिक श्रमिक व्यक्ति कृषि कार्यो में ही व्यस्त हैं। यहाँ की कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 28 प्रतिशत कृषि से ही प्राप्त होता है। श्रीलंका के मुख्य कृषि उत्पाद चाय, रबड़ और नारियल है। व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण खनिज ग्रेफाइट है। इसके अतिरिक्त लौह अयस्क, मोनाजाइट, इल्मेनाइट, चूना पत्थर, तेल और कोयोलिन के भंडार भी है। उद्योग में सीमेंट, कपड़ा और उर्वरक सम्मिलित है।

---

1. द स्टेट्स मैन्स ईयर बुक, 1992-93, मैकमिलन प्रेस लिमिटेड , लन्दन।

1972 तक श्रीलंका 'सीलोन' के नाम से विख्यात था। सन् 1977 में जयवर्धने राष्ट्रपति हुए और उन्हें श्रीलंका में नई आर्थिक नीति विकसित की जिससे व्यपार और उद्योग दोनों को उदार बनाया गया। सरकार ने स्वयं की आर्थिक नीतियों के अन्तर्गत निजी और सार्वजनिक उद्यमों को बढ़ावा दिया जिससे उत्पादन और रोजगार के अवसर बढ़े।[1]

वर्तमान समय में श्रीलंका जातीय समस्या से जूझ रहा है जिससे देश की एकता और अखण्डता को खतरा उत्पन्न हो गया है। देश के उत्तरी भाग में 1985 से बसे तमिल अलग प्रान्त और सरकार की मंग को लेकर रक्तिम संघर्ष में लगे है। ये देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित किए हुए है और सुरक्षा बजट भी आवश्यक रूप से इसी कारण बढ़ गया है।[2]

श्रीलंका ब्रिटिश शासनाधिकार से 1948 में स्वतन्त्र हुआ। तब इसने ब्रिटेन की तरह संसदीय प्रजातन्त्र को अपनाया और कुछ समय के लिए राज्य के प्रधान ब्रिटिश राजा ही बने रहे। यहां की संसद के दो सदन थे और निम्न सदन का नेता ही प्रधानमंत्री होता था।[3] सन् 1956 में अंग्रेजी के स्थान पर सिंहली भाषा को सरकारी भाषा बनाया गया। 1972 में यह देश गणतन्त्र बना और एक सदन वाली संसदीय व्यवस्था की स्थापना की गयी। यह राजनीतिक ढांचे का एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था। सन् 1978 में देश का एक नया संविधान बनाया गया जिसके अनुसार फ्रांसीसी नमूने पर आधारित अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को लागू किया गया। सन् 1983 में राष्ट्रपति जयवर्धने ने द्वितीय बार चुनाव में जीत हासिल की उन्होंने एक जनमत संग्रह कराया। परिणामस्वरूप संसद और साथ ही साथ सरकार का कार्यकाल छ: वर्षों का हो गया। इतना होने के बावजूद श्रीलंका की राजनीति दो दलों में सिमट कर रह गई। ये दोनों दल (जी० एन० पी० और एस० एल० एफ० पी०) क्रमश: अथवा सक्रिय रूप से सरकार निर्मित करते रहे। इसी आधार पर कुछ लेखकों द्वारा श्रीलंका को द्विदलीय शासनप्रणाली वाली व्यवस्था की संज्ञा दी गयी है।[4]

---

1. सन्डे आब्जर्वर, कोलम्बो, जून 22, 1986।
2. मार्विन, डी० सिल्वा : ''डी मेल काल्स आउट द डोर्ब्स,'' साउथ, जुलाई, 1986 पेज 43।
3. डी० सिल्वा के० एम० सम्पादित ''श्रीलंका ए सर्वे'', लन्दन 1977 स्पेशली चैपटर्स, पेज 12 15।
4. वुडबर्ड, सी० ए० (1969), द ग्रोथ ऑफ ए पार्टी सिस्टम इन सिलोन, प्राविडेन्स आर० आई० एण्ड (1974-75), ''श्रीलंका इलेक्टोराल एक्सपेरियेन्स फ्राम परसनल टू पार्टी पालिटिक्स'', पेसिफिक अफेयर्स।

इसके अतिरिक्त श्रीलंका में और दल है जो राजनीति में सक्रिय है। श्रीलंका की राजनीति की चारित्रिक विशेषता सम्प्रदायवाद है और भाषा तथा धर्म एक दूसरे से गुथे हुए है ये शक्तियां संसद में ही नहीं बल्कि संसद के बाहर भी सक्रिय है।[1] 1956 में भण्डारनायके ने भाषा के प्रश्न पर चुनाव जीता और सिंहली को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा देने तथा बौद्धधर्म का समर्थन करने का वचन दिया। इन्ही मुद्दों ने तमिलों की प्रतिक्रिया को जन्म दिया और देश को भाषायी और साम्प्रदायिक अशान्ति ने अपने काले साये में घेर लिया, जिससे देश अभी तक बाहर नहीं निकल पाया है। 1978 में तमिलों को कुछ सहूलियतें जैसे तमिल भाषा की स्वीकृति आदि मिली थी। तमिल यूनाइटेड लिबरेशन फ्रन्ट ने इस तमिलों के हक के लिए चल रहे आन्दोलन का विस्तार किया और बाद में उग्रवादी संगठन जैसे कि लिट्टे, ईलम, जे० वी० पी०, ई० जी० आर० एल० एफ० आदि ने इस आन्दोलन को हिसांत्मक जामा पहना दिया।

श्रीलंका में जातिगत राजनीति का अत्यधिक प्रभाव है। दलबन्दी जातीय आधार पर ही होती है। श्रीलंकाई राजनीति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वहा अधिकांश राजनीतिक कार्यवाही संवैधानिक विधि द्वारा सम्पन्न नहीं होने पाती बल्कि उन पर जातिगत राजनीति का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है। इस देश में हिंसा अब प्राय: होने लगी है और सरकार को वहां आपातकाल लागू करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं दिखता है।

बहुसंख्यक सिंहली और अल्पसंख्यक तमिलों के मध्य जातीयता की लड़ाई में जुलाई 1983 और दिसम्बर 1986 के बीच कम से कम 4000 के करीब लोग मारे गए।[2] साधारणतया होने वाली हिंसा में 125000 भारतीयों को तमिलनाडु में आश्रय हेतु विवश होना पड़ा।[3] लगभग 50000 यूरोपीय और आस्ट्रेलियन इसी जातीय संघर्ष से विवश होकर चले गये। सन् 1983 का जी० पार्थसारथी मिशन, सन् 1984 का सर्वदलीय सम्मेलन और 1985 का थिम्पू शान्ति समझौता जातीय संघर्ष, जो जातीय संघर्ष को समाप्त करने के महत्वपूर्ण प्रयास थे, परन्तु सभी व्यर्थ हो गये।

---

1. दुर्शन, एन० सी० एण्ड राबर्ट एम० (1978), ''इर्थनिक कनफिलक्ट्स इन श्रीलंका एण्ड मिहर्लाज पर्सपेक्टिवस : बैरियर्स टू एकोमोडेशन; माडर्न एशियन स्टटीज।

2. सन्डे आब्जर्वर (कोलम्बो), अक्टूबर 26, 1986।

3. वही, अगस्त 31, 1986।

29 जुलाई, 1987 को श्रीलंका के तत्कालीन राष्ट्रपति जयवर्धने और भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी के बीच एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक समझौता हुआ। इस समझौते के अन्तर्गत भारत की सेना वहां जाकर उग्रवादी संगठनों से लोहा लेकर उनका समर्पण करवायेगी। परन्तु 1988 में रणसिंह प्रेमदास श्रीलंका के राष्ट्रपति बने उन्होंने भारत द्वारा फेजी गई शान्ति सेना का प्रबल विरोध किया फलस्वरूप 20 सितम्बर, 1989 को भारतीय शान्ति सेना (आई० पी० के० एफ०) वापस भारत आ गई। उन्होंने तमिल अलगावाद तथा उग्रवादी सिंहली संगठन जनता विमुक्ति पेरानुमा का भी विरोध किया। 11 जनवरी 1989 को राष्ट्रपति प्रेमदास ने 5 वर्ष से चल रहे आपात शासन की समाप्ति की और आम चुनाव सम्पन्न कराये। 1993 , मई के प्रारम्भ में राष्ट्रपति प्रेमदास की कोलम्बों में बम द्वारा हत्या कर दी गई। 1994 को हुए संसदीय चुनाव मे सुश्री चन्द्रिका कुमारतुंगा राष्ट्रपति बनी। उनके राष्ट्रपति बनने के बाद उनकी माँ सिरिमावो भंडारनायके प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुई। भारत के इस पड़ोसी देश ने अद्‌भुत चरित्र पाया है। वहाँ एक ओर लोकतनत्र की जड़े व परम्पराएं बेहद मजबूत है, तो हिंसा का तांडव नृत्य भी वहां बदस्तूर जारी रहता है।

श्रीलंका में तमिलों को अंग्रेजों ने भारी संख्या में काफी एवं चाय बागानों मे कार्य करने हेतु बसाया और उनके रहन-सहन शिक्षा-दिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। शायद यही वजह है कि अल्पसंख्यक होने के बावजूद तमिल अपनी कठिन मेहनत एवं शिक्षा के क्षेत्र में अग्रिम रहने के कारण श्रीलंका में प्रभावी रहे है साथ ही वहाँ की राजनीति में निर्णायक भूमिका का निर्वाह करते आ रहे है। अंग्रेजों ने अपनी 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का श्रीलंका में भी प्रयोग किया। उन्होंने एक तरफ जहाँ बौद्ध, हिन्दू एवं मुसलमानों के मध्य नफरत की दीवार खड़ी की, वही दूसरी ओर उन्होंने तमिलों और सिंहलियों को भी लड़ाया। शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी होने एवं अथक परिश्रमी होने के कारण तमिल अंग्रेजी शासनकाल में काफी आगे निकल गये और महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद हासिल किये फलत: सिंहलियों में असन्तोष व्याप्त होना स्वाभाविक ही था।

श्रीलंका की आजादी हेतु किये गये राष्ट्रीय आन्दोलनों में तमिलों ने बराबर की सहभागिता दी थी किन्तु आजादी के बाद दोनों गुटों में जातीय विद्वेष कम होने के बजाय और अधिक गहरा हो गया जो आज तक जारी है। राष्ट्रपति कुमारतुंग द्वारा 17 वर्षीय जातीय संघर्ष को समाप्त करने के लिए संविधान विधेयक को संसद में रखा गया लेकिन दो-तिहाई बहुमत न होने के कारण विधेयक पारित नहीं हो सका।

नेपाल— नेपाल विश्व का अकेला हिन्दूराज्य है। विश्व की सबसे ऊँची पर्वतीय क्षेत्र में बसे स्थलीय सीमाओं वाले इस देश के उत्तर में तिब्बत, पूर्व में सिक्किम और पश्चिमी बंगाल दक्षिण में बिहार, पश्चिम बंगाल तथा पश्चिम में उत्तर प्रदेश (भारत) से घिरा हुआ है। इसका विस्तार लगभग 80°15' और 88°10' देशान्तर पूर्व तथा 26°20' और 30°10° अक्षांस उत्तर तक है। लगभग आयताकार रूप से यह पूर्व से पश्चिम तक लगभग 800 किलोमीटर लम्वा तथा उत्तर से दक्षिण तक लगभग 175 किलोमीटर चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल 141, 181 वर्ग किलोमीटर है।[1] नेपाल का आकार अमेरिका के फ्लोरिडा राज्य के बराबर या ब्रिटेन से थोड़ा छोटा है। उत्तर में नेपाल की सीमा लोकगणराज्य चीन के तिब्बत राज्य के साथ या तो हिमालय शिखर के साथ इसकी पर्वत श्रृंखला की छोटी चोटियों जो सीमान्त तिब्बती पहाड़ के नाम से जानी जाती है, के साथ है। हिमालय और तिब्बती पहाड़ एक प्राकृतिक सीमा की संरचना करते है। हिमालय में नारा कुटी, कोदारी इत्यादि कई दर्रे है जो तिब्बत-नेपाल को जोड़ते है। दक्षिण में भारत के साथ नेपाल सीमा 800 किलोमीटर लम्बी है। इस भौगोलिक स्थिति के वजह से नेपाल भू-परिवेष्ठित राज्य है।[2] प्रत्यक्ष रूप से इसका समुद्र तक प्रवेश नहीं है। कलकत्ता इसका सबसे नजदीकी बन्दरगाह है। यह काठमान्डू (नेपाल की राजधानी) से 890 किलोमीटर तथा राज्य की पूर्वी सीमा से 710 किलोमीटर दूर हैं।

नेपाल की जनसंख्या लगभग 24.35 मिलियन (2002) है।[3] यहाँ 89 प्रतिशत लोग हिन्दू, 9 प्रतिशत बौद्ध और 2 प्रतिशत जनसंख्या इस्लाम धर्म को मानती है। नेपाल के महाराजाधिराज 'पशुपति' एवं 'विष्णु' के भक्त एवं शक्ति के पुजारी हैं साथ ही साथ महात्मा बुद्ध के प्रशंसक रहे है। इन्हें भारतीय क्षेत्र मे दो विशेषाधिकार मिले हुए है। प्रथम, पुरी के जगन्नाथ मन्दिर में वे हीरों के सिंहासन पर चढ़कर पूजन अर्चन कर सकते है जबकि मन्दिर के स्वामी पुरी के भूतपूर्व महाराजा को भी यह अधिकार नहीं है। द्वितीय प्रमुख पुजारी एवं श्रृंगेरी मठ के जगत् गुरु शंकराचार्य के अलावा वे तीसरे प्रमुख व्यक्ति है जो राजेश्वरम् मन्दिर के परम पवित्र स्थान में अपाधना कर सकते हैं।[4]

---

1. द स्टेट्स मैन्स ईयर बुक, 2001-02, मैकमिलन प्रेस लिमिटेड लन्दन।
2. उपाध्याय, एस० के० : राइट ऑफ ट्रान्जिट'', राइजिंग नेपाल, मार्च11, 1970
3. द स्टेट्स मैन्स ईयर बुक, 2000-01, मैकमिलन प्रेस लिमिटेड लन्दन।
4. रावत, पी० सी०, ''इन्डोनेपाल इकोनामिक रिकेशन्स'' नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली 1975, पेज-2।

नेपाल की धरातलीय सीमा बड़ी विरोधभासपूर्ण है। विश्व की सबसे ऊँची चोटी माउन्ट एवरेस्ट (8848) नेपाल की ही शोभा बढ़ा रही है। यूमितल को तीन क्षेत्रों में बांटा जा सकता है—उत्तर में स्थित ऊँचा पहाड़ी क्षेत्र, मध्य भूभाग की पहाड़ियां एवं घाटिया तथा दक्षिण में स्थित तराई क्षेत्र। तराई क्षेत्र को भारतीय प्रायद्वीप के समतल मैदान का विस्तार माना जाता है। कुल क्षेत्रफल का 76% ऊँचा पहाड़ी एवं मध्य भूभाग तथा 24% तराई क्षेत्र है।

नेपाली अर्थव्यवस्था बहुत कुछ कृषि पर आधारित है। कुल राष्ट्रीय आय में 60 प्रतिशत केवल कृषि का योगदान है इस देश की मुख्य फसल धान है। कृषि भूमि एवं किस्म के अनुसार मक्का द्वितीय स्थान पर है। तत्पश्चात गेहूँ और आलू का स्थान है। जूट की पैदावार बहुत अल्प मात्रा में होती है। उपर्युक्त जलवायु के कारण दक्षिणी-पूर्वी तराई के मोरंग और मैरहवा में तिलहन, तम्बाकू तथा गन्ना की खेती की जाती हैं नेपाल वन सम्पदा जल विद्युत क्वार्टज भण्डार की दृष्टि से समृद्ध है। यहां पर्यटन व्यवसाय भी काफी उन्नति कर रहा है। जो यहाँ की आय का एक प्रमुख स्रोत है। इसके अतिरिक्त औद्योगिकक्षेत्र में जूट से निर्मित वस्तुएं, चीनी, सिगरेट, सूती वस्त्र उद्योग, सीमेन्ट, पत्थर के ईट आदि है।[1]

नेपाल में लगभग 44000 वर्ग किलोमीटर भूमि वन आच्छादित है जो कुछ क्षेत्रफल का करीब 30 प्रतिशत है। वनों से प्रचुर मात्रा में इमारती लकड़ी, जड़ी-बूटी, मसाला, अखरोट आदि मिलते है। नेपाल में उपलब्ध वन का क्षेत्रफल, उससे सटे हुए उत्तर प्रदेश (भारत) के वन की तुलना में लगभग दूना है परन्तु इससे नेपाल की आय उत्तर प्रदेश की आय के 10 प्रतिशत के बराबर रहती है।[2] जिसके पीछे कारण यह है कि यहाँ उपलब्ध वनों को उचित रख-रखाव नहीं मिल पा रहा है।

नेपाल में 94 प्रतिशत श्रमिक कृषि कार्य में व्यस्त है। धान प्रचुर मात्रा में तराई में पैदा होता है। सरकारी आकड़ों के अनुसार धान के उत्पादन की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ रही हैं।

---

1. ब्लेकी,पी० एम०, : "कामर्सन, जे एंण्ड सेडान, डी० "नेपाल इन क्राईसिस : ग्रोथ एंण्ड स्लेगनेशन ऐट द पेरिफेरी, दिल्ली, 1980।
2. रावत, पी० सी० : "इन्डो-नेपाल इकोनामिक रिलेशन्स," नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1975, पेज 7।

भारत की ही तरह नेपाल ने भी पंचवर्षीय योजना व्यवस्था को अपनाया है, फिर भी वह तीव्रता के साथ औद्योगिक विकास नहीं कर पा रहा है। कुछ पंचवर्षीय योजनाएँ बनी भी और उन्हें पूरे देशभर में लागू भी किया गया, परन्तु आर्थिक क्षेत्र में उसका प्रभाव नगण्य ही रहा। नेपाल में आर्थिक असमानता बड़ी मात्रा में व्याप्त है। देश का अधिक आर्थिक साधन काफी समय तक उच्च सामन्त वर्ग और सेना के जनरल के हाथ में था नेपाल सरकार ने 1960 में उच्चवर्ग के भूमि स्वीकृत करने के विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया, भूमि सुधार किया गया परन्तु अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आया।[1]नेपाल के पिछड़ेपन के लिए देश की भौगोलिक परिस्थिति, इसकी असमान जलवायु और सरकार की सामन्तशाही प्रवृत्ति उत्तरदायी है। नेपाल अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं और अन्य विकसित देशों द्वारा वित्तीय तथा अन्य प्रकार की सहायता प्राप्त करता रहा है, परन्तु अपर्याप्त और दिशाहीन प्रसासन के कारण आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में असफलता मिली है। नेपाल को नये रूपरेखा पर आधारित तथा दक्ष प्रशासन की आवश्यकता है जिसे अर्थव्यवस्था में अपेक्षित उन्नति प्राप्त हो सके।

नेपाल में राजतन्त्र का इतिहास काफी प्राचीन है। ब्रिटिश काल में भी यहा राजशाही कायम रही। सन् 1950 के बाद से शासन की शक्ति मुख्यत: राजा और उसके सम्बन्धियों तक ही सीमित रही है। सन् 1950 के पूर्व नेपाल में राजाओं का शासन था जो करीब एक शताब्दी तक निरकुंश प्रधानमंत्री के रूप में रहे। सन् 1950 में नेपाल में हुई एक क्रान्ति के तहत तथा भारतीय सहयोग द्वारा त्रिभुवन नेपाल के राजा हुए। उसके बाद परस्परागत रूप से सम्प्रभुता का निवास राजा में ही रहा। वी० पी० कोइराला पहले निर्वाचित प्रधानमंत्री बने। भारत ने नेपाल में प्रजातन्त्र की बहाली का समर्थन किया। नेपाल में प्रजातन्त्र की अग्नि को प्रज्वलित करने का श्रेय विश्वेश्वर प्रदास कोइराला को ही है।

सन् 1957 में नेपाल में सम्पन्न हुए आमचुनाव के तहत नेपाली कांग्रेस मुख्य राजनीतिक दल के रूप में उदित हुई। परन्तु तीन वर्ष के बाद ही महाराजाधिराजा महेन्द्र ने इस व्यवस्था को सेना के सहयोग से समाप्त कर दिया तथा कोइराला सहित अनेक राजनीतिक नेताओं को कैद की सजा सुनाई गई।

---

1. रेग्मी, एम० सी० : "लैण्ड ओनरशिप इन नेपाल," बर्कले, 1979।

कालान्तर में राजा ने नेपाल में दलविहीन पंचायत व्यवस्था लागू की जिसका प्रधान राजा स्वयं था अर्थात् पंचायत की सम्पूर्ण शक्ति राजा में ही केन्द्रित थी। पंचायत व्यवस्था त्रिस्तरीय थी जिसके शीर्ष पर राष्ट्रीय पंचायत स्थित थी। उसके पश्चात् क्रमश: द्वितीय और तृतीय स्थान पर जिला पंचायत तथा ग्राम पंचायतें थी। राष्ट्रीय पंचायत में 140 सदस्य थे। ये सदस्य जनता द्वारा, प्रत्यक्ष मतदान के अन्तर्गत चयनित किये जाते थे। 28 सदस्यों को राजा स्वयं मनोनीत करता था। प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रीय पंचायत के समर्थन से राजा द्वारा होती थी।

कुछ समय के बाद राजशाही की नीतियों के विरुद्ध नेपाली जनता ने व्यापक प्रदर्शन किया परिणामस्वरूप संसदीय शासन व्यवस्ता की स्थापना की गई जिसमें शासन का प्रधान प्रधानमंत्री होगा और राजा के पास नाममात्र की शक्ति होगी। 2001 में नेपाल में एक विभत्स घटना घटी जिसमें स्वयं युवराज दीपेन्द्र ने महाराज वीरेन्द्र, महारानी ऐश्वर्या सहित राजघराने के छ: लोगों की हत्या कर स्वयं को भी गोली मार ली तत्पश्चात् महाराज वीरेन्द्र के भाई ज्ञानेन्द्र को नया महाराज बनाया गया।

सांस्कृतिक रूप से नेपाल तथा अन्य दक्षिण एशियाई देशों काफी समानता है, परन्तु नेपाल की एक मुख्य समस्या निम्न आर्थिक प्रगति है, क्योंकि इसकी जनसंख्या तीव्रता के साथ बढ़ रही है। नेपाल में आन्तरिक पूंजी के स्रोत कम होने से इसे विदशी सहायता की अत्यधिक आवश्यकता है। ऐसी परिस्थितियों के चलते नेपाल अपनी अर्थव्यवस्था को क्षेत्रीय सहयोग के द्वारा ऊँचा उठा सकता है। भारत के साथ नेपाल का व्यापार लगभग 90 प्रतिशत है। भारत ने नेपाल को कलकत्ता बन्दरगाह से आयात-निर्यात की छूट प्रदान की है क्योंकि नेपाल एक भूपरिवेष्ठित राष्ट्र है। अन्य दक्षिण एशिया के देशों के साथ नेपाल का व्यापार लगभग नगण्य ही है। नेपाल अन्य दक्षिण एशियाई देशों विशेषकर बांग्लादेश के साथ व्यापार को बढ़ाने का इच्छुक हैं।

नेपाल प्राकृतिक संसाधनों में काफी धनी राष्ट्र है परन्तु मुख्य समस्या पूंजी, तकनीकि आदि की है जो उसे अन्य देशों से ही प्राप्त हो सकती है। एक अनुमान के अनुसार विश्व की 2.27 प्रतिशत पनविद्युत शक्ति केवल नेपाल के पास है। नेपाल में औद्योगिकीकरण की कमी है इसलिए नेपाली अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए देश में औद्योगीकीकरण करना अत्यन्त आवश्यक है। नेपाल आर्थिक सहायता और व्यापार के दृष्टिकोण से भारत पर निर्भर है। भारत के प्रयास से नेपाल में कई सम्मिलित

परियोजनाएं जैसे-कोसी, गन्डक, देवीघाट और कर्नाली कार्यान्वित है। दोनों देशों की सीमाएं एक दूसरे के किए खुली हुई हैं तथा काठमाण्डू एवं अन्य कई स्थानों पर भारतीय प्रवासी ही मुख्य व्यवसायी है।

भूटान— भूटान हिमालय में अवस्थित एक पहाड़ी देश है। भूटान की भांति नेपाल भी एक भूपरिवेष्ठित राष्ट्र हैं। इसकी सीमाए पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में भारत से एवं उत्तरी में चीन से मिलती है। इसका क्षेत्रफल 46,600 वर्ग किलोमीटर है। और जनसंख्या 20 लाख के करीब है।[1] इसका विस्तार लगभग 27° अक्षांस उत्तर से लेकर $28^1/_2$° अक्षांस उत्तर तक तथा 89° पूर्वी देशान्तर से 92° पूवी देशान्तर तक है। औपनिवेशिक काल में भूटान अंग्रेजी शासन का रक्षित राज्य था। भूटान की प्रतिरक्षा और वैदिशिक सम्बन्धों का संचालन दिल्ली से ही होता था। भारत को 1947 में स्वतन्त्रता हासिल के होने के बाद भूटान भी एक सम्प्रभु राष्ट्र बन गया। 1971 में भूटान ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता हासिल की। भूटानी जनसंख्या का 75 प्रतिशत बौद्ध तथा 25 प्रतिशत हिन्दू तथा नेपाली है। यहाँ भोटिया, नेपाली, लेप्चा एवं भारतीय मूल के लोग निवास करते है। नेपाल की राष्ट्रीय भाषा जोंग्खा तथा नेपाली है। भूटान की अर्थव्यवस्था का आधार प्राकृतिक साधन है। कृषि और पशुपालन में यहा लगभग 90 प्रतिशत श्रमिक कार्यरत हैं।

नेपाल का मुख्य उद्यम कृषि है। तथा यहा लगभग 5500 वर्ग किलोमीटर भूमि कृषि के लिए उपयोग में लायी जाती है। मुख्य उत्पादों में धान, गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, आलू, सेब, सन्तरा, इमारती लकड़िया, हाथ से बुने हुए वस्त्र तथा चमड़ा आदि है।[2] भूटान के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का लगभग 65 प्रतिशत भाग वनों से घिरा हुआ है। इससे प्राप्त इमारती लकड़िया, तापीन तथा परतदार लकड़िया (प्लाईवुड) विदेशों के निर्यात की जाती है। भूटान में पिडेन सीमेन्ट संयत्र द्वारा प्रतिदिन 300 मीटरी टन सीमेन्ट का उत्पादन होता है। भूटान इस संयत्र से उत्पादित सीमेन्ट द्वारा घरेलू आवश्यकताओं को पूर्ति करने के अलावा भारतीय पूर्वोत्तर प्राप्त को सीमेन्ट का निर्यात भी करता है। यही नहीं यहां के अधिकतर औद्योगिक संस्थान भारत के सहयोग, परामर्श तथा देख-रेख में संचालित किये जाते है।

---

1. द स्टेट्स मैन्स ईयर बुक, 2000 01 मैकमिलन प्रेस लिमिटेड, लन्दन।
2. दिनमान, 14-20 अगस्त, 1983।

परम्परागत ढंग से कृपि करने तथा नई तकनीकि की अल्पता के कारण खाद्यान्न तथा उत्पादन काफी कम होता है तथा भूटान को अधिक मात्रा में आयात करना पड़ता है। अत: भूटान में आर्थिक व्यवस्था के स्तर को ऊँचा उठाने एवं औद्योगिकीकरण की संभावना को तीव्र करने के प्रयास निरन्तर जारी है।

नेपाल में विदेशी मुद्रा अर्जन का मुख्य साधन पर्यटन है जिससे प्रतिवर्ष करीब दस लाख डालर की आय हो जाती है। विश्व के अल्प विकसित तथा गरीब राष्ट्रों में भूटान द्वितीय स्थान पर है। संचार व्यवस्था के क्षेत्र में भूटान का भारत के मुख्य शहरों के साथ टेलीफोन, टेलेक्स सम्बन्ध कायम है। वर्तमान में यह भारत का संरक्षित राज्य है।[1]

भूटान में वंशानुगत निरंकुश राजतन्त्र है। देश की अखण्डता के लिए एक आवश्यकता के रूप में राजतन्त्र की स्थापना 1907 में हुई थी।[2] भूटान के प्रथम दो राजा विगीन वाचूंचुक और जिग्मे वांग्चुक देश में कोई नवीन व्यापक कार्यक्रम आरम्भ करने में असमर्थ रहे।

भूटान के आन्तरिक मामलों मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन तब हुआ जब भूटान के द्वितीय शासक अथवा राजा जिग्मे वांग्चुक का 1952 में स्वर्गवास हो गया। उनके पुत्र जिग्में दोर्गी वांग्चुक ने एक राष्ट्रीय सभा (शोग्दू) की स्थापना की जिसका उद्देश्य देश के निर्णय निर्माण प्रक्रिया में विभिन्न वर्गों के लोगों को शामिल करना था। लेकिन इससे भी देश की आर्थिक व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं आया। देश का आर्थिक-सामाजिक जीवन स्तर लगभग स्थिर रहा। यहाँ अर्थव्यवस्था को आधुनिक आयाम देने के प्रयत्न सन् 1958-59 में घटित दो घटनाओं के ओट में असफल सिद्ध हो गये। प्रथम घटना भारतीय प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू की भूटान यात्रा थी जिन्होंने भूटान के आर्थिक उत्थान हेतु आवश्यक वित्तीय सहायता देने का वचन दिया। उन्होंने भूटान को आश्वस्त किया कि भारत यहां के घरेलू मामलों में कभी हस्तक्षेप करने की कोशिश नहीं करेगा तथा वह भूटान की सम्प्रभुता का हमेशा आदर और रक्षा करेगा। भूटान अपने कल्याणकारी कार्यक्रमों और

---

1. परसाई, भारत कुमार, दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग (नेपाली भाषा) पेज ८-९, माझा प्रकाशन, ललित पुर।
2. सिंह, नगेन्द्र, "भूटान ए किंगडम इन हिमालयाज," नई दिल्ली, 1972।

नीतियों की रूपरेखा बनाने के लिए स्वतन्त्र था। भारत ने न केवल वित्तीय बल्कि तकनीकि जानकारी भी देने का प्रबन्ध किया जिससे देश का विकास तीव्रता से हो सके।

द्वितीय चीन द्वारा तिब्बती क्रान्ति का बेदर्दी से दबा दिया जाना। दलाईलामा का पलायन तथा भूटान के पूर्वोत्तर सीमा पर चीनी सैनिकों के जवान ने भूटानी सरकार पर गहरा दबाव डाला। अब उन्होंने भारत की वित्तीय और आर्थिक सहायता से देश के आधुनिकीकरण करने का प्रबन्ध किया। इस तरह बाह्य घटनों का दबाव और आन्तरिक विवशता के दबाव में 1960 के दशक में भूटान में काफी परिवर्तन हुए। राजशाही सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक समस्याओं का सामना करने लगी। इसी दौरान दो गुटों में विरोध के फलस्वरूप जिग्में दोराजी की 1964 में हत्या कर दी गई। जिग्मे सिग्मे वांग्चुक ने चतुर्थ राजा के रूप में अपने पिता से 24 जुलाई 1972 को गद्दी प्राप्त की। वे नेपाली-भूटानी को भूटानी राष्ट्रीय जीवन में लाने के लिए उत्साहित थे। राजशाही के समक्ष अनेक आर्थिक समस्याएं है। भूटान अधिकांशतः वाह्य सहयोग पर निर्भर करता है, विशेषतया आर्थिक विकास हेतु भारतीयसहयोग पर। भूटान ने 1961 से आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित कर रहा है। भूटान छठी पंचवर्षीय योजना में कुल 950 करोड़ रुपये व्यय हुए थे जिसमें से 300 करोड़ रुपये का सहयोग भारत ने ही किया था।[1] संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य बाह्य स्रोतों के अन्तर्गत भूटान को उसके पूरे वित्तीय कार्यक्रमों का लगभग 30 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है।[2] इसके अलावा विश्व की अनेक संस्थाएं भूटान के आर्थिक विकास में रूचि ले रही हैं। परिणामस्वरूप यह देश तीव्र गति से आर्थिक प्रगति कर रहा है। 1993 में भारतीय प्रधानमंत्री नरसिंहाराव ने भूटान को लगभग 25 लाख रुपये का एक संचार, उपकरण उपहार दिया जिससे भूटान विश्व के किसी भी भाग से संचार सम्पर्क कायम कर सकता है। भूटान का अन्य दक्षिण एशियाई देशों से भारत की भांति सहयोगात्मक सम्बन्ध नहीं है किन्तु फिर भी वे देश आपस में वौचारिक मतभेद नहीं रखते।

मालद्वीव—हिन्दमहासागर में स्थित मालद्वीव एक गणराज्य है।26 जुलाई, 1965 को यह देश स्वतन्त्र हुआ। इसमें 26 द्वीपों की एक माला है जो 90000 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। यहाँ

---

1 हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 23 अगस्त 1993।

2. एशिया ईयर बुक; फार ईस्टर्न इकोनामिक रिव्यू, 1983 पेज 118।

का कुल क्षेत्रफल 298 वर्ग किलोमीटर है। मालद्वीव का विस्तार लगभग भूमध्य रेखा से 8° उत्तरी अक्षांस तक तथा 72° पूर्वी देशान्तर से 75° पूर्वी देशान्तर तक है। यह द्वीप 26 प्रवाल द्वीपों का सम्मिलित रूप है। श्रीलंका से यह 724 किलोमीटर पश्चिम में स्थित है। मालद्वीव में इन द्वीपों के अतिरिक्त करीब 2000 और छोटे-छोटे द्वीप है। यह हिन्दमहासागर को तात्कालिक राजनीतिक महत्व प्रदान करता है। यह उत्तर से दक्षिण तक करीब 300 मील कम्बा है।

मालद्वीप पर सन् 1887-1965 तक ब्रिटिश शासन का आधिपत्य था। 1965 में यह स्वतन्त्र हुआ, नवम्बर 1968 में यह गणराज्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। सन् 1976 में ब्रिटेन ने यहाँ से अपना सैनिक अड्डा हटा लिया अत: मालद्वीव की स्वतन्त्रता का वास्तविक इतिहास यही से प्रारम्भ होता है। मालदीव की पूरी आबादी सुन्नी मुसलमानों की है। यहां का धर्म इस्ललाम है तथा भाषा दिवेही (मालदीवियन) है। मालद्वीव की जनसंख्या लगभग 2 लाख 69 हजार है।

मालद्वीव हिन्दमहासागर को तत्कालीन राजनीति में सामरिक महत्ता प्रदान करता है। भारत से मालदीव काफी नजदीक है। इसकी आय का प्रमुख स्रोत मत्स्य और पर्यटन है। मछली व्यवसाय में करीब 95 प्रतिशत श्रमिक कार्यरत है। विदेशी मुद्रा का 2/5 भाग इसी से ही मिलता है। मालद्वीव के आर्थिक विकास की प्रमुख बाधा स्रोतों की अल्पता है। बहुत समय तक मालद्वीव का स्थान विश्व के सबसे गरीब देशों में से एक था। 1981 में इसके गॉन क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार काम्पलेक्स बनाने की घोषणा की गयी। 1988 में यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा बनाया गया। पर्यटन यहां आय का प्रमुख स्रोत बनता जा रहा है। कुल राष्ट्रीय आय का 18 प्रतिशत पर्यटन से ही प्राप्त होता है। विश्व बैंक द्वारा मालद्वीव को निम्न आय अर्थव्यवस्था वाले देश की श्रेणी में रखा गया है।

यहाँ के उद्योग में मत्स्य उद्योग का, कृषि फसलों में नारियल का प्रमुख योगदान है। मालद्वीव मुख्यत: चावल गेहूँ और चीनी का आयात करता है, जबकि यह समुद्री सामानों का निर्यात करता है। मालदीव कभी भी पश्चिमी देशों की प्रत्यक्ष अधीनता में नही रहा। पुर्तगालियों ने इस पर बहुत थोड़े समय के लिए शासन किया। दूसरी शक्तियाँ मालद्वीव पर आधिपत्य न जमा ले, इस भय से इसने 1987 में ब्रिटेन के साथ एक समझौता किया था जिसके तहत ब्रिटेन ने इस द्वीप को संरक्षण प्रदान किया। ब्रिटेन का यह संरक्षण एक विशेष प्रकार का संरक्षण कहा जा सकता है।[1]

---

1. फडनीस, उर्मिला, "मालदीव्स वाइन्ड्स ऑफ चेन्ज इन ऐन एटाल स्टेट" साउथ एशियन पब्लिशर नई दिल्ली, 1985, पेज 73।

यहाँ अध्यक्षीय शासन प्रणाली है। राष्ट्रपति राज्य और शासन, दोनों का प्रधान है। राष्ट्रपति की अपनी एक मन्त्रिपरिषद है जो उसे केवल प्रशासनिक कार्यों में ही सहायता नहीं देती है बल्कि नीति निर्माण तथा योजनाएं बनाने में सहायता देती है। मालद्वीव में दलविहीन शासन प्रणाली को अपनाया गया है। 1965 में मालद्वीव संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना और 1978 में गुट निरपेक्ष देशों में शामिल हुआ। 1978 में ही इसे राष्ट्रमण्डल की सदस्यता विशेष रूप से दी गई। इसके अलावा भी व अन्य कई अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का सदस्य है और इसने लगभग 60 देशों के साथ कूटनीति सम्बन्ध कायम किए हैं।

दक्षिण एशियाई देशों के ऐतिहासिक, भू-राजनीतिक और आर्थिक विशेषताओं के इस सामान्य सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि इन सभी देशों का एक औपनिवेशिक इतिहास रहा है और ये सभी देश अपने राष्ट्र पुर्निर्माण कार्य में निरन्तर संलग्न है। यद्यपि इन देशों के समक्ष समस्याएं एक समान नहीं है बल्कि भिन्न-भिन्न है। फिर कुछ समस्याएं उनमें समान रूप से व्याप्त है—अविकसित आर्थिक ढांचा, पिछड़ी शिक्षा, जनसंख्या वृद्धि आदि। राजनीतिक दृष्टि से भी इनमें विभिन्नताएं है। इस प्रकार दक्षिण एशिया के सभी देश आर्थिक एवं राजनीतिक कुंठा के शिकार है; परन्तु विश्व में जो क्षेत्रीय सहयोग का वातावरण बना हुआ है यदि दक्षिण एशिया के देशां में भी क्षेत्रीय सहयोग की भावना जागृत हो सके तो संभवत: इन्हें एक बहुत बड़ी सफलता मिलेगी। इस क्षेत्र के देशों के पास विपुल प्राकृतिक स्रोत है। इस क्षेत्र के लोगों और सरकार का उद्देश्य आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता और विविध प्रकार के उद्योग और तकनीकि का विकास है। इसी के चलते, भारत और पाकिस्तान विकाशशील देशों में अग्रणी कहे जा सकते है अन्य दूसरे इस क्षेत्र के देश भी गम्भीर आर्थिक तथा राजनीतिक बाधाओं के बावजूद इन क्षेत्रों में अग्रसर है।

अध्याय—2

भारत का अन्य दक्षिण एशियाई देशों के साथ पारस्परिक संबंध एवं महाशक्तियाँ

भारत को यदि दक्षिण में प्रधान शक्ति माने तो इसमें कोई अतिश्रयोक्ति नहीं होगी। 200 वर्षों की औपनिवेशिक दांसता का जामां उतारने के बाद जो भारत दृष्टिगत हुआ उससे कौन परिचित नहीं है। ब्रिटिशों ने न केवल भारत को दो भागों में विभाजित किया बल्कि आर्थिक रूप से बिल्कुल असहाय कर दिया था। एक तरफ स्वतन्त्रता की अपार खुशी और दूसरी तरफ देश को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाना इन दोनों ही बातों में समन्वय स्थापित करना भारत के लिए अत्यन्त कठिन कार्य था लेकिन भारत द्वारा एशिया क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना इसकी विदेश नीति का एक विशेष केन्द्र बिन्दु रहा है इसलिए स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान भी भारत ने अपनी लड़ाई के साथ एशिया के अन्य राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का भी समर्थन किया। भारत द्वारा एशिया में महत्वपूर्ण भूमिका के अतिरिक्त इस क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने का प्रयास भी महत्वपूर्ण रहा है। शीतयुद्धोत्तर युग में इस सहयोग का स्वरूप राजनैतिक से आर्थिक हो गया। दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संघ इसी का एक प्रयास है। वर्तमान परिस्थितियों में विकसित और विकाशील देशों में किसी भी देश का तटस्थ रहकर अपने सीमित साधनों के द्वारा अपना सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास करना एक स्वप्न जैसी बात होगी। भारत को ही क्ले तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक सहयोग प्राप्त करने की लिप्सा या दूसरे शब्दों में कहे तो चतुराई से यह गुट निरपेक्ष जैसे आन्दोलन की नींव डालने में सहभागी बना। किसी भी सहयोग की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिस उद्देश्य से यह सहयोग स्थापित किया जा रहा है अथवा किसके-किसके मध्य हो रहा है उनके पारस्परिक सम्बन्ध मधुर और आपसी समझ पर आधारित हो जिससे एक दूसरे की समस्याओं को सुलझाने में और विकास को तीव्रता प्रदान करने में मदद लि सके।

भौगोलिक और आर्थिक दृष्टि से समन्वयकारी तत्व विद्यमान होने के बावजूद दक्षिण एशिया के क्षेत्र के देशों में सहयोग की इच्छा की अपेक्षा पारस्परिक अविश्वास की भावना ज्यादा प्रबल हैं। इस क्षेत्र के देशों के पारस्परिक सम्बन्ध अधिकांशत: द्विपक्षीय आधार पर संगठित हुए है बहुपक्षीय

आधार पर नहीं शायद यही वजह है कि इस क्षेत्र में क्षेत्रीय सहयोग का आर्थिक विकास गतिहीन रहा है। दक्षिण एशियाई देशों के आपसी सम्बन्ध कभी मधुर भी हुए है तो प्राय: विवादों से ग्रस्त रहे है।

भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध

दक्षिण एशियाई क्षेत्र का नेतृत्व करने वाले देशों में भारत और पाकिस्तान प्रमुख देश है। भारत और पाकिस्तान पड़ोसी देश भी है। दोनों के मध्य ऐतिहासिक समानता, सांस्कृतिक एकरूपता, भौगोलिक सामीप्य, आर्थिक अन्त: निर्भरता के बावजूद मित्रता के बजाय दूर पड़ोसियों वाले सम्बन्ध बने रहे है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से आजतक इनके सम्बन्ध स्पर्धा, संघर्ष एवं युद्ध के दायरे से बाहर नहीं निकले है। इनके सम्बन्ध संघर्ष से शान्ति, फिर संघर्ष, फिर शान्ति की ओर अग्रसर हुए है परन्तु मित्रता व सहयोग से परे रहे है। भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों की यदि समीक्षा करे तो ज्ञात होगा कि इनके मध्य लगातर शीतयुद्ध व चार बार वास्तविक युद्ध हो चुका है। दोनों के मध्य काफी अल्प समायान्तराल तक तनाव शैथिल्य या मधुर सम्बन्धों का काल रहा है।

1947 में ब्रिटिश शासन से स्वतन्त्रता प्राप्त होने के समान अवसर के कारण भारत एवं पाकिस्तान को सामान्य रूप से मित्र होना चाहिए था लेकिन ऐसा नहीं हुआ। संभवत: विभाजन के समय भारत से मुस्लिमों का पाकिस्तान में पलायन तथा हिन्दू एवं सिखों का पाकिस्तान से भारत आना तथा इस प्रक्रिया में होने वाला नरसंहार ही वह कारण है जिसने इस दोनों देशों के मध्य वैमनस्य के बीज पैदा कर दिये थे। विभाजन से जुड़े कई अन्य विषय और थे जिनका समाधान करना अभी शेष था। उनके समाधान को लेकर अपनाये गये रूख की वजह से आरम्भिक वर्षो में दोनों के बीच मित्रता विकसित होने के जगह पर संघर्ष का उदय हुआ। इस प्रकार के सम्बन्धों के विकास लिए निम्नांकित कारण उत्तरदायी थे।[1]

1. विभाजन से उदित तत्कालीन समस्याएं— भारत और पाकिस्तान के विभाजन के बाद मुख्य रूप से चार समस्याएं सामने आई जिनके कारण आरम्भिक वर्षों में दोनों के सम्बन्धों में तनाव

---

1. सुरेन्द्र चोपड़ा, ''पाकिस्तान : कॉनफलिक्ट एण्ड कॉपरेशन,'' सतीश कुमार, सपादक, ईयरबुक ऑन इण्डियाज फॉरेन पालिसी, 1983-84 नई दिल्ली, 1986, पृष्ठ 61।

की स्थिति बनी रही। ये विदादास्पद मुद्दे इस प्रकार थे—पंजाब व बंगाल की सीमाओं का सेनाओं का बंटवारा, असैनिक सेवाओं का विभाजन तथा सरकारी सम्पदा एवं देनदारी की समस्या।[1] यद्यपि उक्त समस्याओं में से काफी का समाधान आरम्भिक कुछ वर्षो में हो गया था परन्तु इस दौरान उदित पारस्परिक कटुता का प्रभाव इनके सम्बन्धों पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुआ। एक दूसरे पर सन्देहास्पद दृष्टि रखते हुए ये दोनों देश सहयोग की जगह अलगाव के मार्ग पर चले।

2. अल्पसंख्यको की समस्या— भारत और पाकिस्तान के विभाजन के बाद बड़ी संख्या में लोग सीमा पार करके पाकिस्तान से भारत आए और भारत से पाकिस्तान गए। इन विस्थापितों या शरणार्थियों की समस्या का सीधा सम्बन्ध दोनों देशों में अल्पसंख्यकों के प्रश्न से था। इस तरह विशाल संख्या में शरणार्थियों के आवागमन के पीछे संभवत: दो कारण थे। पहला, भारतीय राज्य का विभाजन धर्म के आधार पर होने से शायद हिन्दू जाति को भारत तथा मुस्लिमों द्वारा पाकिस्तान को अपना शुभचिन्तक राज्य मानने का भ्रम हुआ। दूसरा कारण आर्थिक था विशेषरूप से पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या में ज्यादा पाया गया। वजह वहाँ से होने वाले बड़ी संख्या में जूट के व्यापार का शेष होना था। विभाजन होने से पहले पूर्वी पाकिस्तान का अधिकांश जूट वर्तमान भारतीय क्षेत्रों को भेजा जाता था परन्तु विभाजन होने के बाद रुपये के अवमूल्यन की समस्या से यह व्यापार सामान्यतया बन्द हो गया क्योंकि भारत में इस अवमूल्यन की समस्या से जूट का मूल्य बढ़ गया और तब यह निर्यात नहीं हो सकता था। वजह चाहे कोई भी हो, 1947 के विभाजन के बाद 14.5 मिलियन हिन्दू पाकिस्तान में तथा 40 मिलियनमुस्लिम भारत में अल्पसंख्यक हो गए। 1951 की जनगणना के अनुसार भारत में इन विस्थापितों की संख्या 74. 8 लाख थी। इसमें से लगभग 49.09 लाख लोग पश्चिमी पाकिस्तान से भारत आए। 25.75 लाख लेग पूर्वी पाकिस्तान से आए जिनकी संख्या कालान्तर में (1957) बढ़कर लगभग 41.16 लाख तक पहुँच गयी थी।[2]

---

1. ए० ग्यावन एवं ए० अप्पादोराय, स्पीचीज एण्ड डाक्यूमैंट्स ऑन दॉ इंडियन कान्सटीट्यूशन, लंदन, 1957।
2. भारत सरकार, पुनर्वास मन्त्रालय, रिपोर्ट, 1951-52, नई दिल्ली, पृष्ठ 1. इसके अतिरिक्त रिपोर्ट, 1957-58, नई दिल्ली, 1958 पृष्ठ 1.

इस समस्या के समाधन के लिए जवाहर लाल नेहरू और लियाकत अली के मध्य 8 अप्रैल 1950 को एक समझौता हुआ, जिसके अन्तर्गत यह तय किया गया कि—अल्पसंख्यों को इन देशों में पूर्ण स्वतन्त्रता होगी चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले हो, इन अल्पसंख्यकों की प्रतिबद्धता उन देशों के ही साथ होगी जिसके नागरिक अब वो है। दोनों देशों द्वारा इस समझौते का पालन उचित रूप में करने का प्रयास किया गया परन्तु कालान्तर में जब-जब साम्प्रदायिक दंगे हुए यह समस्या पुनः उभरी, हांलाकि उसकी तीव्रता पूर्व की भांति नहीं थी।

3. सिन्धु नदी के पानी का प्रश्न—सिन्धु और उसकी सहायक नदियों के पानी के बंटवारें को लेकर विभाजन से जुड़ी यह एक प्रमुख मसस्या थी। सिन्धु नदियों की व्यवस्था राजनैतिक विभाजन को दृष्टि में रखकर नहीं बनाई गई थी इसलिए भौगोलिक दृष्टि से विभाजनोपरान्त पाकिस्तान को सिंचाई योग्य 18 मिलियन एकड़ भूमि प्राप्त हुई थी और भारत को मात्र 5 मिलियन एकड़ सिंचाई योग्य भूमि मिली थी। इसके अलावा, इस सिन्धु नदी क्षेत्र में भारत की लगभग 20 मिलियन जनसंख्या निवास करती थी जबकि पाकिस्तान की इस प्रकार की जनसंख्या 22 मिलियन थी।[1] इस सिन्धु नदी क्षेत्र में कुल सात नदियां थी जिनमें से सिन्धु स्वयं पश्चिम में थी तथा शेष अन्य पांच सहायक नदियां (जेहलम, चिनाव, रावी, सतलज व व्यास) पूर्व में शोभित थी। काबुल को छोड़कर सिन्धु, झेलम चिनाब मुख्यतः पाकिस्तान से प्रवाहित होती है तथा ये सिन्धु क्षेत्र के करीब 80 प्रतिशत पानी को बहा ले जाती है, और भारत में पूर्णतः रावी व सतलज बहती है।[2]

इस सम्बन्ध में प्रथम विवाद अप्रैल 1948 को उठा जब भारतीय पंजाब प्रान्त की सरकार ने पानी की रकम अदायगी न करने से पाकिस्तान को जाने वाले पानी को रोक दिया था। इस विवाद को द्विपक्षीय स्तर पर सुलझाने के लिए 4 मई 1948 को दोनों देशों में समझौता भी हुआ परन्तु वह सफल सिद्ध नहीं हो पाया। फिर इसी समस्या के सन्दर्भ में अमेरिकी विशेषज्ञ डेविड लिलिथेन्थल ने 1951 में भारत का दौरा कर यह सुझाव दिया कि इस समस्या को राजनैतिक स्तर के स्थान पर तकनीकि एवं व्यापारिक स्तर पर सुलझाया जाय और इसके लिए विश्व बैंक की मध्यस्था की

1. अप्पादोराय व राजन, पाद टिप्पणी संख्या 2, पृष्ठ 65
2. अप्पादोराय व राजन, पाद टिप्पणी संख्या 2, पृष्ठ' 65

सिफारिश की। 5 फरवरी 1954 को विश्व बैंक ने मध्यस्थता करना स्वीकार कर अपनी योजना प्रस्तुत की।

विश्व बैंक की योजना को भारत द्वारा स्वीकृति दे दी गई लेकिन पाकिस्तान ने इस योजना के प्रति कुछ आपत्तियां जताई। यद्यपि इस योजना के अन्तर्गत भारत को इस क्षेत्र से बहने वाले पानी का कुल 20 प्रतिशत ही मिलना था जो उसकी सिंचाई योग्य 26 मिलियन एकड़ भूमि के लिए अपर्याप्त था। परन्तु दूसरी तरफ पाकिस्तान को 80 प्रतिशत पानी मिलना था जो 39 मिलियन एकड़ भूमि की सिंचाई के लिए पर्याप्त था।[1] पाकिस्तान की आपत्तियों को देखते हुए योजना का संशोधित रूप प्रस्तुत किया गया, जिस पर जवाहर लाल नेहरू और अयूब खां ने 19 सितम्बर, 1960 को हस्ताक्षर करना स्वीकार कर लिया।

4. सीमा सम्बन्धित विवाद—पश्चिम में (कश्मीर सीमा को छोड़कर) भारत और पाकिस्तान की सीमाएँ 1503 मील थी तथा पूर्वी क्षेत्र में यह सीमा 2481 थी। अत: समय-समय पर असली सीमा रेखा को लेकर छुटपुट विवाद होना सामान्य सी बात थी। पंजाब से जुड़ी सीमा के इन विवादों का निपटारा कई द्विपक्षीय सम्मेलनों एवं समझौते के द्वारा हुआ।

सीमाओं से ही सम्बन्धित दूसरी समस्या कच्छ क्षेत्र का सीमांकन करने की थी। पाकिस्तान ने इस क्षेत्र से 3,500 वर्गमील का क्षेत्र अपने अधिकार में करने की मांग की। अन्तत: दो दशकों के बाद संयुक्त राष्ट्र प्राधिकरण के माध्यम से 19 फरवरी 1968 में यह विवाद हल हो सका। जिसके तहत पाकिस्तान को 350 वर्ग मील का क्षेत्र प्राप्त हुआ।[2]

5 कश्मीर विवाद— कश्मीर भारत और पाकिस्तान के बीच सर्वाधिक महत्वपूर्ण विवादित विषय है। जो आज तक दोनों देशों के मध्य वैमनस्य का कारण बना हुआ है।[3] 1947, के भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम के अनुसार स्थानीय राजाओं के राज्यों को ब्रिटिश अधीनता से स्वतन्त्र करते

---

1 एम० एस० राजन, इंडिया इन वर्ल्ड अफेयर्स, 1954-56, बम्बई 1964, पृ० 462.

2. ए० अप्पादोराय एवं एम० एस० राजन, इंडियन फॉरेन पॉलिसी एण्ड रिलेशंस, नई दिल्ली, 1985 पृष्ठ 70-71

3. सिसिर गुप्ता, कश्मीर : ए स्टडी इन इंडियाज-पाकिस्तान रिलेशंस बम्बई, 1966.

हुए भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित होने की छूट मिली थी। कश्मीर के शासक हरिसिंह द्वारा लम्बे समय तक कोई निर्णय न लेने की वजह से कश्मीर विवादित विषय बन गया। अक्टूबर 1947 में पाकिस्तान की शय पर कुछ कबायलियों ने कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए श्रीनगर की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया था और जब ये कबायली श्रीनगर से मात्र 35 मील की दूरी के फांसले पर थे तब राजा ने भारत से त्वरित सैनिक सहयोग की मांग की। यही नहीं इसके अलावा उन्होंने 26 अक्टूबर, 1947 को कश्मीर राज्य के विलय पत्र पर हस्ताक्षर भी कर दिया। राज्य के विलय की प्रार्थना स्वीकारतें हुए भारत ने यह कहा कि आक्रमणकारियों को खदेड़ने के बाद विलय के प्रश्न पर राज्य की जनता की इच्छा पूछी जायेगी अर्थात् जनता द्वारा पुष्टि की जायेगी। इस विलय केबाद भारतीय सेनाओं ने कश्मीर में कबालियों के आक्रमण को रोकने का भरपूर प्रयास किया, परन्तु आक्रमणकारियों द्वारा कश्मीर का कुछ भाग अधिकृत कर लेने से तथा नेहरू द्वारा पाकिस्तान से की जाने वाली संधि का कोई भी प्रभाव न पड़ता देख भारत ने 1 जनवरी 1948 को यह विवाद संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में उठाया और उससे इस विवाद को सुलझाने की पेशकश की।[1]

1949 से लेकर 1953 तक संयुक्त राष्ट्र में इस समस्या पर हुए वाद-विवाद के बाद 'संयुक्त राष्ट्र के भारत पाक आयोग' ने अगस्त 1948 तथा जनवरी 1949 को हुए समझौते के आधार पर तीन महत्वपूर्ण चरणों में फैसला किया—युद्ध विराम, अल्प कालीन संधि तथा जनमत संग्रह। इसका प्रथम चरण अर्थात् युद्ध विराम जनवरी 1949 से प्राभावी हो गया परन्तु शेष दो चरण उनकी व्याख्या के कारण दोनों देशों में हुए गतिरोधों के बीच लागू नहीं हुए। दिसम्बर, 1949 को इस आयोग ने यह तर्क दिया कि राज्य की स्थिति अब परिवर्तित हो गई है परन्तु पारित ज्ञापन अपरिवर्तित है। यही वर्तमान में विवाद का मुख्य कारण है।[2]

1953 से लेकर 1956 तक इस विवाद को सीधे बातचीत द्वारा हल करने के प्रयास किए गये। दोनों देशो के प्रधानमंत्रियों ने जनमत संग्रह के लिए अपनी-अपनी सहमति भी दे दी। इसके आलावा नेहरू ने दोनों देशों के बीच वास्तविक नियंत्रण रेखा को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा स्थापित करने का विचार

---

1. सुरेन्द्र चोपड़ा, यू० एन० मिडीयेशन इन कश्मीर : ए स्टडी इन पॉवर पॉलिटिक्स
2. ए० अप्पादोराय एवं एम० एस० राजन, इंडियाज फॉरेन पालिसी एण्ड रिलेशंस, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ 80.

सम्बन्ध सुधारने का नाटक भी किया।[1] 1963 के एक समझौते के तरह पाक अधिकृत कश्मीर से 5180 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्रफल चीन को सौंप दिया गया। इस तरह भारत-पाक दूरियां और अधिक विस्तृत हो गई।

सितम्बर, 1965 को पाकिस्तानी सेना ने अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का उल्लंघन करके छम्ब जूरिया क्षेत्र में आक्रमण कर दिया और भारत पाकिस्तान का युद्ध आरम्भ हो गया। इसके अलावा कश्मीर में 'ऑपरेशन जिब्राल्टर' नामक एक गुप्त कार्यवाही द्वारा पाकिस्तान ने मुस्लिम आबादी को भारत के विरुद्ध विद्रोह के लिए भड़काया। पाकिस्तान को यह भ्रम था कि कश्मीर की अधिकांश संख्या में मुस्लिम जनता भारतीय प्रशासन का विरोध करेगी लेकिन उसका यह भ्रम निराधार साबित हुआ। भारत ने पाकिस्तान के आकलन को विफल कर दिया।

22 दिनों तक चले भारत-पाक युद्ध का अन्त संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप से हुआ। भारत ने इस युद्ध में पाक अधिकृत कश्मीर सहित 740 वर्ग मील का पाकिस्तानी क्षेत्र अपने कब्जे में ले लिया लगभग 210 वर्ग मील का भारतीय क्षेत्र पाकिस्तान के कब्जे में चला गया था।[2] इस स्थिति के समाधान के लिए अन्ततः सोवियत संघ की मध्यस्थता से दोनों देशों के मध्य 10 जनवरी, 1966 को "ताशकन्द समझौता" सम्पन्न हुआ जिसकी मुख्यतः निम्न धाराए थी।[3]

(क) दोनों एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगें।

(ख) दोनों द्विपक्षीय संबंधबनाने पर जोर देगें तथा उनमें सुधारों की सूचना से एक दूसरे को अवगत करेंगे।

(ग) दोनों आपस के आर्थिक, व्यापारिक व सांस्कृतिक सम्बन्धों को पुनः स्थापित करेंगे।

(घ) संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में विश्वास करते हुए दोनों ही देश आपसी विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास करेंगे।

---

1. मोहम्मद तारिक खान, 'यू० एस० पाकिस्तान रिलेशंस : ए ब्रीफ हिस्ट्री'' इन्टरनेशनल ऐसेंज-II , वाशिंगटन, डी० सी०, 1987, पृष्ठ 211.

2. ए० अप्पादोराय एवं एम० एस० राजन, इंडियाज फॉरेन पालिसी एण्ड रिलेशंस, नई दिल्ली 1985, पृ० 97.

3. एशियन रिकार्डर, 29 जनवरी, 4 फरवरी, 1966, पृ० 6896-98.

(ङ) दोनों देशों की सेनाएं 5 फरवरी 1966 तक अपनी 5 अगस्त 1966 वाली स्थिति में लौंट जायेगी।

(च) दोनों देशों के मध्य राजनयिक संबंध पुन: स्थापित होंगे।

(छ) दोनों देश एक दूसरे के विरुद्ध दुष्प्रचार नहीं करेगें।

(ज) दोनों ही देश शरणार्थियों की समस्या तथा गैरकानूनी रूप से निकाले गये नागरिकों के विषय को सुलझाने का प्रयत्न करेंगे।

ताशकन्द भावना से दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों में एक नये अध्याय की शुरूआत होगी, यहअनुमान पूरा नहीं हुआ। सीमा पर छिटपुट घटनाएं लगातार होती रही तथा इसी दौरान सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना भारतीय एयरलांइस के विमान अपहरण (जनवरी, 1971) की थी। अपहरणकर्ताओं ने भारतीय विमान को पाकिस्तानी हवाई अड्डे पर आग लगा दी वहां के अधिकारियों ने इसके लिए कोई कार्यवाही नहीं की बल्कि उन अपहरणकर्ताओं को राजनैतिक शरण भी दिया।

इन सबसे पूर्व पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान में सत्ता के हस्तांतरण को लेकर पाकिस्तान में गृह युद्ध जैसी स्थिति बन गई। 12 अप्रैल 1971 को पूर्वी पाकिस्तान ने अपने को स्वाधीन घोषित कर दिया। विशाल संख्या में शरणार्थी सीमा पर से भारत आने लगे। इस पूर्वी पाकिस्तान ने बांग्लादेश के नाम से विश्व मानचित्र पर अपनी जगह बना ली। 17 अप्रैल, 1971 को बांग्लादेश में विधिवत गणराज्य की घोषणा कर दी गयी। विभिन्न दबावों के बावजूद भारत ने बांग्लादेश के मान्यता के प्रश्न पर संयम का परिचय दिया। पाकिस्तान ने (पश्चिमी पाकिस्तान) इन सभी घटनाओं का दोषी भारत को ठहराया। बांग्लादेश में हो रहे नरसंहार, शरणार्थियों की बाढ़, बांग्लादेश की मान्यता सम्बन्धी प्रश्न, पाकिस्तान द्वारा दी जा रही धमकियां, पाश्चात्य देशों एवं चीन का भारत विरोधी दृष्टिकोण के मद्देनजर, 9 अगस्त 1971 को भारत ने ''भारत-सोवियत मैत्री एवं सहयोग'' सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये ताकि आकस्मिक युद्ध की आंशका से निपटा जा सके।

परन्तु स्थितियां प्रतिदिन विस्फोटक होती जा रही थी। पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पर निरन्तर छोटी-मोटी घटनाएं घटित हो रही थी। अंतत: पाकिस्तान ने 3 दिसम्बर 1971 को पश्चिमी भारत पर आक्रमण कर दिया। भारत ने जवाब में 4 दिसम्बर को युद्ध किया और 6 दिसम्बर को बांग्लादेश को

पृथक व स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता भी दे दी। पूर्वी सीमा पर युद्ध में पाकिस्तान परास्त हुआ तथा उनके युद्ध प्रमुख जनरल ने आत्मसमर्पण कर दिया। आत्मसमर्पण के साथ ही भारत ने पश्चिमी क्षेत्र में एक तरफा स्वैच्छिक युद्ध विराम की घोषणा कर दी।

इस युद्ध के बाद पाकिस्तान और भारत की विदेशनीति में मूलभूत परिवर्तन हुए। भारतीय विदेशनीति सोवियत संघ के निकट होती गई और अमेरिका के साथ सम्बन्धों में दूरिया बढ़ती गयी। पाकिस्तान भी अमेरिका के सहयोग के आश्वासनों की अपेक्षा से बाहर आ चुका था। इनके अनुरूप भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। युद्धोपरान्त दोनों देशों ने वास्तविक धरातल पर आकर सम्बन्धों को सुधारने का प्रयत्न किया इसलिए कई विशेषज्ञों ने 1972-1979 के वर्षों को भारत-पाक तनाव शैथिल्य की संज्ञा दी। इस बदलाव का कारण भारत व पाकिस्तान की परिवर्तित परिस्थितियाँ थी।[1]

भारत के सन्दर्भ में यह परिवर्तन दक्षिण एशिया में उभरी हुई उसकी मजबूत स्थिति थी इसके अतिरिक्त भारत की अन्तर्राष्ट्रीय साख एवं सामारिक क्षमता की मान्यता में भी वृद्धि थी। इधर पाकिस्तान सैनिक शासन को समाप्त करके लोकतान्त्रिक मूल्यों की ओर अग्रसर हुआ तथा आर्थिक विकास हेतु महत्वपूर्ण साहिसिक कदम उठाये। अनन्त: युद्ध से जुड़े मुद्दों, विशेषकर 93 हजार युद्धबन्दियों की रिहाई, का दबाव उन्हें अपनी विदेशी सम्बन्धों का मूल्यांकन करने हेतु बाध्य करने लगा। परिवर्तित परिस्थिति एवं उपर्युक्त समस्याओं को देखते हुए पाकिस्तान के प्रधानमंत्री भुट्टो ने भारत के साथ बात करने की पहल की। दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों (भुट्टो व श्रीमती इन्दिरा गांधी) का प्रयास "शिमला समझौता" (3 जुलाई, 1972) के रूप में सामने आया। इस समझौते की कुछ मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित थी।—

(क) दोनों देशों ने एक दूसरे को क्षेत्रीय अखण्डता एवं राजनैतिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध धमकी न देने या शस्त्रों का प्रयोग न करने का वचन दिया।

---

1. मोहम्मद अयूब, "इण्डिया एण्ड पाकिस्तान : प्रोस्पेक्टस फॉर देतान्त," के० पी० मिश्र सम्पादक, फॉरेन पालिसी ऑफ इण्डिया : ए बुक ऑफ रिडिंगज, नई दिल्ली, 1977 पृ० 213-230.

(ख) दोनों देश आपसी मतभेदों को शान्तिपूर्ण द्विपक्षीय वार्ता के द्वारा हल करेंगे।

(ग) दोनों देश आपसी द्विपक्षीय सम्बन्धों की वृद्धि के लिए (i) डाक-तार, वायु, समुद्री तथा स्थल सम्बन्ध बनायेगे। (ii) नागरिकों को यात्रा सुविधा देगें। (iii) आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध बनायेगें तथा (iv) वैज्ञानिक एवं आर्थिक अदला-बदली का विकास करेंगे।

(घ) दोनों देश अपनी-अपनी सेनाओं को 30 दिन के अन्दर अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक वापस कर लेगें। यहाँ सीमा से तात्पर्य 17 दिसम्बर 1971 को युद्ध विराम की नियन्त्रण रेखा माना गया है।[1]

शिमला समझौते के बाद भी युद्धबन्दियों की रहाई का मामला तय नहीं हो पाया, क्योंकि भारत इसे बांग्लादेश की सहमति से ही हल करना चाहता था।[2] बांग्लादेश नरसंहार करने वाले सैनिक अधिकारियों के विरुद्ध मुकदमा चलाना चाहता था परन्तु पाकिस्तान इसे मानवीय विवाद मानकर द्विपक्षीय स्तर पर हल करना चाहता था।

पाकिस्तान और बांग्लादेश के सम्बन्धों की शुरूआत फरवरी, 1974 को पाकिस्तान द्वारा बांग्लादेश को मान्यता देने के बाद हुई। अप्रैल1974 को भारत, पाकिस्तान व बांग्लादेश के मध्य सम्पन्न एक समझौते के तहत युद्धबन्दियों की वापसी पर सहमति भी हो गई।

1974 व 1975 के मध्य भारत और पाकिस्तान के मध्य कुछ व्यापारिक समझौते भी हुए लेकिन 18 मई, 1974 को भारत द्वारा पोखरन में शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए किये गये परमाणु परीक्षण से दोनों देशों के मध्य तनाव की स्थिति पुन: उत्पन्न हो गई।[3] तनाव के बावजूद दोनों देशों ने सहयोग बढ़ाने की दृष्टि से कई व्यापारिक एवं गैर व्यापारिक समझौते किए। 1997 में दोनों देशों में सत्ता परिवर्तन हुआ लेकिन सम्बन्धों में सुधार जारी रहा।[4]

---

1. एशियन रिकार्डर, 15-21 जुलाई, 1972 पृ० 10874-78
2. सुरेन्द्र चोपड़ा, ''इण्डो पाक रिलेशंस : ए स्टडी ऑफ न्यू चैलेजिंग एण्ड अपोरचूनिटज,'' स्वयं संपादक, स्टीडीज इन इंडियांज फॉरैन पालिसी, अमृतसर, 1980, पृ० 483-88.
3. वही पृष्ठ 488-494.
4. कलीम बहादुर, ''इंडिया एण्ड पाकिस्तान,'' इन्टरनेशनल स्टडीज, वाल्यूम 17 अंक 3-4 जुलाई-दिसम्बर 1978, पृ० 517-27.

1979 में एक तरफ सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान में हस्तक्षेप से नवशीत युद्ध का आरम्भ हुआ दूसरी तरफ दक्षिण एशिया के राज्यों (भारत-पाकिस्तान) के मध्य सम्बन्धों में भी नए समीकरण उत्पन्न होने लगे इसके पीछे कारण यह हो सकता था कि 1971 के युद्ध के बाद पाकिस्तान में सैनिक शासक जिया-उल-हक ने प्रशासन पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली थी और उस समय भारत विभिन्न अलगाववादी आन्दोलनों की चपेट में रहने के साथ-साथ क्षेत्रीय स्तर पर अपने निकटवर्ती पड़ोसियों बंग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका के संग कुछ विवादों में उलझा हुआ था। अन्ततः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान में हस्तक्षेप तथा वियतनाम द्वारा कम्बोडिया में हस्तक्षेप का भारत व पाकिस्तान के सम्बन्धों पर विपरीत प्रभाव पड़ा।[1] इस घटनाक्रम से महाशक्तियों के संघर्ष में पाकिस्तान का महत्व बढ़ गया था तथा उसे 'सीमा रेखा' वाला राज्य घोषित कर दिया गया था। परिणामस्वरूप उसे पाश्चात्य पश्चिम एशिया तथा मुस्लिम देशों से आर्थिक, सैनिक और राजनयिक सहायता भी प्राप्त हुई। और इधर भारत को सोवियत संघ, अफगानिस्तान एवं वियतनाम के साथ अपने मित्रवत सम्बन्धों के बारे में स्पष्टीकरण देने पड़े। भारत और पाकिस्तान के मध्य सम्बन्ध तनावपूर्ण हो जाने के पीछे इस दौरान कुछ अन्य कारण सिद्ध हुए। भारत द्वारा सोवियत संघ का अफगानिस्तान में हस्तक्षेप का खुला समर्थन पाकिस्तान को अमेरिका के नजदीक ले गया। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को भारी मात्रा में सैनिक सहायता देने तथा पाक द्वारा चीन से हथियारों की प्राप्ति से पाकिस्तान की सैन्य क्षमता बढ़ गई। इसके उत्तर में भारत ने भी सोवियत संघ से 1980-81 में हथियारों का सौदा किया। इस प्रकार दोनों देशों द्वारा काफी मात्रा में हथियारों की प्राप्ति से सम्बन्धों में और गिरावट आई।[2]

1980-1988 के भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों में कई उतार-चढ़ाव देखने को मिले। भारत और पाकिस्तान द्वारा परमाणु क्षमता प्राप्त करना भी इस दशक में दोनों के गैरमित्रतापूर्ण सम्बन्धों का परिचायक रहा है। भारत द्वारा 1974 में शान्तिपूर्ण उद्देश्यों हेतु परमाणु क्षमता हासिल करने के बाद

---

1. रमेश ठाकुर, ''दॉ पालिटिक्स एण्ड इकोनोमिक्स ऑफ इंडियाज फॉरेन पालिसी, दिल्ली, 1999'', पृ. 40।

2. सुरेन्द्र चोपड़ा, 'इन्डो-पाक रिलेशन्स : ए स्टडी ऑफ न्यू चैलेजिंग एण्ड अपोरचृनिटीज'' स्वयं संपादक, स्टडीज इन इंडियाज फॉरेन पालिसी अम=तसर, 1980 पृ. 65।

पाकिस्तान ने भी 1984 में 'यूरेनियम संवर्द्धन' तथा 1987 में परमाणु बम की क्षमता प्राप्त कर ली।[1] परमाणु क्षमता से जुड़ा एक अन्य मुद्दा दोनों देशों द्वारा प्रक्षेपास्त्रों की प्राप्ति करना रहा है। भारत ने 1983 में अपने एकीकृत प्रक्षेपास्त्र विकास, कार्यक्रम के तहत स्वदेशी प्रक्षेपास्त्र विकसित कर लिए, जैसे 'त्रिशूल,' अग्नि, 'आकाश', 'नाग, 'पृथ्वी' आदि। विरोध में पाकिस्तान ने भी चीन, अमेरिका एवं सऊदी अरब के सहयोग पर आधारित प्रक्षेपास्त्र क्षमता में वृद्धि करना प्रारम्भ किया। इस प्रक्रिया के दौरान दोनों देशों के एक दूसरे पर विश्वास की भावना कतई नहीं रह गयी तथा सम्बन्धों में और दूरियों ने घर किया।[2] सियाचिन ग्लेसियर भी दोनों देशों के मध्य तनाव का एक अन्य मुद्दा रहा है जिस पर 1984 में पाकिस्तान द्वारा कब्जा करने की कार्रवाई से दोनों देश आमने-सामने भी आ चुके है उसके बाद दोनों देशों द्वारा आपसी बातचीत द्वारा इस मुद्दें को सुलझाने की सहमति के बावजूद भी कोई समाधान नहीं निकल पाया है। आपसी बातचीत के द्वारा जो समाधान निकले वो निम्नांकित है—

1. दोनों देशों ने (6 अप्रैल, 1991) को आपस में किए जाने वाले सैनिक अभ्यासों की पूर्व सूचना, एक दूसरे को देने की सहमति दी।
2. दोनों देश, अपने-अपने देशों के सैन्य कार्रवाई करने वाले डायरेक्टर जनरल के वीच सीधी बातचीत करने पर सहमत हो गये जिससे गलत अनुमानों पर आधारित तनाव को खत्म किया जा सके।
3. 31 अक्टूबर 1991 को युद्ध में रासायनिक शस्त्रों के प्रयोग के निषेध पर भी दोनों देशों ने अपनी सहमति दी।[3]

परमाणु अप्रसार के विषय में भी पाकिस्तान ने जून, 1991 के प्रस्ताव में दक्षिण एशिया में इस समस्या को बहुपक्षीय सम्मेलन के आधार पर हल करने को कहा जिसमें भारत, पाकिस्तान के

---

1. कलीम बहादुर, ''इंडिया-पाकिस्तान, रिलेशंस'', सतीश कुमार, सपादक, ईयर बुक ऑन इंडियाज फॉरन पालिसी, 1987-88, नई दिल्ली, 1988 पृ. 88।

2. सुरेश कुमार, 'प्रोबलम ऑफ न्यूक्लियर प्रोलिफिरेशन इन साउथ एशिया : ए स्टडी ऑफ इण्डियाज मिजाईल डेवलपमेंट प्रोग्राम; कुरुक्षेत्र, 1996.

3. मुनिस अहमर, ''वार अवाईडैंस बिटवीन इंडिया एण्ड पाकिस्तान : ए मॉडल ऑफ कनफ्लिक्ट रेजोलुशन एण्ड कॉनफिडेंस-बिल्डिंग इन द पोस्ट-कोल्ड वार ईरा'' स्ट्रेटेजिक स्टडीज, वाल्यूम 16, पृ० 7.

अलावा अमेरिका, रूस चीन भी शामिल थे. परन्तु भारत इसके लिए तैयार नहीं हुआ क्योंकि वह विश्व में परमाणु अप्रसार सम्बन्धी सभी समझौतों को भेदभावपूर्ण मानता है। अत: ऐसे किसी समझौते को स्वीकृति देना तर्कसंगत नहीं है।[1]

उपरोक्त प्रयासों से ऐसा लगा कि दोनों देशों के बीच विश्वास वृद्धि की दिशा में कुछ प्रगति हुई है परन्तु यह प्रगति भी बहुत आशाजनक नहीं साबित हो पायी। दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संघ एक ऐसा मंच है जिसके माध्यम से कुछ प्रगति को दिशा निर्देश मिल सकता है लेकिन वहां इन दो देशों की भूमिकाएं अधिक सहयोगी प्रतीत नहीं होती और जब तक इन दोनों देशों के मध्य उपस्थित अवरोधक तत्व समाप्त नहीं हो जाते ऐसा सोचना एक कल्पना मात्र होगी।

भारत और पाकिस्तान के बीच पनप रहे वैमनस्य और उग्र हो गया जब मई 1992 में इस्लामाबाद में भारत के पाकिस्तान में उच्चायुक्त राजेश मित्तल को परेशान करके अन्तत: देश छोड़ने को मजबूर किया गया।[2] शायद ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि मार्च 1992 में भारतीय सुरक्षा बलों ने दिल्ली व पंजाब में कार्यरत पाकिस्तानी गुप्तचरों को पकड़ लिया था। प्रत्युत्तर में भारत ने पाकिस्तान उच्चायोग के दो अधिकारियों को न केवल निरस्त किया बल्कि जून, 1992 में होने वाली सचिव स्तरीय बातचीत को भी रद्द कर दिया।

6 दिसम्बर, 1992 को भारत के अयोध्या में 15वीं शताब्दी की बाबरी मस्जिद को हिन्दू समर्थक द्वारा तोड़ दिये जाने पर पाकिस्तनी सरकार ने इसके लिए भारतीय सरकार को दोषी बताया और पाकिस्तान में स्थित कई मन्दिर तुड़वा दिये। इस घटनाक्रम से 'द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त व 'धर्मनिरपेक्षता' का संघर्ष पुन: जीवित हो उठा।[3]

12 मार्च, 1993 को भारत के बम्बई में हुए लगातार बम काण्डों में हुए आपार जान-माल की हानि के पीछे, भारत ने पाकिस्तान की गुप्तचर ऐजेन्सी आई० एस० आई० का हाथ बताया।

---

1 वही पृ० 8.

2. राजू जी० सी० थामस, साउथ एशियन स्कोरिटी इन दॉ नाईनाटिन नाईनाटिज : लन्दन, 1993.

3. अयोध्या एण्ड दॉ पॉलिटिक्स ऑफ इण्डियाज स्कूलरिज्म : ए डॅबल स्टेन्डर्ड डिस्कोर्स, ''एशियन सर्वे वाल्यूम 33, अंक 7 जुलाई 93.

पाकिस्तान ने इसका खण्डन किया, परन्तु उसका इन्कार उसकी नीतियों के विरुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि भारत के कहने पर पाकिस्तान ने उन बम बिस्फोट के जिम्मेदार लोगों को भारत वापस नहीं भेजा जो यू० ए० ई० तथा सऊदी अरब से होते हुए पाकिस्तान पहुँचे थे।[1]

उपरोक्त तत्वों के कारण भारत और पाकिस्तान में दूरियां बढ़ती गई। फिर 1996-97 में भारत द्वारा पड़ोसी देशों से संबंध सुधारने हेतु 'गुजराल सिद्धान्त' को अपनाने के पश्चात दोनों देशों की स्थिति में कुछ परिवर्तन आया। परिणामस्वरूप 28-31 मार्च, 1997 को दोनों देशों के विदेश सचिवों की वार्ता आरम्भ हुई, जिसे 'नई शुरुआत' की संज्ञा दी गयी।[2] इसके अलावा नौवें सार्क शिखर में दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों के बीच संयुक्त कार्य दल बनाने पर समझौता हो गया तथा विदेश सचिवों को इसकी कार्यसूची तैयार करने को कहा गया अत: दोनों देशों के मध्य 'ढांचागत वार्ताओं' का दौर शुरू हो गया।[3]

परन्तु उपरोक्त घटनाएं भी बाधा रहित नहीं है। अगस्त-सितम्बर, 1997 को नियंत्रण रेखा के 'उरी' क्षेत्र पर पाकिस्तान द्वारा बिना कारण गोलाबारी करने से पुन: संकट का माहौल बन गया। कश्मीर, सियाचीन, बुलर, टुलबुल सिंचाई परियोजना, सर क्रिक आदि मूलभूत मुद्दों के समाधान के बिना स्थाई सम्बन्ध सुधारों की सम्भावनाएं अति अल्प है। परमाणु हथियारों व प्रक्षेपास्त्रों का मुद्दा अभी भी विवादास्पद स्थिति में बना हुआ है अन्तत: पाकिस्तान की घरेलू स्थिति व सम्बन्ध सुधारों से वहां की सेना की भूमिका पर पड़ने वाले प्रभावों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता।

मई, 1998 को भारत और फिर पाकिस्तान द्वारा परमाणु परीक्षणों के बाद जहां एक ओर दोनों देशों के परमाणु शक्ति वाले राष्ट्र बनने से परमाणु प्रसार व दक्षिण एशिया में अणु हथियारों की होड़ को बढ़ावा मिला, वहीं दूसरी ओर इस प्रक्रिया स्वरूप दोनों देशों के सम्बन्धों में सकारात्मक परिवर्तन भी आया। दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने सार्क के कोलम्बो शिखर सम्मेलन में बातचीत की।

---

1. संडे टाइम्स ऑफ इण्डिया, 6 दिसम्बर, 1992, हिन्दू वीकली, 27 फरवरी 1993।
2. आउट लुक, 16 अप्रैल, 1997, पृ. 40-41, 'भारत-पाक वार्ता में नया क्या' (सम्पादकीय) राष्ट्रीय सहारा, 8 मार्च, 1997, निष्फल भारत-पाक वार्ता (सम्पादकीय)।
3. आउट लुक, 28 मई, 1997, पृ. 20-2, टाइम्स ऑफ इण्डिया 13 मई, 1997।

उसके बाद सितम्बर, 1998 में भारत-पाक विदेश मंत्रियों के 12वें गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के शिखर में बातचीत हुई। इसी समय दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों की संयुक्त राष्ट्र महासभा के सम्मेलन में न्यूयार्क में हुई वार्ताओं का सार्थक परिणाम दृष्टिगत हुआ। इस सम्मेलन में दोनों देशों के बीच विवादास्पद आठ मुद्दों में से दो मुद्दों (कश्मीर एवं शान्ति व सुरक्षा) को छोड़कर शेष के 'छह मुद्दों' को पृथक कर दिया गया। इस कार्यसूची का यह लाभ हुआ कि कश्मीर एवं शान्ति व सुरक्षा के जटिल मुद्दों के रहते हुए भी अन्य शेष मुद्दों पर सहमति का मार्ग प्रशस्त हो सकता था। इसी वार्ता के अन्तर्गत भारत और पाकिस्तान के बीच 'बस सेवा' चलाने के मुद्दे पर न्यूयार्क में सहमति हो गई।

20 फरवरी, 1991 को भारत के प्रधानमंत्री वाजपेयी की बस से लाहौर यात्रा द्वारा दोनों देशों के सम्बन्धों में एक नया आयाम जुड़ा। दोनों देशों के बीच इस बदले हुए राजनय के पीछे निम्न कारण उत्तरदायी रहे—

1- भारत परमाणु अप्रसार सम्बन्धी अपनी नीति को स्पष्ट रूप से उजागर करना चाहता था।

2- दोनों राष्ट्रों पर व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि पर हस्ताक्षर के लिए अत्यधिक दबाव पड़ रहा था।

3- 1998 के परीक्षणों के बाद परमाणु हथियार सम्पन्न राष्ट्र बनने से दोनों देशों के मध्य परमाणु क्षमता नियन्त्रण आवश्यक था।

भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी पाकिस्तान की दो दिवसीय यात्रा पर गये और यात्रा के दौरान तीन प्रमुख दस्तावेजों—सहमति के ज्ञापन, संयुक्त वक्तव्य तथा लाहौर घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किये। 21 फरवरी, 1999 को हस्ताक्षरित लाहौर घोषणा पत्र में दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने इस बात पर बल दिया कि वे अपने देशों के मध्य शान्ति और स्थायित्व की किरण देखते हैं।" उन्होंने इस बात पर सहमति व्यक्त की कि दोनों देशों के मध्य व्यापक एवं एकीकृत बातचीत को और आगे बढ़ाया जाए तथा गति प्रदान की जाए। उन्होंने आतंकवाद की निन्दा और भर्त्सना की। इसके अलावा दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों के संयुक्त वक्तव्य के आधार पर यह सहमति हुई कि—दोनों देश 'दक्षेस' की गतिविधियों में एक-दूसरे को सहयोग देंगे, विश्व व्यापार संगठन में एक-

सहयोग में वृद्धि करेंगे। लाहौर घोषणापत्र के अन्तर्गत इन दोनों ने शिमला समझौते में भी अपनी वचनबद्धता को दोहराया।[1]

यद्यपि लाहौर यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच किसी विवादास्पद मुद्दे पर संधि नहीं हो पायी परन्तु दोनों देशों की पृष्ठभूमि के मद्देनजर लाहौर घोषणापत्र एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। परन्तु लाहौर घोषणापत्र के परिणाम अभी आए नहीं थे कि पाकिस्तान ने एक सुनियोजित योजना के तहत सितम्बर 1998-फरवरी, 1999 के बीच भारी मात्रा में घुसपैठिये, कट्टरवादी व अपनी सेना को भारत की ओर नियंत्रण रेखा के सात किलोमीटर अन्दर तक 150-200 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में कारगिल द्रास-बटालिक क्षेत्र में तैनात कर दिया। इसके बाद मई, 1999 से पाकिस्तान ने छुट-पुट गोलाबारी आरम्भ कर दी और मई के तीसरे सप्ताह तक इस छुट-पुट गोलाबारी ने भयंकर युद्ध का रूप ले लिया। भारत 'आपरेशन विजय' के माध्यम से नियंत्रण रेखा स्थित अपने क्षेत्रों को खाली कराने में सफल हुआ।

उपरोक्त कारणों से पाकिस्तान सरकार जहां एक ओर कश्मीर मुद्दे का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करके हल करना चाहती है वहीं दूसरी ओर नियंत्रण रेखा को पाकिस्तान के पक्ष में रखने पर बल देती है। अतः यह युद्ध पाकिस्तान के बहुआयामी उद्देश्यों को परिलक्षित करता है।[2]

12 अक्टूबर, 1999 को अचानक नवाज शरीफ सरकार का तख्ता पलट कर, एक बार पुनः पाकिस्तान में सेनिक शासन स्थापित हो गया। सेना अध्यक्ष परवेज मुशर्रफ कार्यकारी अध्यक्ष बने और बाद में स्वयं को पाकिस्तान का राष्ट्रपति घोषित किया। पाकिस्तान में लोकतंत्र का गला घोंट कर आबाद सैनिक शासन के परिणामस्वरूप भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों में नया मोड़ आया, तथा कश्मीर में आतंकवाद और तेज हो गया। दिसम्बर, 1999 में भारत के विमान का अपहरण कर अफगानिस्तान ले जाया गया और सात दिन तक यात्रियों को बंधक बनाकर रखा गया। भारत के पास इस बात के पुख्ता प्रमाण हैं कि अपहरणकर्ता पाकिस्तानी नागरिक थे।

---

1. फ्रन्ट लाइन, 12 मार्च, 1999, पृ. 8।
2. जे एन. दीक्षित, 'इनवेजन ऑफ कारगिल' हिन्दुस्तान टाइम्स, 23 जून, 1999।

भारत ने लगातार कई वर्षो तक पाकिस्तान के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाने की हर सम्भव कोशिशें की, परन्तु उनका कोई सार्थक परिणाम नहीं आया। भारत की ही पहल पर आयोजित आगरा शिखर सम्मेलन में भी पाकिस्तानी राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ की पैंतरेबाजी से भारत-पाक सम्बन्ध मधुर होने के आसार खत्म हो गये।

जेहादी आतंकवाद का केन्द्र बिन्दु आज पाकिस्तान बन गया है। पाकिस्तान के जनक जिन्ना जेहादी पाकिस्तान नहीं चाहते थे आम जनता भी इसका पूरी तरह से विरोध करती है सेना में इसका समर्थन अफगानिस्तान के इस्लामीकरण के साथ-साथ हुआ। इस प्रक्रिया में पाकिस्तान इतना गहरा पैठ गया कि न केवल सेना का इस्लामीकरण हुआ वरन् समाज के एक हिस्से को भी अपनी जहिलियत का निजात धर्म में नजर आने लगा। पाकिस्तान सैन्य नेतृत्व का प्रयोग कश्मीर के लिए कर रहा है। इसके अलावा अक्टूबर, 2001 में जम्मू-कश्मीर विधानसभा पर फिदायीन हमला, 13 दिसम्बर, 2001 को भारत की राजधानी दिल्ली स्थित संसद भवन पर असफल आतंकवादी हमला, मार्च, 2002 को जम्मू कालचूक में मासूम बस यात्रियों का नरसंहार आदि घटनाओं ने भारत और पाकिस्तान के बीच अनिवार्य युद्ध जैसा वातावरण तैयार कर दिया। उपर्युक्त घटनाओं से भारत के सब्र का बांध टूट गया सरकार के साथ-साथ भारतीय जनता भी युद्ध में ही समस्त समस्याओं का हल खोजने लगी। भारतीय सेनाएं सीमा पर तैनात भी कर दी गयी परन्तु अमेरिका व विश्व समुदाय के अनुरोध पर उसने धैर्य का परिचय दिया और चूंकि यह युद्ध परमाणु अस्त्रों के आधार पर होता तो भारत को अपार क्षति होती ही, लेकिन पाकिस्तान का नामोनिशान ही मिट जाता। यह सत्य है कि जल्द ही अगर आतंकवाद का हल न खोजा गया तो दोनों के बीच युद्ध होना अन्तिम विकल्प होगा। युद्ध की संभावनओं को टालना अब पाकिस्तान पर निर्भर है। पाकिस्तान ने विश्व समुदाय के दबाव में यह घोषणा की कि वह आतंकवाद को प्रश्रय देने वाले संगठन को दण्ड देगा और भारतीय सीमा में घुसपैठ को रोकेगा। पाकिस्तान घोषणाओं पर कितना अमल करता है यह तो समय की बात है। पाक सैनिक नेतृत्व यह अच्छी तरह जानते हैं कि भारत की प्रतिष्ठा और सैन्य शक्ति की तुलना में उनकी वास्तविकता क्या है। दोनों मुल्कों की गरीबी, निरक्षरता और कुपोषण से मुक्ति के लिए उनके विरुद्ध कठिन लड़ाई लड़नी है। अगर यकीनन पाक जनरलों ने अपने सोचने समझने का तरीका बदल दिया तो उनके लिए अपने अतीत के बोझ से मुक्त हो जाने का यही सही वक्त है। सम्पूर्ण विश्व और भारत उसका मूल्यांकन उनकी कथन से नहीं, करनी से करेगा।

पाकिस्तान यह कहता है कि घुसपैठ और आतंकवाद के पीछे मुख्य कारण कश्मीर समस्या का अनसुलझा रहना है इसलिए समस्या की जड़ पर हमला करने के लिए भारत को पाकिस्तान के साथ बातचीत शुरु करनी होगी। भारत यह साफ कर चुका है कि बातचीत के लिए पहले पाकिस्तान को अनुकूल माहौल बनाना होगा। उसे अपने यहां आतंकवादी प्रशिक्षण ढांचे को खत्म करना होगा, कश्मीर में घुसपैठ पर पूरी तरह स्थायी रोक लगानी होगी तथा सीमा पार आतंकवाद रोकना होगा।

कश्मीर भारत और पाक के बीच तनाव का मुख्य विषय है दोनों देश उस छोर पर पहुंच चुके हैं जहां से विश्व में प्रथम परमाणु युद्ध छिड़ सकता है। यद्यपि कश्मीर समस्या का अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो चुका है परन्तु फिर भी भारत कश्मीर की समस्या में मध्यस्थता अथवा पंचफैसला स्वीकार नहीं करना चाहता क्योंकि वह कश्मीर को एक द्विपक्षीय मुद्दा मानता है।

घुसपैठ न होने देने के लिए सीमाओं पर निगरानी के लिए भारतीय ओर पाकिस्तानी सैनिकों के साथ यदि संप्रभु राष्ट्र के तत्वावधान में कोई दल रहे तो संभवत: इससे कोई हानि नहीं है। एक लाभ ही है वह है कि नियंत्रण रेखा की मान्यता यदि संयुक्त राष्ट्र दल गश्ती दलों का हिस्सा हो तो नियंत्रण रेखा जो एक वास्तविक सीमा हो गई है एक दिन कानूनी रूप भी ले लेगी। अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय चाहता है कि भारत और पाकिस्तान वार्ता की मेज पर साथ-साथ बैठे ताकि समस्याओं का हल निकल सके।

भारत-बांग्लादेश

भारत-बांग्लादेश सम्बन्धों की पृष्ठभूमि मात्र दो पड़ोसी राष्ट्रों के मध्य समान आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक कारणों पर ही आधारित नहीं है, बल्कि बांग्लादेश के उदय में भारत की विशेष भूमिका के सन्दर्भ के कारण भी है। भारत की इस भूमिका के लिए कुछ विद्वानों ने बांग्लादेश के उत्पन्न होने में 'दाई' की भूमिका से तुलना की है।[1] भारत ने बांग्लादेश की स्वतंत्रता हेतु युद्ध करने वाली मुक्तिवाहिनी के जवानों को प्रशिक्षण व हथियार ही नहीं दिये बल्कि करीब एक करोड़ शरणार्थियों को शरण भी दिया। इसके अलावा, भारत विश्व का प्रथम देश था जिसने बांग्लादेश की

---

1. रमेश ठाकुर, दों पॉलिटिक्स एण्ड ईकोनोमिक्स ऑफ इंडियाज पालिसी, नई दिल्ली, 1994, पृ. 180।

स्थायी सरकार बनने से पूर्व ही उसे 6 दिसम्बर, 1971 को मान्यता प्रदन की।[1] शेख मुजीबुर्रहमान के बांग्लादेश के प्रधानमंत्री बनने के बाद एक सन्धि के अन्तर्गत भारत ने बांग्लादेश को पुनर्निर्माण के लिए 25 करोड़ रुपये के माल व सेवाएं प्रदान करने का वचन दिया तथा 50 लाख पौंड की विदेशी मुद्रा का ऋण दिया जिसकी अदायगी 5 वर्ष बाद 15 किस्तों में वापस लेने का प्रावधान किया गया।[2] इन सम्बन्धों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों का प्रारम्भ होना स्वाभाविक ही नहीं, अपितु अनिवार्य था।

भारत-बांग्लादेश के सम्बन्धों का प्रथम चरण (1971-75) अत्यन्त घनिष्ठ मित्रता एवं सहयोग का युग कहा जा सकता है जिसका आरम्भ दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों—शेख मुजीबुर्र व इन्दिरा गांधी के एक-दूसरे के देशों की सद्भावना यात्रा से हुआ। परिणामस्वरूप इस काल में दोनों देशों के मध्य मधुर राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सम्बन्ध विकसित हुआ।

राजनैतिक दृष्टि से दोनों देशों के मध्य 19 मार्च, 1972 की 25 वर्षीय मित्रता व सहयोग की सन्धि अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है।[3] इस संधि के द्वारा दोनों देशों ने जहां एक ओर एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करने, एक दूसरे की सीमाओं का आदर करने तथा एक दूसरे के खिलाफ किसी अन्य देश का सहयोग न करने का वचन दिया वहीं दूसरी ओर उपनिवेशवाद, रंगभेद तथा साम्राज्यवाद का विरोध करके विश्व शान्ति व सुरक्षा को सुदृढ़ बनाने का संकल्प लिया। इसी सन्धि के तहत दोनों देशों के मध्य आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी इत्यादि क्षेत्रों में सर्वांगीण सहयोग तथा आपसी व्यापार, परिवहन व संचार के कार्य में सहयोग वृद्धि की व्यवस्था की गई। अन्तत: दोनों देशों के ऐतिहासिक सम्बन्धों के दृष्टिकोण से कला, साहित्य्, शिक्षा, संस्कृति व स्वास्थ्य सम्बन्धों को सुदृढ़ करने का प्रावधान किया गया। इसके अलावा इस सन्धि से सम्बन्धित द्विपक्षीय मतभेदों को बातचीत के द्वारा हल करने की व्यवस्था थी।

आर्थिक सहायता व ऋण के अलावा 1972 में भारत ने बांग्लादेशके साथ एक द्वि-पक्षीय आर्थिक सहयोग समझौता किया जो तीन भागों में विभाजित था—प्रथम भाग में सीमाओं के दोनों

---

1. वी. पी. दत्त, इंडियाज फॉरैन पॉलिसी, नई दिल्ली, 1987, पृष्ठ 233।
2. फॉरैन अफेयर्स रिकार्ड, मार्च, 1972, पृ. 61-63।
3. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 20 मार्च, 1972।

तरफ सोलह-सोलह किलोमीटर तक उन्मुक्त व्यापार की बात थी। इसके साथ-साथ व्यापार में मात्र दैनिक वस्तुओं को ही शामिल किया गया जो दोनों के लिए लाभप्रद थी। अन्तत: सीमावृत्ति लोगों की बेकारी को देखते हुए दोनों देशों के नागरिकों को दिन में एक बार सीमा पार जाने तथा 100 रुपये तक अपने साथ लाने की अनुमति प्राप्त थी। द्वितीय भाग में दोनों देशों के व्यापार की राशि एवं वस्तुओं की व्यवस्था थी। यह निर्धारित किया गया कि दोनों देश रुपये के आधार पर एक-दूसरे को 50 करोड़ रुपये तक का माल भेज सकेंगे। इसके अन्तर्गत भारत को बाांग्लादेश मछलियां, कच्चे जूट, खालें व अखबारी कागज भेजेगा तथा भारत बांग्लादेश को सीमेंट, धागे, तम्बाकू, खनिज पदार्थ तथा मशीनरी भेजेगा। तृतीय भाग विदेशी मुद्रा से सम्बन्धित था। जिसके तहत दोनों राष्ट्र एक-दूसरे से कोई भी वस्तु अपनी मुद्रा में भुगतान करने के आधार पर मंगा सकते हैं।[1]

1974 में दोनों देशों ने दो आर्थिक तथा तीन कर्ज सम्बन्धी समझौते किये। समझौते के अन्तर्गत भारत ने बांग्लादेश को 41 करोड़ का ऋण दिया एवं चार उद्योग बांग्लादेशमें लगाने को तैयार हो गया। इसके अलावा दोनों देशों ने एक संयुक्त जूट आयोग की स्थापना करने तथा तस्करी रोकने के कुछ कदम उठायें। अन्तत: 1947 से चल रहे फरक्का विवाद को सुलझाने हेतु 18 अप्रैल, 1975 को एक अन्तरिम समझौता हुआ।[2] इस समझौते के अन्तर्गत गंगा के पानी के बारे में कम बहाव के दौरान (21 अप्रैल-31 मई) के बारे में सहमति हो गयी। इसके अन्तर्गत अधिकतम पानी बांग्लादेश को दे दिया गया तथा भारत द्वारा इन दिनों पानी की निकासी की मात्रा निम्न आधार पर तय की गई—[3]

माह	**10 दिवसीय अवधि**	**निकासी (क्यूसिक)**
1. अप्रैल	21 से 30 तक	11,000
2. मई	1 से 10 तक	12,000
3. मईं	11 से 20 तक	15,000
4. मई	21 से 31 तक	16,000

---

1. वी. वी दत्त, इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, नई दिल्ली, 1987, पाद टिप्पणी संख्या 2 पृ. 235-37।
2. एस एस. बिन्द्रा, 'फरखा बैरेज एगरीमैण्ट : ए रिव्यू'
3. सुरेन्द्र चोपड़ा, संपादक, स्टडीज इन इंडियाज फॉरेन पालिसी अमृतसर, 1980 पृ. 339।

दोनों देशों के मध्य सांस्कृतिक सम्बन्ध विकसित करने के उद्देश्य से 1972 में ही एक समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत संस्कृति, शिक्षा, विज्ञान तथा तकनीकि सहयोग को घनिष्ठता प्रदान करने के प्रयत्न किए गये।

भारत और बांग्लादेश के बीच इस मधुर सम्बन्ध का अर्थ यह बिल्कुल नहीं था कि इनमें मतभेद का कोई स्थान नहीं था। 1972 से ही बांग्लादेश में कुछ-कुछ भारत विरोधी दृष्टिकोण उभरने लगे थे इसका कारण संभवत: बांग्लादेशकी राजनीति में आया आन्तरिक परिवर्तन तथा पश्चिमी राष्ट्रों का षडयंत्र हो सकता है। 15 अगस्त, 1975 को सेना के कुछ मध्य स्तरीय अधिकारियों ने एक सैनिक विद्रोह करके बांग्लादेश के संस्थापक, बगबन्धु शेख मुजीबुर्ररहमान तथा उनके परिवार की हत्या कर दी। उस समय बांग्लादेश में भारत विरोधी प्रवृत्तियां स्पष्ट दिखाई देरही थी। धार्मिक कट्टरता सिर उठा रही थी और धर्म निरपेक्षता को नई सैनिक व्यवस्था में धक्का लगा था। भारत और पाकिस्तान के मध्य उभर रहे मतभेद के लिए उस दौरान अन्य कारण भी विद्यमान थे—बांग्लादेश में इसके बाद ज्यादातर सरकारें मुजीब विरोधी गुट की रही है अत: उन्होंने मुजीबुर्रहमान की नीतियों से विरोधाभास की विदेश नीति अपनाई, तत्कालीन बांग्लादेश सरकार की मुख्य नीतियां पाकिस्तान की ओर झुकाव वाली रही है अत: इस चरण (1975-95) में बांग्लादेश की भारत विरोधी दृष्टिकोण सामने आ गयी। 1970-80 के दशक में भारत की सैन्य क्षमता में वृद्धि के कारण भी बांग्लादेश आशंकित रहा है। इसके अतिरिक्त फरक्का बांध का विवाद, मूर द्वीप का विवाद, अवैध आव्रजन, सीमा विवाद, अन्त: क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्या इत्यादि विवादास्पद विषय भी भारत और बांग्लादेश के सम्बन्धों को तनावपूर्ण बनाने में योगदान देते रहे है।[1]

इस दौरान बीच-बीच में भारत और बांग्लादेश के सम्बन्धों में कुछ सुधार भी हुआ। भारत की जनता दल सरकार द्वारा पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध सुधारने को उच्च प्राथमिकता देने के कारण 29 सितम्बर 1977 को भारत और बांग्लादेश के बीच फरक्का बांध के बारे में समझौता हुआ।[2] परन्तु

---

1. जयन्त कुमार रे, ''इश्यूज इन इंडिया-बांग्लादेश रिलेसन्ज'', सतीश कुमार सम्पादक, ईयरबुक ऑन फॉरेन पालिसी, 1987-88 नई दिल्ली 1988, पृ० 95-105.

2. एस० एस० बिन्द्रा फरखा बैरेज एगरीमैन्ट: ए रिव्यू'

यह समझौता बांग्लादेश के कथानानुसार 30 मई 1982 को रद्द कर दिया गया। 30 जुलाई 1983 को तीस्ता जल समझौता होने पर दोनों देशों के सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ था। 1982 में दाहाग्राम व अंगरपीता के दो अन्त: क्षेत्रों को जोड़ने के लिए भारत द्वारा तीन बीघा का गलियारा देने से भी स्थिति कुछ सामान्य हो गई थी।[1] 1980 के दशक में दक्षेस सम्मेलनों में भी दोनों देश करीब आए परन्तु इन विभिन्न समझौतों द्वारा पनपा सामीप्य कभी भी मित्रता में नहीं बदला।

1996 में बांग्लादेश में शेखहसीना वाजिद की सरकार आई और इधर भारत में संयुक्त मोर्चे के नेतृत्व में नई सरकार का आगमन हुआ। अत: दोनों ही देशों में परिवर्तित राजनीतिक स्थिति से भारत बांग्लादेश सम्बन्धों की नई शुरूआत हुई। इसका प्रमुख कारण दोनों प्रधानमंत्रियों—शेख हसीना वाजिद (दिसम्बर, 1996) तथा एच० डी० दैवगौड़ा (जनवरी, 1997) द्वारा एक दूसरे देश की सद्भावना यात्रा तथा आपसी विचार विमर्श के द्वारा फरक्का जल बंटवारे जैसी गहन समस्या के हल से माना जा सकता है।[2] सम्भवत: परिवर्तित विश्व व्यवस्था, क्षेत्रीय सहयोग तथा दोनों देशों की सरकारों द्वारा पूर्वाग्रहों रहित नीति अपनाने के कारण दोनों के सुखद सम्बन्धों की कल्पना की गयी।

दोनों राष्ट्रों के मध्य किसी भी तरह के भविष्य के सम्बन्धों के आकलन के लिए हमें यह जानना आवश्यक होगा कि इन दोनों राष्ट्रों के मध्य मुख्यत: पांच ऐसे विवादास्पद मुद्दे है जो दोनों देशों के मध्य निरन्तर तनाव बनाए रखे है—

1. नदी जल बटवारा—यह सर्वविदित है कि भारत और बांग्लादेश के मध्य विवाद का मुख्य विषय नदी जल बटवारे की समस्या रही है। दोनों देशों के बीच 54 सांझी नदिया है परन्तु सर्वाधिक विवाद गंगा के पानी के बंटवारे को लेकर रहा है।[3] इस सम्बन्ध में 1975 में एक अल्पकालीन, फिर बाद में 1977 को इन दोनों के बीच एक दीर्घकालीन समझौता हुआ। यह विवाद गंगा नदी पर फरक्का में भारत द्वारा बांध बनाने को लेकर उठा क्योंकि भारत इस बांध के द्वारा

---

1. फॉरेन अफेयर्स रिकार्ड, अक्टूबर, 1982
2. ''ब्रिजींग दॉ ब्रीच'', आउटलुक, 25 दिसम्बर, 1996 पृ० 34.
3. जयन्त कुमार रे, ''इश्यूज इन इंडिया-बांग्लादेश रिलेसन्ज,' सतीश कुमार, सम्पादक, ईयर बुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, 1987-88 नई दिल्ली, 1988, पृ० 98

कलकत्ता बन्दरगाह को बचाने के लिए गर्मियों के मौसम में निर्धारित जल का बहाव रखना चाहता है यह समझौता 5 वर्ष के लिए किया गया था। जिस पर 3 वर्ष पूरे होने पर पुनर्विचार किया जायेगा।[1] इस समझौते में 1 जनवरी से 31 मई तक के पानी के बंटवारे की योजना पर सहमति हुई। इस समझौते के अन्तर्गत निम्न बहाव के समय बांग्लादेश को 62.5 प्रतिशत (34.700 क्यूसेक) तथा भारत को 375 प्रतिशत (20,800 क्यूसेक) जल प्राप्त होगा। इसके अलावा यह भी प्रावधान था कि यदि गंगा में पानी अनुमान से कम हुआ तो भारत बांग्लादेश के लिए निर्धारित जल का कम से कम 80 प्रतिशत उसे उपलब्ध करायेगा।

परन्तु कुछ समय के बाद इस समझौते का बांग्लादेश में विरोध होना शुरु हो गया, जबकि वास्तविकता यह है कि यह समझौता भारतीय हितों के अनुकूल नहीं था क्योंकि भारतीय व विदेशी विशेषज्ञों के अनुसार कलकत्ता बन्दरगाह की सुरक्षा के लिए कम से कम 40,000 क्यूसेक जल की आवश्यकता है, लेकिन इस समझौते के आधार पर पांच महीने में मात्र 10 दिन में ही इतनी मात्रा में पानी उपलब्ध हो सकता था। इसके अलावा तथ्यात्मक दृष्टि से गंगा बेसिन में बसने वाले कुल जनसंख्या का 94 प्रतिशत तथा गंगा के प्रमुख बहाव का 90 प्रतिशत क्षेत्र भारत में पड़ता है। भारत के पास कलकत्ता बन्दरगाह की सुरक्षा के लिए और कोई स्रोत नहीं था जबकि बंग्लादेश में वैकल्पिक स्रोत बाहुल्य में थे। अन्तत: बांग्लादेश के पास पानी को रोकने का कोई साधन नहीं है अत: सारा पानी समुद्र में बहने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह जाता। इस तरह बांग्लादेश के पक्ष में स्थापित धाराओं के बावजूद 1982 में जनरल इरशाह की अपील पर भारत ने इस समझौते को रद्द करने की सहमति दे दी। इस समझौते का संशोधित रूप 1988 तक लागू रहा, उसके पश्चात दोनों राष्ट्रों के मध्य इस सन्दर्भ में कोई समझौता नहीं हो सका।[2]

उपर्युक्त समस्या के हल के लिए भारत ने गंगा-ब्रह्मपुत्र लिंक नहर का प्रस्ताव पेश किया जिसे विश्व बैंक ने भी स्वीकृति दे दी। बांग्लादेश का मत था कि इस योजना से उसकी बड़ी मात्रा में

---

1. वहीं

2. जयन्त कुमार रे, "इश्यूज इन इंडिया—बांग्लादेश रिलेसन्ज, 'सतीश कुमार सम्पादक, ईयर बुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, 1987-88 नई दिल्ली.

भूमि नष्ट हो जाएगी, परन्तु तथ्य इसके प्रतिकूल है। वास्तविकता यह है कि इस योनजा के अन्तर्गत भारत की 2.38,500 एकड़ भूमि व बांग्लादेश की 20,000 एकड़ भूमि का प्रयोग होगा तथा बांग्लादश का यह भाग उसकी सिंचाई से लाभान्वित होने वाली भूमि का दो प्रतिशत है। दूसरी तरफ बांग्लादेश ने, इस योजना में नेपाल को भी शामिल करके वहां पानी संग्रहीत करने की व्यवस्था करने का सुझाव दिया। पहले भारत इसके विरुद्ध रहा, परन्तु राजीव गांधी सरकार ने इसे मान लिया। लेकिन इस योजना से गंगा का बहाव में 25,000 से 30,000 क्यूसेक पानी बढ़ेगा, जिससे कलकत्ता बन्दरगाह तो क्या उत्तर प्रदेश व बिहार की जरूरत भी पूर्ण नही हो सकती थी। इससे बांग्लादेश की मांग भी पूरी नहीं की जा सकती थी जो प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। यह 1960 में 3500 क्यूसेक थी, 1968 में बढ़कर 29,350 क्यूसेक हो गई तथा 1970 के दशक में बढ़कर 55,000 क्यूसेक हो गई।[1]

इस प्रकार दोनों देशों में व्याप्त विरोधी दृष्टिकोण के कारण यह समस्या निरन्तर बनी रही। 1996 में दोनों राष्ट्रों में राजनीतिक परिवर्तन हुआ। दोनों देशों की नई सरकार ने इस समस्या को सुलझाने के प्रयास किए। परिणामस्वरूप दिसम्बर, 1996 को दोनों राष्ट्रों के मध्य 12 सूत्री 30 वर्षीय समझौता हुआ।[2] इस संधि पर हस्ताक्षर के बाद इस समस्या स्थाई हल ढूंढ लिया गया।

भारत-बांग्लादेश के मध्य गंगा के पानी के बंटवारें का फार्मूला

(1 जनवरी से 31 मई के समय)[3]

फरक्का में पानी की उपलब्धता	भारत का हिस्सा	बांग्लादेश का हिस्सा
1. 50,000 क्यूसेक या इससे कम	50 प्रतिशत	50 प्रतिशत
2. 70,000 से 75,000 क्यूसेक	बहाव का शेष पानी	35,000 क्यूसेक
3. 75,000 क्यूसेक या अधिक	40,000 क्यूसेक	बहाव का शेष पानी

---

1. वहीं.
2. संगीता थमलियाल, ''ट्रिटी ऑन शोयरिंग ऑव दों गंगा एट फरक्का,'' स्ट्रेटेजिक ऐनलिसिस, वाल्यूम 19 अंक 12 मार्च 1997, पृ० 1955-58.
3. हिन्दुस्तान टाइम्स, 13 दिसम्बर 1996

इस समझौते के अन्तर्गत दोनों देशों को वैकल्पिक रूप से तीन बार 10-10 दिनों की अवधि के लिए 35,000 क्यूसेक पानी 11 मार्च 10 मई तक उपलब्ध रहेगा।

भारत व बांग्लादेश के मध्य गंगा के पानी की मात्रा निकासी का फार्मूला[1]

(11 मार्च से 10 मई तक)

अवधि	1949 से 1988 के कुल बहाव का औसत (क्यूसेक)		बांग्लादेश का हिस्सा (क्यूसेक)
मार्च			
11-20	68,931	33,931	35,000
21-31	64,688	35,000	29,688
अप्रैल			
1-10	63,180	28,180	35,000
11-20	62,633	35,000	27,633
21-30	60,992	25,992	35,000
मई			
1-10	67,351	35,000	32,351

2. अन्तः क्षेत्रों की समस्या— भारत और बांग्लादेश के बीच कुछ अन्तः क्षेत्रों को लेकर विवाद व्याप्त हैं। यद्यपि 1974 में हुए एक समझौते द्वारा इस विवाद को हल करने का प्रयास किया गया था परन्तु दो अन्तः क्षेत्र दाहाग्राम व अंगरपोटा भारत में ही रह गये थे। 1982 में भारत व बांग्लादेश के बीच समझौते के आधार पर भारत ने उन्हें बांग्लादेश से जोड़ने के लिए 180×185 मीटर का तीन बीघे का गलियारा दे दिया। परन्तु भारत में पहले इसे कलकत्ता उच्च न्यायालय तथा

1. संगीता थमलियाल, 'ट्रिटी ऑन शेयरिंग ऑव दॉ गंगा एट फरक्का' स्ट्रेटेजिक एनेलिसिस, वाल्यूम, 19 अंक, 12 मार्च, 1997, पृ. 1757।

बाद में सर्वोच्च न्यायालय में याचिका देने के कारण यह मुद्दा लटक गया।[1] अन्तत: 1990 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह मामला स्पष्ट कर दिया। परिणामस्वरूप 26 जून, 1992 को भारत सरकर ने भारतीय जनता पार्टी के विरोध के खिलाफ यह क्षेत्र बांग्लादेश को सौंप दिया।[2]

इसी प्रकार एक विवाद बंगाल की खाड़ी में 'नव मूर द्वीप' की उत्पत्ति को लेकर हुआ। 12 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाला यह द्वीप भारीतय सीमा के काफी पास है लेकिन बांग्लादेश ने उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। बांग्लादेश का यह दक्षिण 'तलपटी' व भारत का यह 'पुरबांशा' दोनों देशों के बीच गम्भीर विवाद का कारण रहा। यद्यपि आज इस क्षेत्र पर भारत का आधिपत्य है, तथापि दोनों राष्ट्रों द्वारा संयुक्त सर्वे के आधार पर सहमति के बगैर इस विवाद का सम्पूर्ण हल निकालना असंभव है।

3. चकमा शरणार्थियों की समस्या— भारत और बांग्लादेया के मध्य चकमा के शरणार्थियों के बांग्लादेश के चीटागोंग पहाड़ी क्षेत्र में उनके पुनर्वास का विषय आज भी विवादित है।[3] बांग्लादेश इन शरणार्थियों को लेने के लिए तैयार है परन्तु वहां की उचित स्थिति का बहाना बनाकर वहां बसाने से इन्कार करता रहा है इनकी संख्या को लेकर भी दोनों देशों के मध्य विवाद है। जब भारत ने अनुमानत: इनकी संख्या 27,000 व 32,000 बताई तब बांग्लादेश न केवल 24,000 माना। और जब भारत ने इनकी संख्या 48,000 बताई तब बांग्लादेश ने इन्हें 24,390 माना। जब भारत ने 49,000 बताई तब बांग्लादेश ने इनकी संख्या 26,042 बताया। अन्तिम संख्या भारत ने 50,000 माना है।[4] परन्तु बांग्लादेश इनकी संख्या 30,000 तक सीमित करता है। यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है जब कभी शरणार्थियों की सुरक्षा, मानव अधिकार, विद्रोह गुटों को शरण देना, शान्ति सेना

---

1. जयन्त कुमार रे, 'इश्यूज इन इंडिया-बांग्लादेश रिलेसन्ज', सतीश कुमार, सम्पादक, ईयर बुक ऑन इंडियाजड फॉरेन पॉलिसी, 1987-88 नई दिल्ली 1988 पृष्ठ 100।
2. रमेश ठाकुर, दों पालिटिक्स एण्ड ईकोनोमिक्स ऑव इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, नई दिल्ली, 1994, पृ. 183।
3. अजय दर्शन बेहरा, 'इंसरजैंसी इन दों बांग्लादेश हिल्ज : चकमॉज सर्च फॉर अटानोमी', स्ट्रेटजिक ऐनेलेसिस, वाल्यूम 19 अंक 7 अक्टूबर, 1996 पृ. 985-1005।
4. जयन्त कुमार रे, 'इश्यूज इन इंडिया—बांग्लादेश रिलेसन्ज'', सतीश कुमार, संपादक, ईयर बुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, 1987-88, नई दिल्ली, पृ. 101।

की स्थापना आदि के साथ इसको जोड़ा जाता है। अत: वर्तमान समय तक दोनों देशों के मध्य कोई समाधान नहीं हो पाया है।

4. तस्करी की समस्या— दोनों देशों के मध्य आर्थिक सन्तुलन न होने से होने वाला व्यापारिक घाटा प्राय: बांग्लादेश के पक्ष में रहा है अत: नियमित व्यापार की जगह तस्करी को बहुत बढ़ावा मिला है। बांग्लादेश अपनी आवश्यकता की वस्तुओं (खाद्यतेल, मसाले आदि) की आपूर्ति भारत के लोगों को गैर-आवश्यक या भौतिक साधनों (जापानी कैमरा, टेपरिकार्डर) की तस्करी द्वारा करता है। अत: दोनों देशों के मध्य व्यापार के स्थान पर तस्करी ज्यादा प्रफुल्लित हो रही है जो दोनों ही राष्ट्रों के लिए चिन्ता का विषय है।[1] और इसका हल दोनों राष्ट्रों को मिलकर निकालना होगा।

5. अवैध नागरिकों की समस्या— बांग्लादेश से अवैध नागरिकों का भारत में आना दोनों देशों के बीच वैमनस्य का एक अन्य महत्वपूर्ण विषय रहा है। 1971 से पूर्व आये सभी बांग्लादेशी अवैध नागरिकों को भारतीय नागरिकता प्रदान की गई परन्तु उसके बाद इस समस्या ने गम्भीर रूप ले लिया। परिणामस्वरूप भारतीय सीमावर्ती राज्यों त्रिपुरा, असम, मिजोरम व बंगाल में भारी संख्या में अवैध लोग आ गये है बल्कि दिसम्बर 1991 के एक अनुमान के अनुसार नई दिल्ली में इनकी संख्या 1,00,000 आंकी गई तथा पश्चिमी बंगाल में यह संख्या, 587,000 बताई गई है।[2] इस संवेदनशील समस्या से निपटने के लिए भारत ने दोहरी नीति अपनायी एक ओर तो इन अवैध लोगों को वापस भेजने का कार्य किया, तो दूसरी ओर 1984 से सम्पूर्ण 3400 किलोमीटर की अपनी सीमाओं पर कांटेदार तार लगवाना प्रारम्भ कर दिया परन्तु इस प्रकार का समाधान लागू करने में दोनों देशों के मध्य अनेक कठिनाईयां है। प्रथम दोनों देशों की सीमा रेखा अस्पष्ट है। द्वितीय, कई जगहों पर नदियों के मध्य को सीमा रेखा निर्धारित किया गया है। तृतीय कई समझौतों द्वारा दोनों राष्ट्रों ने एक दूसरे के नागरिकों को दूसरे के क्षेत्रों में मछली पकड़ने का अधिकार दे रखा है। चतुर्थ दोनों देशों के बीच विरोधी कब्जे की समस्या है। भूमि एक देश की है तो खेती उस पर दूसरे देश के लोग करते है। अत: इस विवाद का निपटारा दोनों राष्ट्रों को विवेकपूर्ण एवं संवेदनशील रवैया अपनाकर करना होगा।

---

1. वही पृ० 102-103
2. ईकोनोमिस्ट (लन्दन) 14 नवम्बर 1992, पृ० 33

वर्तमान में भारत और बांग्लादेश के माधुर्यपूर्ण सम्बन्धों के लिए कुछ सकारात्मक संकेत मिलते हैं। प्रथम दक्षेस में दोनों देशों की भागीदारी व इसके माध्यम से बढ़ते क्षेत्रीय सहयोग के कारण दोनों राष्ट्र अधिक निकट आ सकते हैं। बांग्लादेश में शेख हसीना वाजिद के नितृत्व में प्रजातान्त्रिक सरकार का गठन व भारत में आई नई सरकारों द्वारा पड़ोसी सम्बन्धों पर अधिक बल देने के कारण दोनों देशों के बीच सहयोग की संभावनाएं ज्यादा सशक्त होती नजर आ रही है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि दोनों देशों के खुलेपन, उदार दृष्टिकोण एवं ईमानदारी से नीतियों पर सहमति व लागू करने पर जोर देना चाहिए।

भारत और श्रीलंका

श्रीलंका भारत का निकटतम पड़ोसी देश है। भारत और श्रीलंका के बीच ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक समानताएं विद्यमान है। दोनों देशों के बीच सहयोग एवं संघर्षात्मक मिश्रित सम्बन्धों का प्रारूप देखने को मिलता है जिसके कारण दोनों देशों के मध्य प्रायः हितों में समानताएं एवं विभिन्नताएं विद्यमान रही है। जातीयता का मुद्दा, दोनों देशों के मध्य एक लम्बे समय से तनाव का मुद्दा रहा है। तमिल समस्या के अलावा शेष मुद्दों का समाधान दोनों देशों द्वारा संतुष्टिपूर्ण ढंग से निकाल लिया गया है। अतः दोनों देशों ने आपसी सम्बन्धों में उतार-चढ़ाव के बावजूद, इसकी गत्यात्मकता को बरकरार रखा है।

एक लम्बे अन्तराल के बाद भारत और श्रीलंका दोनों ही देश लगभग एक साथ औपनिवेशिक दांसता से मुक्त हुए। अतः यह अपेक्षा की जा रही थी कि दोनों देश एक दूसरे के साथ परस्पर मैत्रीपूर्ण एवं समान दृष्टिकोण वाले सम्बन्ध अपनायेगें। परन्तु श्रीलंका की संयुक्त राष्ट्रीय पार्टी द्वारा प्रारम्भिक वर्षों में (1948-1956) लिए गए विदेश नीति सम्बन्धी निर्णय भारतीय नीति से मतभेदपूर्ण थे। श्रीलंका सरकार द्वारा उठाएं गए निम्न कदमों ने दोनों देशों के बीच मतभेद की स्थिति उत्पन्न कर दी हैं—(i) श्रीलंका ने स्वतन्त्रता के बाद भी अंग्रेजों से सैनिक गठबन्धन बनाए रखा। (ii) ट्रिन्कोमाली का नौसेनिक अड्डा तथा कटुनायके का हवाई अड्डा श्रीलंका ने अंग्रेजों के नियन्त्रण में ही रहने दिया। (iii) भारत के विरूद्ध अपनी शक्ति में वृद्धि के लिए पाकिस्तान व चीन के साथ मधुर सम्बन्ध बनाना। (iv) जापान के साथ शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए 1951 के सॉफ्रांसिकी

सम्मेलन में हिस्सा लेना। (v) 1954 में एशिया के प्रधानमन्त्रियों के सम्मेलन में साम्यवाद पर नेहरू से कोटलेवाला का मतभेद। (vi) 1955 के बाण्डुंग सम्मेलन में 'सोवियत उपनिवेशवाद' को लेकर भारत से श्रीलंका का विरोधी दृष्टिकोण।[1]

उपर्युक्त विरोधी दृष्टिकोण अपनाने के बावजूद दोनों देशों ने कई अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर समान दृष्टिकोण भी अपनाएं। दोनों राष्ट्रों में निम्न बातों में समानता थी—(i) औपनिवेशिक शक्तियों पर निर्भरता के बाद भी मार्च 1947 के एशियाई देशों के सम्मेलन में भागीदारी से इस क्षेत्र के देशों की एकता में विश्वास किया। (ii) जनवरी 1949 मे नई दिल्ली में इण्डोनेशिया की स्वतन्त्रता के लिए आयोजित सम्मेलन में डच उपनिवेशवाद का खुलकर विरोध व्यक्त किया। (iii) दोनों ही देशों ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता ग्रहण की। कोलाम्बों में सम्पन्न राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में दोनों देशों ने सहयोग के साथ-साथ आपसी आर्थिक हितों की वृद्धि के लिए प्रयत्न किया। (iv) दोनों ही देशों ने गुटनिरपेक्षता की नीति में विश्वास जताया। (v) प्रवासियों की समस्या को सुलझाने के लिए 1954 में नेहरू कोटलेवाला के बीच एक महत्वपूर्ण समझौता सम्पन्न हुआ। (vi) पश्चिमी झुकाव के विपरीत श्रीलंका ने भारतीय विरोध के चलते सीएटो जैसे सैनिक गठबंधन की सदस्यता नहीं स्वीकार की।[2]

अत: आरम्भिक वर्षों में देशों के मध्य संबंध मैत्रीपूर्ण नहीं रहे है परन्तु वैमनस्य पूर्ण भी नहीं रहे है। कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर मतभेद होने के बावजूद दोनों देशों ने कुछ मुद्दों पर एक समान दृष्टिकोण अपनाया। इसका एक कारण संभवत: यह हो सकता है कि श्रीलंका की तात्कालिक सरकार सही जनमत की अभिव्यक्ति नहीं थी, बल्कि आजादी के बाद भी उन्होंने अंग्रेजों के साथ सत्ता में हिस्सेदारी निभायी थी। वह मात्र पाश्चात्य शिक्षित, शहरी उच्च वर्ग के कुछ धनाडेय लोगों की ही सरकार थी जिसे श्रीलंका की करीब 7 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व प्राप्त था।

1956 से लेकर 1976 तक का समय भारत और श्रीलंका के सम्बन्धों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जा सकता है। यह वह समय था जब दोनों देशों के सम्बन्ध अतिमित्रतापूर्ण थे। एस०

---

1. ए० अप्पादोराय व एम० एस० राजन, इंडियाज फॉरेन पालिसी एण्ड रिलेशंज, नई दिल्ली, 1985, पृ० 191-92.
2. प्राण चोपड़ा, "स्कोरिटी सॉवरंटी, एण्ड इंडिया-श्रीलंका रिलेशंज," सतीश कुमार, संपादक, ईयरबुक ऑन इंडियाज फारेन पालिसी, 1987-88, नई दिल्ली 1988 पृ० 107.

डब्ल्यू० आर० डी० भण्डारनायके के कार्यकाल में इस सम्बन्ध के माधुर्यपूर्ण होने के पीछे निम्न कारण उत्तरदायी रहे थे—(i) सत्ता संभालने के बाद नई सरकार ने अंग्रेजों पर श्रीलंका के सैनिक अड्डों तथा नोसेनिक अड्डों को छोड़ने का दबाव डाला। (ii) श्रीलंका ने विदेशनीति में गुटनिरपेक्षता के पक्ष में स्पष्ट रुख जाहिर किया। (iii) विश्व राजनीति के सन्दर्भ में भी, श्रीलंका ने स्वेज समस्या तथा हंगरी की समस्या पर भारत के समान दृष्टिकोण अपनाया। (iv) प्रवासियों की समस्या को भी दोनों ही पक्षों द्वारा सहानुभूति पूर्ण व शीघ्रता से हल करने का प्रयत्न किया गया। अन्तत: दोनों देशों ने 1959 के तिब्बत के सम्बन्ध में एक समान दृष्टिकोण अपनाया।[1]

भण्डारनायके की पत्नी श्रीमती भण्डारनायके के कार्यकाल में दोनों देशों के सम्बन्ध सुधारात्मक रहे और सहयोग की प्रक्रिया जारी रही। इसके बावजूद कि कुछ विषयों पर इनके दृष्टिकोण भिन्न रहे। दोनों देशों के बीच मित्रता व सहयोग की गतिविधियां विकसित होने के निम्न कारण रहे थे—डच द्वारा 1960 में गोवा, दमन, दीव की आजादी के बाद भारत में सम्मिलित किए जाने का श्रीलंका ने समर्थन किया, पंडित जवाहर लाल नेहरू के मृत्योपरान्त 28 मई को श्रीलंका ने सम्मानार्थ सार्वजनिक अवकाश घोषित किया, श्रीलंका ने गुटनिरपेक्ष नीति का स्पष्टत: अनुसरण करना प्रारम्भ किया। यद्यपि एक भिन्नता यह स्पष्ट हुई कि श्रीलंका ने अब विवादास्पद मुद्दों पर निष्पक्षता का दृष्टिकोण अपनाकर विवादित दोनों इकाइयों के साथ मित्रवत सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयास किया। अन्तत: प्रवासियों के विषयों पर 1964 में शास्त्री भण्डारनायके समझौते के माध्यम से इस समस्या के हल के लिए एक महत्वपूर्ण प्रयास किया गया।[2]

उपर्युक्त सहयोगात्मक पहलुओं के साथ-साथ कुछ पहलू ऐसे भी थे जिस पर दोनों देशों के बीच मतभेद व्याप्त था। इनमें सर्वाधिक प्रमुख विवाद 1962 के चीन-भारत विवाद में श्रीलंका की भूमिका को लेकर रहा। श्रीमती भण्डारनायके के काल में श्रीलंका के भारत की अपेक्षा चीन के साथ सम्बन्ध अधिक मधुर रहे। इसलिए 1962 में भारत-चीन विवाद के समय श्रीलंका ने चीन को आक्रामक घोषित नहीं किया तथा उसके द्वारा एक तरफा युद्ध विराम की घोषणा का स्वागत किया।

---

1. ए० अप्पादोराय व एम० एस० राजन, इंडियाज फॉरेन पालिसी एण्ड रिलेशंज, नई दिल्ली, पृ० 191-92.
2. वही, पृ० 193-94

लेकिन इस समस्या का दूसरा पहलू भी है। भारत चीन विवाद के समाधान के लिए श्रीलंका ने कोलम्बों में छः गुटनिरपेक्ष देशों का एक सम्मेलन बुलाया। यद्यपि इस सम्मेलन की सिफारिशें महत्वपूर्ण थी, परन्तु चीन के असहयोगात्मक रवैये के कारण उनको लागू नहीं किया जा सका।[1] इस सन्दर्भ में श्रीलंका की मध्यस्थता की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इसके अलावा दोनों देशों के मध्य कुछ सन्धि और समझौते भी हुए जिससे दोनों के सम्बन्धों में स्थायित्व आया। दोनों देशों ने संयुक्त प्रयास से 1971 में हिन्दमहासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित कराने में संयुक्त राष्ट्र से मिलकर कार्य किया।[2] 1971 में ही श्रीलंका सरकार के अनुरोध पर वहाँ पर सरकार विरोधी गतिविधियों को दबाने हेतु भारत ने सैनिक सहायता भेजी।[3] इसके अलावा 1974 में भारत ने उदारता दिखाते हुए कच्छदीव व टापू श्रीलंका को सौंप दिया।[4] यद्यपि 1971 के भारत-पाक युद्ध में श्रीलंका ने पूर्ण तटस्थता बनाये रखी तथापि दोनों देशों के आपसी सम्बन्धों पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ा। बल्कि इसके विपरीत 1974 की इन्दिरा गांधी भण्डारनायके की संयुक्त घोषणा के माध्यम से दोनों देशों के बीच प्रवासियों की समस्या को सुलझाने का अन्तिम प्रयास किया गया।[5]

1977-87 के वर्षों में जयबर्द्धन तथा प्रेमदास की सरकार के कार्यकाल के दौरान प्रमुख मुद्दा तमिल प्रवासियों की समस्या का रहा और इससे सम्बन्धित घटित घटनाओं ने भारत और श्रीलंका के सम्बन्धों अमित्रतापूर्ण बनाए रखा यहा तक कि इस काल में दोनों देशों के सम्बन्धों ने निम्नतर स्तर को स्पर्श किया। 1981 एवं 1983 के तमिल सिंहली दंगों ने 1958 व 1977 की पुनरावृत्ति ही नहीं की बल्कि उसके घोर निराशावादी रूप का प्रदर्शन किया।[6] 29 मई 1987 को भारत व श्रीलंका के बीच

---

1. वही, पृ० 195-96.
2. देवेन्द्र कौशिक, इंडियन ओशियन : एज ए जोन ऑव पीस नई दिल्ली, 1972.
3. ए० अप्पादोराय व एम० एस० राजन, इंडियाज फॉरन पालिसी एण्ड रिलेशंज, नई दिल्ली, 1985 पृ० 198.
4. एशियन रिकार्डर, 20-26 अगस्त 1974, पृ० 12259.
5. एशियन रिकार्डर, 19-25 फरवरी 1974, पृ० 11863.
6. गुरचरण सिंह, दॉ एथनिक प्रॉबल्स इन श्रीलंका एण्ड इंडियन अटैम्पटस एट मिडियेशन," सतीश कुमार संपादक, ईयर बुक ऑन इंडियाज फारेन पॉलिसी, 1984 85, नई दिल्ली, 1985 पृ० 124.

इस समस्या के समाधान के लिए एतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर हुए।[1] किन्तु श्रीलंका के तत्कालीन प्रधानमंत्री सहित अन्य कई गुटों ने इसके विरुद्ध जताया। परिणामस्वरूप 30 जुलाई 1987 को सलामी गारद के एक सिपाही ने राजीव गाँधी पर जानलेवा हमला बोला। समझौते को लागू करने के लिए समझौते की धाराएं 2.14 एवं 2.16 के तहत 29 जुलाई 1987 को भारत ने अपनी शान्ति सेना श्रीलंका भेजी। प्रेमदास के राष्ट्रपति बनते ही दोनों देशों के मध्य हुए समझौते के अन्तर्गत भारतीय शान्ति सेना अपना कार्य पूर्ण किए बिना ही वापस लौट आई।[2] कालान्तर में भारतीय प्रधानमंत्री की हत्या में भी तमिल उग्रवादियों का हाथ होने के कारण भारत और श्रीलंका के सम्बन्ध और भी वैमनस्यपूर्ण हो गए।

श्रीमती चन्द्रिका कुमार तुंगा द्वारा श्रीलंका में अगस्त 1994 में प्रधानमंत्री एवं नवम्बर 1994 में राष्ट्रपति का पद संभालने के बाद भारत श्रीलंका सम्बन्धों में पुनः मधुरता का संचार हुआ। इस दौरान भारत में नेशनल फ्रंट सरकार की पड़ोसियों के प्रति नीतियों, विशेषकर 'गुजराल सिद्धान्त' के द्वारा दोनों देशों के सम्बन्धों में व्यापक सुधार हुआ। भारत में वाजपेयी सरकार के आने के बाद भी वही नीतियां जारी रही। दिसम्बर, 1998 में श्रीमती कुमार तुंगा की भारतीय यात्रा के दौरान दोनों देशों ने 'मुक्त व्यापार' व्यवस्था को बढ़ाने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जिससे द्विपक्षीय आर्थिक सम्बन्ध मजबूत होगें। दोनों देशों के मध्य सम्पन्न यह समझौता। मार्च 1999 से प्रभावी हो गया। इसके अन्तर्गत भारत अगले 3 वर्षों में व श्रीलंका अगले 8 वर्षों में दोनों देशों के मध्य व्यापारिक वस्तुओं की नकारात्मक सूचियों को समाप्त कर देगें। इस समझौते के अन्तर्गत भारत से आयात होने वाली 900 वस्तुओं को कर मुक्त कर देगें। इसके अतिरिक्त, भारत 400 अन्य वस्तुओं पर 50 प्रतिशत कर रियायत देगा तथा अन्ततः अगले तीन वर्षों में वह पूर्णतया समाप्त कर दी जायेगी। इसरी प्रकार श्रीलंका अन्य 600 वस्तुओं पर 50 प्रतिशत कर रियायत अगले 3 वर्षों में देगा। शेष सभी वस्तुओं पर श्रीलंका पहले

---

1. सतीश कुमार संपादक, ईयर बुक ऑन इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, 1987-88, नई दिल्ली 1988 पृ० 233-37.
2. ऐलेन जे० बुलियन, इंडिया श्रीलंका एण्ड तमिल कराईसिस, 1976-1994 : एन इन्टरनेशनल प्रस्पैक्टिव, लंदन, 1995, एस० डी० मुनि, पेंगज ऑफ प्रोक्सीमिटी, नई दिल्ली, 1993.

3 वर्षों में 35 प्रतिशत, अगले 3 वर्षों बाद 70 प्रतिशत तथा अन्तत: कुल 8 वर्षो बाद कर मुक्त कर देगा। इस प्रकार इस समझौते द्वारा—(i) दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार बढ़ेगा, (ii) श्रीलंका का भारत के विरुद्ध व्यापार घाटे में कमी आयेगी, (iii) दक्षिण मुक्त व्यापार क्षेत्र के विकास में सहायक होगा। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह साबित हुई कि श्रीमती कुमार तुंगा की यात्रा भारत के मई 1998 के पोखरन II परमाणु परीक्षण के बाद हुई जिससे यह स्पष्ट होता है कि श्रीलंका ने भारत की सुरक्षा सम्बन्धित पहल का उचित आकलन किया है।

यद्यपि तमिल समस्या व प्रवासी भारतीयों से सम्बन्धित मुद्दे आज भी प्रभावी है परन्तु भारत द्वारा इन मामलों को श्रीलंका सरकार से वार्ता द्वारा हल करने, सहानुभूतिपूर्ण रवैया बरतने तथा आर्थिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के प्रयास के कारण दोनों देशों के मध्य मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के विकास की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

भारत और श्रीलंका के बीच कुछ समस्याएं है जैसे—कच्छदीप टापू, तस्करी एवं व्यापार घाटे एवं तमिल प्रवासियों की समस्या। तमिल प्रवासियों की समस्या को छोड़कर अन्य तीन समस्याएं बिल्कुल सामान्य स्तर की है जिनका समाधान या तो हो गया है या संभव है। परन्तु तमिल प्रवासियों जैसी जटिल समस्या का समाधान करने के लिये दोनों देशों को ईमानदारी के साथ-साथ व्यापक स्तर पर मुद्दों को समझने की आवश्यकता है।

1. कच्छद्वीप टापू की समस्या— कच्छद्वीप टापू श्रीलंकाई भूमि से 10.5 मील की दूरी पर तथा भारतीय भूमि से 12.5 मील की दूरी पर स्थित है। भारत इस टापू पर अपना अधिकार 1880 से राजा दामनाद की जमींदारी के कारण मानता है तो श्रीलंका 20वीं शताब्दी के कुछ अंग्रेजों के समय की भारतीय स्वीकृति के आधार पर उसे अपना भाग मानता है। अत: 1949 से कच्छद्वीप टापू पर प्रभुसत्ता को लेकर दोनों राष्ट्रों के बीच विवाद खड़ा हो गया। अन्तत: 28 जून, 1974 को भारत ने उदारवादी नीति अपनाते हुए इस टापू पर श्रीलंका का अधिकार स्वीकार कर लिया। इस तरह शान्तिपूर्ण ढंग से यह विवाद सुलझाकर दोनों देशों ने दूरदर्शिता एवं परिपक्वता का परिचय दिया।[1]

---

1. एशियन रिकार्डर, 20-26 अगस्त 1974, पृ० 122259.

2. तस्करों की समस्या— दोनों राष्ट्रों की समुद्री सीमा खुले होने से दोनों ही देशों के कुछ अपराधिक तत्व तस्करी करते है। 1950 से 1970 के दशक में श्रीलंका से मूलत: प्रसाधन एवं अन्य विलासकारी वस्तुएं तथा भारत से सोना, चांदी एवं अफीम की तस्करी होती है। 1980 व 1990 के दशकों, में इन दोनों देशों के बीच इन मार्गों का प्रयोग आतंकवादियों द्वारा हथियारों की तस्करी हेतु भी किया जाने लगा है। परन्तु इस समस्या के समाधान के लिए दोनों ही देश समान दृष्टिकोण रखते है। अत: दोनों ही देशों के प्रयत्न से इस समस्या को अल्प अथवा समाप्त किया जा सकता है।

3. व्यापार घाटे की समस्या— दोनों राष्ट्रों के मध्य व्यापार सन्तुलन की समस्या भी व्याप्त रही है, क्योंकि परस्पर घाटा श्रीलंका के पक्ष में रहा है। इसका प्रमुख कारण है कि श्रीलंका के निर्यातक वस्तुओं का 90 प्रतिशत चाय, रबर तथा नारियल पदार्थ है। जबकि भारत स्वयं इन वस्तुओं का प्रमुख उत्पादक रहा है। अत: ये वस्तुएं भारत की आयात पूर्ति नहीं कर सकती। यद्यपि पिछले दशकों में दोनों राष्ट्रों के प्रयत्नों से व्यापार में वृद्धि हुई है, लेकिन भारत का श्रीलंका से आयात अभी भी नगण्य है। 1973-74 के 1072 मिलियन रुपये के कुल व्यापार से बढ़ कर यह 1977-87 में 565.7 मिलियन, तथा 1992-92 में 1131.5 करोड़ रुपये हो गया लेकिन भारत का कुल आयात व निर्यात 1992-93 में भी क्रमश: 62 करोड़ तथा 1069.5 करोड़ रुपये रहा।[1] अत: इससे सम्बन्धित कोई नये कदम नहीं उठाये गये तो व्यापार सन्तुलन की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जायेगी। इस दृष्टि से आशा की किरण क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से इस सन्तुलन को ठीक करना है। अत: 1993 की दक्षेस की पहल पर 'साप्टा' का गठन एक सहायक कदम हो सकता है।

4. तमिल प्रवासियों की समस्या— भारत और श्रीलंका के बीच तमिल प्रवासियों की समस्या सर्वाधिक गंभीर समस्या है जिसने इनके सम्बन्धों को अत्यधिक प्रभावित किया है।

ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन श्रीलंका में चाय व रबर की खेती के लिए अत्यधिक मात्रा में भारतीय तमिलों को मध्य श्रीलंका के कान्डयान पर्वतों में बसाया गया। इनकी संख्या लगभग 10 लाख के करीब थी। कई पीढ़िया गुजर जाने के बाद भी इन्हें वहाँ "भारतीय तमिल" कहा जाता है।

---

1. भारत सरकार, विदेश मन्त्रालय वार्षिक रिपोर्ट, 1994-95 नई दिल्ली 1995 पृ० 7.

स्वतन्त्रता से पहले तक इनमें और स्थानीय सिंहलियों में कोई अन्तर नहीं था। दोनों को एक समान राजनैतिक व असैनिक अधिकार प्राप्त थे। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद श्रीलंका में इन्हें मताधिकार से वंचित कर दिया गया। इसके अलावा 'नागरिकता' के लिए उन्हें यह प्रमाणित करना होगा कि उनके माता-पिता या स्वयं वो श्रीलंका में जन्में है तथा 1993 से लगातार श्रीलंका में निवास कर रहे हैं। श्रीलंगा द्वारा इस प्रकार के कदम उठाने से इन लोगों की संख्या गिरकर 20 प्रतिशत तक रह गई है तथा लाखों की संख्या में लोग 'राज्य विहीन' स्थिति में पहुँच गए है।

श्रीलंका द्वारा इस प्रकार के कदम उठाने के पीछे संभवत: चार प्रमुख कारण उत्तरदायी थे। प्रथम, बढ़ती जनसंख्या पर आर्थिक दबाव के कारण वहां के स्थानीय लोग यह मानते थे कि इनके चले जाने पर रोजगार के अवसर अधिक उपलब्ध होंगे। द्वितीय, प्रवासी भारतीयों द्वारा अपनी कमाई का अधिकतर भाग भारत भेज देने के कारण उनके आर्थिक विनिमय पर दुष्प्रभाव पड़ता था। तृतीय, तमिल प्रवासी लम्बे समय तक वहां रहने पर भी वहां से नहीं जुड़ सके। चतुर्थ राजनीतिक कारणों से भी उन्हें मताधिकार से वंचित करना अनिवार्य था। कारण कुछ भी हो परन्तु इसका प्रभाव भारत के दक्षित प्रान्तों की राजनैतिक व्यवस्था पर सीधे पड़ता है।

भारत द्वारा इस समस्या को चार चरणों में विभिन्न दृष्टिकोण द्वारा सुलझाने का प्रयत्न किया गया है।

(i) 1947 से 1950 तक जवाहर लाल नेहरू ने इन्हें प्रवासी भारतीय के संदर्भ में देखते हुए तमिलों की भारी संख्या में भारत वापसी पर कट्टर रुख अपनाया। उनका मत था कि तमिल अब श्रीलंका के ही निवासी रहेंगे।[1]

(ii) 1950 से 1962 तक इस सन्दर्भ में नेहरु ने द्विपक्षीय आधार पर समझौता करते हुए उन्हें भारत की नागरिकता प्रदान की। इस तरह नेहरू की नीति एक ओर भारतीय तमिलों की रक्षा करना रहा है तो दूसरी ओर द्विपक्षीय सम्बन्धों में गिरावट नहीं आने देना रही है।[2]

---

1. पी. शहदेवन "इंडिया एंड श्रीलंका", ललित मानसिंह एवं अन्य संपादक, इंडियन फारेन पॉलिसी : एजेण्डा फॉर दॉ टृवंटीवन सेंचुरी, नई दिल्ली, 1998 पृ. 182।

2. वहीं।

इस समझौते के तहत यह व्यवस्था थी कि जो भारतीय नागरिकता चाहते हैं उन्हें वह सुविधा दी जायेगी, जो वहां नौकरी में हैं उन्हें 55 वर्ष की आयु तक रहने दिया जाय,[1] जो श्रीलंका में रहने के इच्छुक हों उन्हें वहां की नागरिकता प्रदान की जाए। परन्तु इस समझौते को श्रीलंका द्वारा ईमानदारी से लागू न करने का परिणाम यह हुआ कि अधिकांश संख्या में प्रवासी तमिल 'राज्यविहीन' होकर रह गए।

(iii) 1964 से 1981 तक लाल बहादुर शास्त्री व इन्दिरा गांधी ने राज्य विहीन तमिलों की समस्या के समाधान हेतु श्रीलंका की शर्तों पर समझौते किए।[2] इस समझौते के अन्तर्गत निम्नलिखित आधार पर समाधान किये गये—(i) अनुमानतः श्रीलंका में ऐसे व्यक्तियों की संख्या 9,75,000 थी। इसमें से 5,25,000 व इनकी प्राकृतिक वृद्धि को भारत की तथा 3,00,000 व इनकी प्राकृतिक वृद्धि को श्रीलंका की नागरिकता प्रदत्त की जायेगी। (ii) यह कार्य 15 वर्षों में पूरा करना होगा। (iii) श्रीलंका में बसे भारतीय 4000 रुपये तक की पूंजी भारत भेज सकते हैं।[3]

अतः इस समझौते के बाद मात्र 1,50,000 लोगों के बारे में फैसला होना शेष रह गया था। श्रीमती भण्डारनायके की भारतीय यात्रा के दौरान जनवरी, 1974 की एक संयुक्त विज्ञप्ति द्वारा इसे भी सुलझा लिया गया। इसके आधार पर 75,000-75,000 व्यक्तियों को दोनों देशों की नागरिकता प्रदान करने पर सहमति हो गई।[4] परन्तु इस समझौते के बावजूद भी प्रत्यावर्तन का कार्य उतनी शीघ्रता से व उस मात्रा में नहीं हो रहा जितना इन समझौते में प्रस्तावित किया गया था। इसके साथ-साथ समय-समय पर हुए दंगों व सरकार के कट्टरपन व राजनैतिक लाभ की नीतियों के कारण 1980 के दशकों में इस समस्या ने अत्यन्त गंभीर रूप धारण कर लिया।

(iv) 1981 में इंदिरा गांधी ने नेहरू के दृष्टिकोण को अपनाते हुए किसी भी तमिल को भारतीय नागरिकता देने से इन्कार कर दिया। शास्त्री-भंडारनायके समझौता 1981 में समाप्त हो गया तथा अब

---

1. कीसिगंज कन्टमप्रेरी आर्काईवज, 27 फरवरी-6 मार्च, 1954 पृ. 1344।
2. पी. शहदेवन, "इंडिया एंड श्रीलंका", ललित मानसिंह एवं अन्य, संपादक, इंडियन फॅरेन पॉलिसी : एजेण्डा फॉर दॉ टूवंटीवन सेंचुरी, नई दिल्ली 1998 पृ. 183।
3. ए. अप्पादोराय व एम. एस. राजन, इंडियाज फॉरेन पालिसी एण्ड रिलेशंस नई दिल्ली, 1985, पृ. 201।
4. वी. पी. दत्त इंडियाज फॉरेन पालिसी नई दिल्ली, 1987, पृ. 317।

भरतीय जिम्मेदारी 5.06 लाख तमिलों को वापिस लाने व नागरिकता देने की रह गई जिन्होंने ऐसी नागरिकता के लिए आवेदन किया था शेष अन्य राज्य विहीन लोगों के नागरिकता प्रदान करना श्रीलंका का कार्य रह गया।[1] 1986 में एक त्रिपक्षीय (भारत, श्रीलंका एवं लंका वर्कर्ज कांग्रेस) समझौते के आधार पर श्रीलंका ने 94,000 नागरिकों को नागरिकता प्रदत्त करने में सहमति दी। जयवर्द्धने सरकार द्वारा पास एक नागरिक कानून के अन्तर्गत यह कहा गया कि भारत (5.06 लाख) एवं श्रीलंका (4.69 लाख) द्वारा नागरिकता प्रदान करने के बाद सभी 'राज्य विहीन' व्यक्तियों को श्रीलंका नागरिकता प्रदान करेगा। 1988 के नागरिकता कानून के अन्तर्गत उन सभी को श्रीलंका की नागरिकता प्रदासन की गई। इस तरह इस जटिल समस्या का समाधान हुआ।

5. पृथक तमिल राज्य की मांग—श्रीलंका में बढ़ते जातीय दंगों एवं बदलते राजनैतिक स्वरूप के अन्तर्गत श्रीलंका में रह रहे तमिलों ने अपने लिए एक अलग राज्य बनाने की मांग करना प्रारम्भ कर दिया। जयवर्द्धने के सत्ता में आते ही तमिलों में असुरक्षा, अविश्वास और आतंक की भावना बढ़ गई। दूसरी ओर 1977 के संसदीय चुनावों में 'तमिल यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट' 18 सीटें जीतकर मुख्य विरोधी दल के रूप में उभर आया। लेकिन जयवर्द्धने की यूनाइटेड नेशनल पार्टी को भी अप्रत्याशित सीटें (140/168) प्राप्त हुई थी जिससे संसद में इसका निरंकुश प्रभुत्व स्थापित था।[2] इस वातावरण में 'तमिल यूनाइटेड लिरेशन फ्रन्ट की मांगों को स्वीकार करने के स्थान पर तमिलों के विरुद्ध हिंसा भड़क उठी तथा दंगों में सरकार का नजरियां भी इनके विरुद्ध रहा। परिणामस्वरूप तमिलों के खिलाफ भयंकर दंगों की शुरुआत हो गई। इन दंगों से भयभीत व चिन्तित होकर तमिलों में अनेक उग्रवादी संगठनों का जन्म हुआ—'लिबरेशन टाइगर ऑव तमिल ईलम' (एल.टी.टी.ई.) 'पीपुल्स लिबरेशन आरगेनाइजेशन फॉर तमिल ऐलम' (पी. एल.ओ.टी.), ईलम पीपुल्सजा रिवोलुशनरी लिबरेशन फ्रन्ट (ई.पी.आर.एल.एफ.) आदि।[3]

---

1. पी. शहदेवन, इंडिया एंड ओवरसीज इंडियन : दों केस ऑव श्रीलंका, नई दिल्ली, 1995, पृ. 209-210।
2. गुरुचरण सिंह, 'दों एथनिक प्रॉबल्म इन श्रीलंका एण्ड इंडियन अटेम्पट्स एट मिडियेशन', सतीश कुमार संपादक, ईयर बुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी 1984-85, नई दिल्ली, 1985 पृ. 123।
3. वही पृ. 124।

एल.टी.टी.ई. संगठन 1982 से ही उत्तर जाफना के प्रायद्वीप में स्वायत्तता एवं स्वशासन हेतु हिंसात्मक दंगों में उलझा हुआ है। 1983 के दंगों के बाद से लगभग 1,50,000 तमिल भारतीय तमिलनाडु राज्य में आ गए। परिणामत: एक ओर जहां तमिलनाडु की राजनीति ने भारतीय सरकार को प्रभावित किया वहीं दूसरी ओर श्रीलंका सरकार ने भारत की ओर शंका दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया। इस सन्दर्भ में भारत को निम्न समस्याओं पर विचार करना था—(i) भारत सरकार को दक्षिण भद्मरत की राजनीति को स्थिरता प्रदान करना था। (ii) श्रीलंकाई घटनाओं का तमिलनाडु की राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव को अल्प करना। (iii) अलगाववादी शक्तियो के समर्थन में सावधानी बरतना, क्योंकि इससे भारत के आन्तरिक अलगाववादी तत्वों को समर्थन मिल सकता है। (iv) वाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप को अवरुद्ध करना। फलस्वरूप भारत ने 1983 के बाद इस सन्दर्भ में सक्रिय नीति अपनाया। परन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई।[1]

1987 में श्रींका सरकार ने तमिल विद्रोहियों को समाप्त करने के लिए जनवरी में जाफना की आर्थिक नाकेबंदी कर ली तथा मई में सेना द्वारा चौतरफा आक्रमण करवा दिया। भारत द्वारा इस कार्य को मानवीय समस्या मानकर 1 जून, 1987 को रेड क्रास के झंडे तले सहायता वस्तुएं भेजी गई श्रीलंका सरकार ने इस कार्य का विरोध किया और दोनों देशों के मध्य कटुता बढ़ गई। लेकिन काफी वाद-विवाद के बाद 29 जुलाई, 1987 को राजीव-जयवर्द्धने समझौता हुआ जिसकी मुख्य शर्ते निम्न प्रकार से थी—

(i) उत्तर व पूर्वी प्रान्तों के विलय से सम्बन्धित जनमत 31 दिसम्बर, 1987 तक सम्पन्न कराना होगा।

(ii) एकीकृत उत्तर-पूर्वी प्रान्त के चुनाव दिसम्बर तक होने आवश्यक है जिसमें भारत से पर्यवेक्षक को आमन्त्रित किया जायेगा।

(iii) उत्तर-पूर्वी प्रान्त की परिषद के चुनावों के बाद एक गवर्नर, मन्त्रिपरिषद विधान परिषद का गठन किया जायेगा।

---

1. रमेश ठाकुर दॉ पॉलिटिक्स एण्ड ईकोनोमिक्स ऑव इंडियाज फॉरेन पालिसी, नई दिल्ली, 1994, पृ. 185।

(iv) इस समझौते को कार्यान्वित करने के लिए भारत वचनबद्ध है तथा वह किसी भी ऐसी गतिविधियों में शामिल नहीं होगा जिससे यह समस्या बढ़ती हो।

(v) आवश्यकता पड़ने पर, इस समस्या के समाधान के लिए भारत सैनिक प्रशिक्षण व हथियारों की आपूर्ति करायेगा।

(vi) श्रीलंका सरकार विद्रोहियों को राजनैतिक माफी प्रदान कर देगा।

(vii) दूसरे देशों की गुप्तचर एजेंसियों की गतिविधियों पर रोक लगाने हेतु दोनों देश एक संयुक्त मशीनरी का गठन करेंगे।[1]

उपर्युक्त समझौते के अन्तर्गत भारत ने 1,50,000 सैनिकों की एक शान्ति सेना श्रीलंका भेजी। श्रीलंका के दोनो पक्षों ने शान्ति सेना के इस कार्य को अनुचित ठहराया। कई तमिल उग्रवादी गुटों ने भी इसका विरोध किया। शान्ति सेना द्वारा सफलता न मिलने के पीछे चार प्रमुख कारण विद्यमान थे—प्रथम, लिट्टे ने समझौते की शर्तों को पूर्णरूप से अस्वीकार किया था। द्वितीय, श्रीलंका सरकार द्वारा गृह, रक्षा तथा अर्द्धसैनिक बलों की वापसी में देरी करना। तृतीय उत्तरी एवं पूर्वी प्रान्तों में भी श्रीलंका के सैनिक अड्डों का जमाव होना। अन्ततः विभिन्न विद्रोही गुटों के मध्य आपसी शंकाओं का शामिल होना।[2]

1988 में प्रेमदास के राष्ट्रपति बनने के बाद उसने शान्ति सेना की वापसी की अपील की और इधर भारत में भी वी. पी. सिंह सरकार ने पड़ोसी देशों के साथ अपने नर्म रवैये के अधीन इस बात पर सहमति प्रकट की तथा 1989 के समझौते के तहत मार्च 1990 तक शान्ति सेना की आखिरी टुकड़ी को भी वापिस बुला लिया गया।[3]

शान्ति सेना का भेजना भारत के लिए भयंकर भूल साबित हुई। भारत ने एक ओर श्रीलंका सरकार व दूसरी ओर विद्रोही संगठनों को नाराज कर लिया। इसके अलावा भारतीय सैनिक मारे

1. फॉरेन अफेयर्स रिकार्ड, जुलाई 1987, पृ. 252-257।

2. ए. एम. वोहरा, 'इंडियन पीस किपींग इन श्रीलंका; सतीश कुमार संपादक, ईयर बुक ऑन इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, 1989, नई दिल्ली, 1990, पृ. 94।

3. रमेश बहादुर, दॉ पॉलिटिक्स एण्ड ईकोनोमिक्स ऑव इंडियाज फॉरेन पालिसी, नई दिल्ली, 1994 पृ. 191.।

गए। अगस्त, 1990 में 'शान्ति सेना' की व्यापक आलोचना के मद्देनजर श्रीलंका में तैनात 54वीं पैदल डिवीजन के कमाण्डर लेफ्टिनेंट जनरल एस. सी. सरदेशपांडे ने अपना कमीशन रैंक तथा युद्ध पदक लौटाने का निर्णय लिया।[1] भारतीय सेना की विद्रोहियों के साथ लड़ने वाली शक्ति के सन्दर्भ में छवि को भी काफी क्षति हुई।[2] परिणामस्वरूप दोनों देशों के सम्बन्धों में अत्यधिक तनाव आ गया।

1990 के दशक में दोनों देशों के सम्बन्ध मित्रवत तो नहीं रहे परन्तु कुछ कारणवश सामान्य अवश्य हो गए। प्रथम, शान्ति सेना के वापस आने से सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ। द्वितीय, राजीव गांधी की 1991 में तमिल विद्रोहियों द्वारा हत्या करने से भारत में उनके प्रति समर्थन एवं सहानुभूति कमी आ गई। तृतीय श्रीलंका में 1994 में चन्द्रिका कुमारतुंगे की सरकार आ जाने से दोनों देशों के सम्बन्धों में कुछ सुधार आया। चतुर्थ, भारत में भी 1996 में संयुक्त मोर्चे की सरकार द्वारा अपनाई गई पड़ोसी राज्यों की नीति के तहत भी इनके सम्बन्धों में कुछ सुधार आया। वर्तमान में काफी संख्या में तमिल शरणार्थी अभी भी भारत में निवास कर रहे हैं।[3] इनकी वापसी का प्रश्न तथा तमिल प्रवासियों के साथ श्रीलंका सरकार के सम्बन्ध अभी मतभेद के मुद्दें बने हुए हैं। लेकिन बदले हुए सद्भाव के वातावरण में दोनों राष्ट्रों द्वारा वार्ता के माध्यम से इन मुद्दों को हल करना संभव है। इसके अलावा, दक्षेस द्वारा बढ़ते क्षेत्रीय सहयोगी तथा अन्तर्राष्ट्रीय शीतयुद्ध का अन्त इस प्रक्रिया में उपयोगी भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं।

भारत-नेपाल सम्बन्ध

भारत और नेपाल के मध्य गम्भीर ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक समानताएं विद्यमान हैं। दोनों देशों के लोगों के बीच सममूल्य इस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हुए है कि एक देश में आए परिवर्तन से दूसरा देश प्रभावित न हो, यह संभव नहीं है। इसके अलावा दोनों देशों के मध्य 1700 किलोमीटर की खुली सीमा आपसी सामरिक महत्व का प्रतीक है।[4] नेपाल की

---

1. रमेश ठाकुर, दॉ पालिटिक्स एण्ड ईकोनोमिक ऑव इंडियाज फॉरेन पालिसी, नई दिल्ली, 1994 पृ. 191।
2. ए० एम० वोहरा, "इंडियन पीस किपींग इन श्रीलंका", सतीश कुमार संपादक ईयरबुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, 1989, नई दिल्ली, 1990, पाद टिप्पड़ी संख्या 26 पृ० 94.
3. ठाकुर, पाद टिप्पड़ी संख्या 24, पृ० १९२-193.
4. एस० डी० मुनि, "इंडिया एंड नेपाल: टूआर्डज दॉ नेक्सर सैंचुरी, ' ललितमान सिंह एवं अन्य, संपादक, इंडियन फॉरेन पॉलिसी : एजेन्डा फॉर दॉ टूवरटी फस्ट सैंचुरी, नई दिल्ली, 1998 पृ० 142.

भौगोलिक स्थिति जहां एक ओर इसे भारत के लिए महत्वपूर्ण स्थिति वाला देश बना देता है, वहीं दूसरी ओर नेपाल का भू-बद्ध राष्ट्र होना इसे काफी हद तक भारत पर निर्भर बना देता है। चीन व भारत के मध्य स्थिति होने से यह अवरोधक राष्ट्र की भूमिका निभाता है। अत: दोनों ही एक-दूसरे के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।[1]

भारत-नेपाल सम्बन्धों का प्रारम्भ सुखद एवं मैत्रीपूर्ण ढंग से हुआ है। दोनं देशों के मध्य इस प्रकार के सम्बन्धों के विकास के लिए कई कारण उत्तरदायी रहे हैं। प्रथम, 1947 में नई मित्रता की संधि होने तक भारत ने नेपाल के साथ 'यथा स्थिति' का समझौता कर लिया। इस समझौते के अन्तर्गत दोनों देशों ने यह सहमति व्यक्त की कि नये समझौते के होने तक वे दोनों 1923 की अंग्रेजों व नेपाल की सरकार के बीच हुई संधि का पालन करेंगे। द्वितीय, दोनों देशों के बीच भारतीय सेना में गोरखा जाति के लोगों की भर्ती करने सम्बन्धी समझौता हुआ। इस 'त्रिपक्षीय- समझौते' (भारत, नेपाल, इंग्लैण्ड) के अन्तर्गत 9 नवम्बर, 1947 को यह सहमति हुई कि अंग्रेजों के समय से चली आ रही 15 मई, 1815 की परम्परा के अनुसार भारत सरकार 12 गोरखा बटालियनों की स्थापना करेगी।[2] बाद में 1948 में इन बटालियनों की संख्या 23 तथा 1962 के बाद इनकी संख्या बढ़ाकर 39 तक कर दी गई। एक अनुमान के अनुसार वर्तमान में लगभग 37,000 से 45,000 के मध्य गोरखा भारतीय सेना में कार्यरत है।[3] तृतीय, 1947 में नेपाली प्रधानमंत्री की मांग पर भारत ने एक वरिष्ठ भारतीय राजनीतिज्ञ श्री प्रकाश को नेपाल का संविधान बनाने के लिए वहां भेजा (यद्यपि यह संविधान निरंकुश राजशाही के विरुद्ध होने के कारण लागू नहीं हो सका)। चतुर्थ, जुलाई, 1950 में भारत-नेपाल के बीच 'शान्ति व मित्रता' की संधि पर हस्ताक्षर किए गए। पंचम, शान्ति व सहयोग की संधि के बाद नेपाल की उत्तरी सीमा पर भारत ने सैनिक चौकियां स्थापित की ताकि तिब्बत व भूटान की ओर के दर्रों से नेपाल की सुरक्षा व्यवस्थित की जा सके।[4] छठा, नवम्बर 1950 में भारत ने

---

1. अनुरुद्ध गुप्ता, 'नेपाल' सतीश कुमार संपादक, ईयरबुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, 1987-88, नई दिल्ली, 1988, पृ० 181-196.
2. संगीता थपलियाल," नेपाल इन इंडियाज स्कोरिटी पेरामीटरज," स्ट्रेटेजिक ऐनेलिसिस, वाल्यूम 18, अक 9, दिसम्बर 1995, पृ० 1195.
3. एस० डी० मुनि, इंडिया-नेपाल : ए चेंजिंग रिलेशनशिप, नई दिल्ली, 1992 पृ० 40.
4. एस० डी० मुनि, "इंडियाज मुचुअल स्कोरिटी अरेन्जमैंटस विद् नेपाल," ईड़सा जनरल, वाल्यूम 4, अंक 1, जुलाई 1971, पृ० 30.

नेपाल में राणाशाही का अन्त करने में भी सक्रिय भूमिका अदा की। सातवां, भारत ने समय-समय पर नेपाल को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता दिलाने का भी प्रयास किया तथा अन्तत: 1955 में नेपाल को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में सम्मिलित कर लिया गया।

उपर्युक्त कारणों से तीन बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम, भारत नेपाल को अपने सुरक्षा दायरे का हिस्सा मानता था। इसलिए भारत की चिन्ता तथा आन्तरिक प्रजातन्त्र के विषय में उसकी उत्सुकता को समझा जा सकता है। दूसरा, भारत व नेपाल के बीच में यह कार्यकाल आपसी सहयोग व मित्रता का युग था। इसलिए भारत ने 37 करोंड़ की लागत से कोसी नदीं पर बाँध बनाया जिससे नेपाल को मुक्त बिजली व सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध हुई। भारत ने नेपाल की सेना के प्रशिक्षण के लिए कुछ तकनीकी विशेषज्ञों को भी नेपाल भेजा। अत: निष्कर्ष रूप में यह सकते हैं कि 1947-55 तक दोनों देशों के सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठता पूर्ण थे।

1956 से लेकर 1962 तक के समय में भारत-नेपाल के सम्बन्धों का परिवर्तित रूप सामने आया। इस काल में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन नेपाल का चीन की ओर झुकाव था। भारत द्वारा अपनी विभिन्न आर्थिक व सांस्कृतिक नीतियों द्वारा इसे कम करने का प्रयास किया गया परन्तु असफल रहा। इस परिवर्तित स्थिति के लिए संभवत: दोनों ही देशों की तात्कालिक स्थिति जिम्मेदार थी। भारत का उत्तरदायित्व इस कारण था कि प्रारम्भिक समय की कुछ नीतियां नेपाल पर अधिक प्रभुत्व स्पष्ट करने वाली थी। इसके साथ ही साथ 1954 की भारत-चीन व्यापार संधि, जिसके अन्तर्गत तिब्बत पर चीन का आधिपत्य स्वीकार कर लिया गया था, नेपाल को एक असमंजस की स्थिति में डाल दिया और नेपाल का चीन की तरफ झुकाव स्पष्ट हो गया। अक्टूबर, 1961 को चीन व नेपाल के मध्य सीमा सम्बन्धी समझौता हुआ। इस सन्दर्भ में नेपाल ने भारत से को सलाह नहीं की जबकि इस प्रकार की संधि के सन्दर्भ में बर्मा ने भारत से सलाह की थी।[1] 16 अक्टूबर, 1961 को नेपाल-चीन समझौते के आधार पर चीन ने नेपाल को ल्हासा से काठमाण्डू तक सड़क निर्माण करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की।[2] अत: इस प्रकार के समझौतों से भारत को अपनी सुरक्षा के लिए

---

1. ए० अप्पादोराय व एम० एस० राजन, इंडियाज फॉरेन पालिसी एण्ड रिलेशंज नई दिल्ली, 1985, पृ० 166.
2. ए० अप्पादोराय व एम० एस० राजन, इंडियाज फॉरेन पालिसी एण्ड रिलेशंज, नई दिल्ली, 1985, पृ० 166

चीन-नेपाल के इन बढ़ते सम्बन्धों से सशंकित होना स्वाभाविक था। भारत को तब और आघात पहुँचा जब राजा महेन्द्र ने वी० पी० कोइराला की चुनी हुई सरकार को दिसम्बर, 1960 में बर्खास्त कर दिया।[1] भारत के लिए सर्वाधिक कष्टपूर्ण स्थिति तब थी जब दिसम्बर, 1961 में राजा महेन्द्र की चीन यात्रा पर जाने से पहले प्रकाशित पुस्तिका में नेपाल ने चीन को सर्वाधिक उदार एवं स्वार्थविहीन सहायता देने वाला देश बताया। इतना ही नहीं भारत-चीन युद्ध के दौरान नेपाल बिल्कुल तटस्थ ना रहा तथा किसी भी तरह से चीन की निन्दा नहीं की।[2] अत: इस समय जहां एक ओर नेपाल ने चीन से घनिष्ठता का परिचय दिखाया वहीं भारत ने नेपाल के साथ सहजता से कार्य लेते हुए भविष्यकालीन सम्बन्ध अच्छे बनाने का प्रयास किया।

1963 से लेकर 1971 तक के समय में भारत ने नेपाल के सम्बन्ध में अधिक संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाया।[3] उसकी आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्यापक सहायता करने का प्रयास किया। परिणामत: दोनों देशों के राजनेताओं ने एक-दूसरे के देशों की यात्राएं भी की। दोनों देशों के सम्बन्धों के इस नये दृष्टिकोण के अन्तर्गत दूसरा महत्वपूर्ण पहलू था आर्थिक, सांस्कृतिक एंव सामाजिक सम्बन्धों का विकास। लेकिन आर्थिक सम्बन्धों में अब पूर्व की तरह सहायता की बजाय अधिक सहयोग व भागीदारी पर बल दिया गया ताकि नेपाल भारत के साथ बराबरी के स्तर पर सम्बन्ध स्थापित कर सके। 1964 में भारत ने 9 करोंड़ रुपये की लागत से सुगौली से ओश्वरा घाटी के मध्य 128 मील लम्बी सड़क निर्माण का निर्णय लिया। एक अन्य सड़क काठमाण्डू से रक्सौल तक निर्मित करने पर भी भारत ने स्वीकृति दी। इसके अलावा भारत ने कोसी योजना को अपने व्यय पर पूर्ण किया।[4]

इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत भारत ने नेपाल द्वारा किसी महत्वपूर्ण विषय पर मतभेद रखने पर भी अधिक आपत्ति नहीं की। उदाहरण स्वरूप, 1965 के भारत-पाक युद्ध के दौरान नेपाल का रुख

---

1. वही,
2. वही, पृ० 167
3. एल० एस० बराल, 'इंडिया एण्ड नेपाल,' इन्टरनेशनल स्टडीज, वाल्यूम 17 अंक 3 4, जुलाई-दिसम्बर 1978, पृ० 547.
4. एस० डी० मुनि, इंडिया नेपाल : ए चेंजिंग रिलेशनशिप, नई दिल्ली, 1992 पृ० 127 व 186-192.

तटस्थता का रहा। इसके बावजूद भारत ने नेपाल के साथ सहानुभूति व सहयोग का रूख अपनाए रखा। परन्तु इसके बाद भारत ने अवश्य निर्णय ले लिया था कि उसके विवादों में वह नेपाल पर निर्भर नहीं रहेगा।

उपर्युक्त दृष्टिकोण का तात्पर्य यह नहीं था कि नेपाल ने भी कोई नई पहल की तथा दोनों के सम्बन्ध सद्भावनापूर्ण बन गए बल्कि इसके विपरीत 3-4 विषयों को लेकर दोनों के मध्य मतभेद बने रहे। ये मुद्दे थे-1969 में नेपाल के विदेश मंत्री ने अपनी यात्रा के दौरान सुरक्षा क्षेत्र तथा कोसी नहर परियोजना पर कुछ आपत्तियां उठाई। यद्यपि भारत ने इन विषयों को बातचीत से हल करने की पेशकश की तथापि सम्बन्धों में तनाव बना रहा।[1] जून, 1969 में संभवत: चीन के कहेनुसार नेपाल ने नेपाल-चीन सीमा की चौकियों पर स्थित भारतीय सेना के समन्वय समूह व तकनीकी अधिकारियों को वापस बुलाने को कहा।[2] इसी समय भारत-नेपाल मैत्री संधि (1950) पर भी नेपाल ने आपत्तियां करनी प्रारम्भ कर दी। उक्त अवरोधों के बाद भी भारत और नेपाल के सम्बन्ध सद्भावपूर्वक बने रहे। इन विवादों के विषय में एक बात विशेष महत्वपूर्ण है कि चीन भारत के लिए एक सामरिक चुनौती था तथा भारत नहीं चाहता था कि नेपाल का झुकाव उस ओर हो। लेकिन वहीं दूसरी ओर चीन नेपाल की मजबूरी है। इसके अतिरिक्त नेपाल की मध्य राज्य की स्थिति को देखते हुए इन मतभेदों के बाद भी भारत ने नेपाल से अनुकूल सम्बन्ध बनाएं रखे।

1972-79 के समय में भारत-नेपाल के सम्बन्ध सामान्य रहे, परन्तु 'शान्ति के क्षेत्र घोषित' करने को लेकर मतभेद बने रहे।[3] इस दौरान सर्वप्रमुख परिवर्तन दक्षिण एशिया में हुए आन्तरिक व वाह्य हस्तक्षेप को लेकर हुआ। प्रारम्भ में हुए कुछ घटनाक्रम इस प्रकार थे कि उनका सकारात्मक प्रभाव दोनों देशों को निकट लाने में कारगर सिद्ध हुआ। सबसे प्रमुख परिवर्तन भारत-सोवियत संघ मैत्री व सहयोग की संधि (1971) थी। इसके बाद भारत-पाक युद्ध व बांग्लादेश की उत्पत्ति रही।

---

1. एस० डी० मुनि इंडिया-नेपाल : ए चेजिंग रिलेशनशिप, नई दिल्ली, 1992 पृ० 242 43.
2. वही पृ० 243-46.
3. अनुरुद्ध गुप्ता, नेपाल, सतीश कुमार संपादक, ईयरबुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, 1987-88, नई दिल्ली, 1988 पृ० 192 93.

इसी कड़ी में दिसम्बर, 1972 में राजा महेन्द्र के बाद राजा वीरेन्द्र को नेपाल का सम्राट बनना था, जो स्वभाव से उदार प्रवृत्ति के थे। इन घटनाक्रमों से जहां एक ओर भारत की स्थिति इस क्षेत्र में मजबूत हुई वहीं दूसरी ओर नेपाल ने भी अपने विरोधी रुख में परिवर्तन कर भारत के साथ निकटता के सम्बन्ध स्थापित कर लिये।

1974 में भारत व नेपाल के सम्बन्धों को सुधारने के लिए दोनों देशों के बीच सिंचाई, विद्युत, संचार, उद्योग तथा कृषि के क्षेत्रों में सहयोग के समझौतों पर हस्ताक्षर हुए, लेकिन इसी समय 1975 में सिक्किम के भारत में विलय को लेकर नेपाल को चिन्ता हुई। नेपाल की तीव्र प्रतिक्रिया देखते हुए भारत ने आश्वासन दिया कि नेपाल का मामला सिक्किम व भूटान से अलग है। इस पर भी जब नेपाल ने कड़ा रुख अपनाकर रखा तब भारत ने कहा कि 1 जनवरी, 1975 से भारत नेपाल को कोटा प्रणाली के आधार पर तेल व पेट्रोल देने में सक्षम नहीं है। इसके बाद नेपाल ने अनुकूल रवैया अपनाया।

1977 में जनता दल सरकार के अन्तर्गत भारत की विदेश नीति का मुख्य लक्ष्य पड़ोसियों से मधुर सम्बन्ध विकसित करना रहा। इन दो वर्षों (1977-79) में उठाये गये विभिन्न कदमों के कारण दोनों के सम्बन्ध काफी घनिष्ठ बन गये। इस समय भारत की ओर से घोषित एकतरफा रियायतें इस प्रकार थीं—(i) नेपाल के उद्योगों के विकास की जिम्मेदारी भारत ने अपने ऊपर ले ली। (ii) 1978 में दो व्यापार तथा आवागमन की अलग-अलग संधियों पर हस्ताक्षर किए गए। (iii) नेपाल द्वारा विनिर्मित 60 से अधिक वस्तुओं से तटकर हटा लिया गया। (iv) नेपाल को 16 आवश्यक वस्तुएं नियमित देने का वायदा किया। (v) पारगमन संधि के अन्तर्गत नेपाल को बांग्लादेश तक थल मार्ग से सामान ले जाने की छूट दी गई। इससे नेपाल को आम भूवेष्ठित या भू-आबद्ध राज्य की सभी सुविधाएं उपलब्ध कराई गई (vi) सद्भावना विकास हेतु भारत के प्रधानमंत्री तथा नेपाल के प्रधानमंत्री ने एक-दूसरे के देशों की यात्राएं की।

इस समय सबसे विवादास्पद विषय नेपाल को 'शान्ति क्षेत्र' घोषित करना रहा है जो आज भी भारत-नेपाल सम्बन्धों में शंका उत्पन्न करता है। नेपाल के इससे सम्बन्धित मुख्य दो आधार हैं—एक, नेपाल भौगोलिक रूप से एक भूवेष्ठित राज्य है। दूसरा, इसकी अर्थव्यवस्था तीसरी दुनिया के

पिछड़े हुए देशों से भी पिछड़ी हुई है। परन्तु भारत तीन आधारों पर नेपाल के आधारों का विरोध करता है। प्रथम, 'शान्ति क्षेत्र' की घोषणा भारत-नेपाल के विशेष सम्बन्धों को समाप्त कर देगी अत: भारत इस उत्तरी क्षेत्र में उसकी सुरक्षा को प्रभावित करने वाली घोषणा का समर्थन नहीं कर सकता। द्वितीय, भारत व नेपाल के बीच मैत्री व सहयोग की संधि होने के कारण यह निरर्थक है, इसका विशेष महत्व हीं रह जाता। तृतीय, पहले भारत व चीन सम्बन्धों की दृष्टि से भारत का मानना था कि भू-सामरिक व्यवस्था को देखते हुए चीन-नेपाल व भारत नेपाल स्थिति को बराबर नहीं आंका जा सकता।[1] आज भारत-चीन सम्बन्धों के संदर्भ में भी भारत-नेपाल की इस कार्यवाही का औचित्य नहीं मानता। यद्यपि नेपाल ने इस सन्दर्भ में सात-सूत्री स्पष्टीकरण भी दिया है जो निम्न है—

(i) नेपाल किसी राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

(ii) नेपाल उसके द्वारा की गई सभी संधियों का पालन करेगा, जब तक वे मान्य रहती है।

(iii) नेपाल हमेशा शान्ति, गुटनिरपेक्षता तथा शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीतियां अपनाएगा। इसके साथ-साथ वह संसार के समस्त राष्ट्रों विशेषकर पड़ोसी राज्यों के साथ, परस्पर प्रभुसत्ता व स्वतन्त्रता के आधार पर सम्बन्ध विकसित करेगा।

(iv) नेपाल अपने व अन्य राज्यों द्वारा झगड़ों को शान्तिपूर्वक निपटाने पर बल देगा।

(v) नेपाल किसी भी देश की शान्ति व सुरक्षा के खतरे हेतु शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा।

(vi) नेपाल इस घोषणा के समर्थन करने वालों द्वारा या इस घोषणा के समर्थन करने वालों के विरुद्ध किसी प्रकार की विरोधात्मक कार्यवाही की इजाजत नहीं देगा।

(vii) नेपाल किसी भी राज्य के साथ सैन्य गठबन्धन नहीं करेगा तथा न ही सैनिक अड्डे बनाने की इजाजत देगा तथा चाहेगा कि बाकी राष्ट्र भी नेपाल के प्रति इसी प्रकार की नीतियां अपनायें।[2]

---

1. अनुरुद्ध गुप्ता, 'नेपाल' सतीश कुमार, संपादक ईयरबुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, 1987-88 नई दिल्ली, 1988, पृ० 192.

2. वही, पृष्ठ 193-94.

नेपाल की इस घोषणा को संयुक्त राष्ट्र के लगभग 103 राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्राप्त हो चुकी है। इस आधार पर कई विशेषज्ञों के अनुसार भारत को भी इस ओर सोचना चाहिए।[1] अत: दोनों देशों के नेतृत्व के विरोधाभासों को दूर करने की दृष्टि से अब बदले हुए विश्व व्यवस्था में इस बारे में कोई सकारात्मक निर्णय लेना पड़ेगा।

1970 के अन्तिम वर्षों में दो महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं जिनका दक्षिण एशिया तथा भार-नेपाल सम्बन्धों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। प्रथम, महाराजा वीरेन्द्र द्वारा नेपाल में एक राष्ट्रीय जनमत संग्रह कराना, जिससे वहां प्रजातन्त्र की बहाली की प्रक्रिया शुरू हुई जिसका भारत प्राय: पक्षधर रहा है। द्वितीय, 1979 में सोवियत संघ ने अफगानिस्तान में हस्तक्षेप किया। इस मुद्दे पर भारत व नेपाल में पूर्ण एकमत था कि इस समस्या का हल राजनैतिक तरीकों द्वारा निकाला जाए, सैनिक तरीकों से नहीं। दूसरे, दोनों राष्ट्रों का यह मानना था कि इस क्षेत्र की सुरक्षा एवं स्थायित्व हेतु विदेशी सैनिकों को वापस जाना चाहिए तथा राज्य के आन्तरिक मामलों में वाह्य शक्तियों द्वारा हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। इसके अलावा आर्थिक क्षेत्र में भी दोनों देशों ने सहायता प्राप्त करने तथा दोनों राष्ट्रों के लिए लाभकारी योजनाओं को शीघ्र निपटाने हेतु कदम उठाने पर सहमति व्यक्त की। इसके साथ 1983 में 1978 में स्वीकृत व्यापारिक समझौते एवं पारगमन की संधि को अगले 5 वर्षों हेतु पुन: लागू कर दिया गया।[2]

1980 के दशक के अन्तिम वर्षों में दोनों देशों के मध्य मतभेद में वृद्धि होने लगी। पूर्व से ही विवादास्पद 'शान्ति क्षेत्र' की घोषणा के अतिरिक्त चार नये पहलुओं पर मतभेद संघर्ष के स्तर तक पहुंच गये। ये विवादास्पद विषय थे—(1) नेपाल द्वारा हथियारों का आयात, (2) परमिट व्यवस्था लागू करना, (3) नागरिकता की समस्या (4) व्यापार तथा पारगमन संधि पर विवाद।

(i) 1988 में महाराजा वीरेन्द्र ने भारी तादाद में चीन से हथियार खरीदे जो जून, 1988 में काठमांडू-कोदारी रास्ते से होते हुए नेपाल पहुंचे। इन हथियारों की मात्रा 300 से 500 ट्रकों के बीच

---

1 वही पृष्ठ 193.

2. रमेश ठाकुर, दॉ पालिटिक्स एण्ड ईकोनोमिक्स ऑव इंडियाज फॉरन पालिसी, नई दिल्ली, 1994, पृ. 194।

अनुमानित थी जिनमें एन्टी एयरक्राफ्ट गन, मध्यस्तरीय प्रक्षेपास्त्र, ए. के. 49 राइफल आदि सम्मिलित थी। भारत ने नेपाल की इस खरीददारी को 1950 की संधि के विरुद्ध बताया तथा इन हथियारों के भारत के विरुद्ध प्रयोग होने की नियत से नेपाल की आलोचना की।[1]

(ii) इसी समय नेपाल ने वहां पर कार्य कर रहे 1,50,000 भरतीयों पर परमिट व्यवस्था लागू कर दी, जबकि भारत में लगभग 35 लाख नेपाली कार्य करने हेतु स्वतन्त्रता रखते हैं। केवल इतना ही नहीं बल्कि नेपाल के 1988-89 के बजट में उसने भारतीय वस्तुओं पर 55 प्रतिशत कर लगा दिया तथा इसके विपरीत अन्य देशों से आयातित वस्तुओं पर 60 प्रतिशत की रियायतों की घोषणा की। भारत ने इन कदमों का घोर विरोध किया क्योंकि 1950 की शान्ति व मैत्री सन्धि की धारा-7 में दोनों देशों ने अपने यहां एक-दूसरे के नागरिकों को घूमने-फिरने, रहने, निवास, सम्पत्ति, क्रय, नौकरी करने आदि की छूट दी हुई है।[2]

(iii) नेपाल में काफी समय से निवास कर रहे भारतीयों को जिन्होंने अपने नागरिकता प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं किये थे, नागरिकता की समस्या का सामना करना पड़ा। प्रमाण पत्र के अभाव में उन लोगों को जमीन जायदाद बेचने-खरीदने में तथा नौकरियां प्राप्त करने में बड़ी कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा था। जबकि इसके विपरीत भारत में बसे नेपालियों को इस सन्दर्भ में ऐसी किसी तरह की समस्या नहीं थी।[3]

(iv) 23 मार्च, 1989 को भारत और नेपाल के मध्य व्यापार एवं पारगमन की संधि पुनः लागू न किए जाने के कारण रद्द हो गई। परिणामस्वरूप, भारत ने नेपाल सीमा पर आवागमन की 2 चौकियां (रक्सौल एवं जोगनी) को छोड़कर शेष 14 चौकियां बन्द कर दी। अब भारत से नेपाल निर्यात होने वाले प्रत्येक वस्तुओं पर कर लगना था। जिससे वह सामान वहां के बाजारों में और भी

---

1. मनोज जोशी, 'इंडिया एण्ड नेपाल : दॉ ट्रबल्ड आईज', फ्रन्ट लाइन 15-28 अप्रैल, 1989 पृ. 17 तथा शेखर गुप्ता, 'दा बार्डर ब्लोक', इण्डिया टूडे, 30 सितम्बर, 1983, पृ. 74।

2 मनोज जोशी, "इण्डिया एण्ड नेपाल : दॉ ट्रबल्ड आईज", फ्रंट लाइन, 15-28 अप्रैल, 1989, पृष्ठ 74

3. कृष्ण प्रसाद खानल, 'एण्टी इंडिया फिलिंग इन साउथ एशिया : ए केस ऑफ नेपाल' दॉ नेपाली जनरल ऑव पालिटिक्स साइंस, वाल्यून 4 अंक 2, 1982 पृ० 42-72.

महंगा हो जाता। इसके अलावा भारत ने अब नेपाल को जाने वाले कोयला, लोहा, सीमेंट आदि की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों की मांग की। इसके साथ-साथ भारत ने नेपाल को सप्लाई होने वाले कोयला व पेट्रोल के अपने उत्तरदायित्व से भी इन्कार कर दिया। यह दोनों देशों के बीच गम्भीर विवाद का मुद्दा बन गया। इससे नेपाल में जनसाधारण के लिए बहुत अधिक कठिनाइयां पैदा हो गई।[1]

उपर्युक्त मतभेदों के कारण दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण संबंधों पर प्रश्न चिन्ह लग गया लेकिन दिसम्बर, 1989 के चुनाव के बाद भारत में वी० पी० सिंह की जनता दल की सरकार की एवं नेपाल में इधर जी० पी० कोइराला की कांग्रेस सरकार का गठन हुआ। दोनों सरकारों ने आपसी सम्बन्धों को सुधारने के प्रयास किए। नेपाल ने भी चीन कार्ड के प्रयोग में संयम का परिचय दिया।[2] परिणामत: 10 जून, 1990 को वी० पी० सिंह एवं के० पी० भट्टराई के मध्य एक अन्तिम समझौता न होने तक 1 अप्रैल, 1987 की यथास्थिति रखने का समझौता हुआ। कालान्तर में नवम्बर, 1991 में दोनों देशों के बीच 5 वर्षीय व्यापारिक सन्धि तथा 7 वर्षीय पारगमन संधि पर हस्ताक्षर हुए जिन्हें आगे भी पुन: लागू करने का प्रावधान रखा गया।[3]

1994 में नेपाल में साम्यवादी दल के सत्ता में आने से इनके मधुर सम्बन्धों के बारे में कुछ आशंकाएं पैदा हुई परन्तु वे निराधार साबित हुई। इनका प्रमुख कारण था कि साम्यवादी दल का दृष्टिकोण प्राय: भारत के विरुद्ध रहा है, परन्तु अब ऐसां कुछ नहीं हुआ। अपितु फरवरी, 1996 में नेपाल के प्रधानमंत्री दियूबा की भारत यात्रा के दौरान दोनों देशों ने महाकाली नदी के विकास के बारे में समझौता सम्पन्न करके दोनों देशों के सम्बन्धों को एक नया आयाम प्रदान किया। सबसे महत्वपूर्ण समझौता दोनों देशों द्वारा नेपाल से बिजली के व्यापार के सन्दर्भ में निजी उद्यमियों को शामिल करने के बारे में था। क्योंकि नेपाल लगभग 2500 मेगावाट जल विद्युत उत्पन्न करने की क्षमता रखता है वर्तमान में जिसका मात्र दस प्रतिशत ही वह उत्पादन कर रहा है। दोनों

---

1 एशियन रिकार्डर, 25 जून-1 जुलाई 1989, पृ० 20644-45.

2. लोकराज बराल, ''इंडिया-नेपाल रिलेशंज : कन्टीन्यूटी एण्ड चेंज,'' एशियन सर्वे, वाल्यूम 32 अंक 9, सितम्बर 1992, पृ० 815-829.

3. रमेश ठाकुर, दॉ पॉलिटिक्स एण्ड ईकोनोमिक ऑफ इंडियाज फॉरेन पालिसी, नई दिल्ली, 1994 पृ० 195 196.

प्रधानमंत्रियों (इन्द्रकुमार गुजराल-दियूबा) ने पंचेश्वर परियोजना के तैयार करने और महाकाली योजना के तहत स्वीकृत टनकपुर से बिजली व टनकपुर व शारदा बैंरेज से नेपाल को तुरन्त पानी भेजने पर बल दिया। इसके अलावा, नई हवाई सेवाओं, व्यापार, संचार ,पर्यटन आदि के संदर्भ में भी समझौते एवं सहमतियां प्रकट की गई। नेपाल को पूर्व प्राप्त राधिकापुर के अतिरिक्त फुलवारी होकर बांग्लादेश के माध्यम से एक और व्यापारिक मार्ग की सुविधा प्रदान की गई।[1]

उपरोक्त का अर्थ यह नहीं था कि दोनों राष्ट्रों में मतभेद के कोई मुद्दे नहीं थे। जहां भारत ने नेपाल में उग्रवादियों द्वारा शरण प्राप्त करने के बारे में चिन्ता व्यक्त की, वहीं नेपाल ने कालापानी सहित (महाकाली नदी का स्रोत) सीमाओं के आंकलन एवं 1950 की मित्रता संधि के पुनर्मूल्यांकन पर बल दिया। यह ध्यातव्य है कि सीमा आंकलन के बारे में एक संयुक्त कार्यदल 1991 से कार्यरत है तथा जल्दी ही इसके समाधान की संभावना है। उग्रवादी गतिविधियों एवं उनके प्रशिक्षण के सम्बन्ध में एक संयुक्त कार्यदल का गठन गुजराल की नेपाल यात्रा के समय ही कर दिया गया था। इन मतभेदों के बावजूद 'गुजराल सिद्धान्त' के कारण दोनों देशों के बीच तनाव की स्थिति उभरने की संभावनाएं नहीं हैं। अन्ततः यदि भारत नेपाल की सम्प्रभुता व स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में तथा नेपाल भारत की सुरक्षा पहलुओं पर ध्यान दे तो दोनों देशों के मध्य मधुर और मित्रवत सम्बन्धों का विकास निरन्तर बना रहेगा। भारत में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार के आने के बाद भी पड़ोसियों के साथ गुजराल सिद्धान्त के आधार पर सम्बन्धों के विकास से भविष्य में दोनों के बीच और मित्रतापूर्ण सम्बन्धों की आशा की जा सकती है।

भारत-भूटान सम्बन्ध

भारत का अपने सभी पड़ोसी देशों के साथ कोई न कोई विवाद हमेशा विद्यमान रहा है परन्तु भूटान के साथ भारत का सम्बन्ध इसका अपवाद है।[2] भारत-भूटान सम्बन्धों में कभी-कभी कुछ

---

1 संगीता थपलियाल, ''गुजराल विजिट टू नेपाल : बुस्ट टू इन्डो-नेपाल रिलेशंज, ''स्ट्रेटेजिक ऐनेलेसिस, वाल्यूम 20 अंक 5 पृ० 803--805.

2. बी० एस० दास 'भूटान' सतीश कुमार संपादक, ईयरबुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, 1989, नई दिल्ली, 1990 पृ० 191- 198.

महत्वहीन विषयों पर भिन्नता अवश्य देखने को मिलती है, परन्तु गहन मतभेदों एवं संघर्षपूर्ण सम्बन्धों का अभाव रहा है। भारत-भूटान सम्बन्धों का प्रारम्भ 1865 की ब्रिटिश सरकार व भूटान के बीच सम्पन्न सिनचुला सन्धि से माना जा सकता है। इसके बाद 1910 में पुरनवा संधि द्वारा इन दोनों देशों के सम्बन्ध और सुदृढ़ हो गये।[1] स्वतन्त्रता के पश्चात अगस्त, 1949 की संधि द्वारा दोनों राष्ट्रों के बीच 'चिरस्थायी शान्ति और मित्रता' स्थापित करने का आश्वासन दिया गया।[2] परन्तु यहां एक बात अवश्य उल्लेखनीय है कि भूटान को नेपाल या सिक्किम के वर्ग में नहीं रखा जा सकता। कानूनी रूप से इसे प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य के जैसा माना गया सिक्किम की तरह से 'संरक्षण' राज्य की भांति नहीं। अन्य राज्यों की भांति इसे भारतीय संघ का हिस्सा भी नहीं माना गया।[3] परन्तु एक बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि यह प्रदेश भारतीय सुरक्षा की दृष्टि से अवश्य महत्वपूर्ण है। संभवत: इसी बात को ध्यान में रखते हुए दोनों देशों के मध्य इस नई संधि की व्यवस्था की गई। इसलिए इस संधि में प्रावधान रखा गया कि भूटान अपने वैदेशिक मामलों में भारत सरकार से मार्गदर्शन प्राप्त करेगा। इसके अलावा, भूटान केवल भारत की सन्तुष्टि पर ही हथियार मंगा सकता है तथा इस प्रकार के हथियार भारतीय क्षेत्र से ही भूटान आ सकते हैं। अत: सुरक्षा की दृष्टि से भारत और भूटान के सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण थे जो 1949 में चीन में साम्यवादी सरकार के गठन के सन्दर्भ में और महत्वपूर्ण बन गये।

राजनैतिक सम्बन्धों के दृष्टिकोण से भारत और भूटान के सम्बन्ध मधुर रहे हैं। इन सम्बन्धों को अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए जवाहर लाल नेहरू ने सितम्बर, 1958 में भूटान की यात्रा की और यात्रा के ही दौरान वहाँ के संचार विकास तथा आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में रूचि दिखाई। शायद इसी समय चीन द्वारा अपना साम्राज्यवादी व विस्तारवादी अभियान भी जारी था क्योंकि जुलाई, 1958 में चीन ने अपनी पत्रिका 'चाईना पिकटोरियल' में भूटान की कुछ सीमा को अपने क्षेत्र में दिखाया हुआ था।[4] शायद इसी बात को लेकर 28 अगस्त, 1959 को लोकसभा में बोलते हुए नेहरू ने

---

1. ए० अपापादोराय व एम० एस० राजन, इंडियाज फॉरेन पालिसी एण्ड रिलेशंज नई दिल्ली, 1985, पृ० 172
2. फॉरेन पालिसी ऑफ इंडिया : टैक्स्ट ऑफ डाक्यूमैंटस, 1949-1959, नई दिल्ली, 1952 दूसरा संस्करण, पृ० 17
3. ए० अप्पादोराय व एम० एस० राजन, पाद टिप्पणी संख्या 2, पृ० 172.
4. वही, पृ० 173.

कहा कि सिक्किम या भूटान पर किया गया कोई भी आक्रमण भारत पर आक्रमण माना जायेगा। कालान्तर में 1959 में तिब्बत पर चीन द्वारा कब्जा कर लेने पर भूटान का झुकाव भारत की ओर अधिक हो गया।

1960 के दशक में भूटान के घरेलू घटनाओं के कारण, कुछ गौण विषयों पर दोनों देशों के बीच मतभेद उभरने लगे। जैसे—5 अप्रैल, 1964 में वहाँ के प्रधानमंत्री और जी की हत्या में भारतीय सेना के मिले होने की चर्चा होने लगा।[1] बाद में 1965 में राजा वांचुक की हत्या का भी प्रयास हुआ। परन्तु ये सब चीनी षड्यन्त्र के कारण हुआ। बाद में 1967 में महाराजा की भारत यात्रा से सभी बातें स्पष्ट हो गई। अपितु बाद के वर्षो में चीन द्वारा भूटान में घुसपैठ करने के सन्दर्भ में भूटान ने भारत से इस मामले की पैरवी करने को कहा। 1970 में राष्ट्रपति वी० वी० गिरी व विदेश मंत्री दिनेश सिंह द्वारा भूटान यात्रा से इन सम्बन्धों को और मजबूती मिली।

1970 के दशक में भूटान द्वारा वाह्य विश्व में सक्रिय भागीदारी की नीति अपनाने पर भारत ने उसका पूर्ण सहयोग किया। इसी कारण भूटान 1971 में संयुक्त राष्ट्र का तथा 1973 में गुटनिरपेक्ष देशों का सदस्य बना। 1972 में महाराजा वांचुक की मृत्योपरान्त जिगमें सिंगहे वांचुक के राजा बनने से दोनों देशों के सम्बन्धों में अन्तर नहीं पड़ा बल्कि यह सम्बन्ध और मधुरपूर्ण हो गया। 1977 में भूटान की मांग पर भारत ने उसे नई दिल्ली में अपना दूतावास खोलने की सहमति दे दी। 1978 में भूटान नरेश भारतीय यात्रा पर आए। 1985 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी भी भूटान यात्रा पर गए।

मधुर सम्बन्धों की इसी कड़ी में 1993 में प्रधानमंत्री पी० वी० नरसिम्हा राव भूटान यात्रा पर गए। आर्थिक सम्बन्धों के साथ-साथ इस यात्रा ने राजनैतिक सम्बन्धों को और भी सुदृढ़ बनाया। कई आर्थिक योजनाओं की स्वीकृति के साथ-साथ भूटान के शीतयुद्धोत्तर युग में उदारीकरण के अन्तर्गत भारतीय कम्पनियों ने भूटान में निवेश की अपील की। 1996 में 'व्यापक परमाणु परीक्षण संधि पर भारत का पक्ष लेकर भूटान ने भारत के साथ अपने सम्बन्धों को तो सुदृढ़ किया ही साथ-साथ यह भी स्थापित किया कि किस प्रकार दोनों राष्ट्र इस शीतयुद्धोत्तर युग में शान्ति व सुरक्षा की स्थापना के लिए एकमत हैं।

---

1. वही, पृ० 176.

आर्थिक दृष्टिकोण से भारत ने भूटान को प्रारम्भ से ही भारी मदद प्रदान की है। 1949 की संधि द्वारा भारत ने भूटान को वार्षिक रूप से 5 लाख रुपये की सहायता राशि देना शुरू किया। 1959 में भारत में जलगांव (पश्चिमी बंगाल) से पारो व थिम्पू तक सड़क निर्माण के लिए 15 करोंड़ की सहायता दी। कालान्तर में थिम्पू को सड़क मार्ग से असम के साथ जोड़ दिया गया। 1960 से भारत ने पूर्व, 5 लाख के अतिरिक्त अलग 7 लाख रुपये प्रति वर्ष देने का वचन दिया। 5 करोंड़ रुपये की लागत से बनने वाली भूटान व पश्चिमी बंगाल सीमा पर जलढ़ाका पन बिजली परियोजना की स्वीकृति प्रदत्त की।

भूटान की पंचवर्षीय योजनाओं के लिए भी भारत ने उदार रुख अपनाया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के लिए भारत ने 17.22 करोंड़ रुपये का सहयोग दिया।[1] द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लिए भारत ने 20 करोड़ रुपये की राशि देने की घोषणा की। तृतीय पंचवर्षीय योजना के लिए भारत ने 33 करोंड़ रुपये की राशि जुटाने का वायदा किया। प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं हेतु भारत ने सम्पूर्ण योजना राशि प्रदान की। परन्तु तीसरी योजना से इसमें विश्व बैंक तथा अन्य संगठनों की भागीदारी भी सम्मिलित होने लगी क्योंकि अब भूटान संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बन चुका था।[2] परन्तु इसके बावजूद भारत द्वारा भूटान को दी जाने वाली राशि महत्वपूर्ण थी। छठी पंचवर्षीय योजना में भारत ने 3000 मिलियन रुपये का योगदान दिया तो सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह योगदान 6500 मिलियन रुपये का हो गया।[3]

भारत आरम्भ से ही भूटान के विकास एवं आधुनिकीकरण के लिए उदार ऋण व आर्थिक सहायता देता रहा है। वहाँ के संचार, मूलभूत ढांचे, पनबिजली परियोजना, तेल भण्डार आदि के क्षेत्रों में भारत ने भारी मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान की है। इसके साथ-साथ स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, कृषि, खनिज उत्पादन, शक्ति, लघु उद्योगों एवं प्रशासन तक के कार्यों में गहन सहयोग व रुचि दिखाई है। वर्तमान उदारीकरण की प्रक्रिया एवं शीतयुद्धोत्तर युग में भी भारत व भूटान के मध्य

---

1. वही पृ० 179.
2. वही पृ० 180.
3. क्यूनसेल, वाल्यूम 8 अंक 2, 2 जनवरी, 1993 पृ० 1.

सहयोग जारी है। भारत ने अभी डीयांग में पेट्रोल भण्डारण की एक परियोजना के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की है। भारत द्वारा आर्थिक सहायता के आधार पर चलाई जा रही दन्तक कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत ने भूटान में सड़कें बनाने, पारो हवाई अड्डे को माइक्रोवेव के माध्यम से विश्व से जोड़ने, रेडियों स्टेशन स्थापित करने, चुखा परियोजना, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवाओं के लिए महत्वपूर्ण आर्थिक मदद की है।[1] 1993 में अभी दोनों देशों के मध्य नू 2500 मिलियन की लागत से तैयार होने वाले कुरीचु पनबिजली परियोजना पर स्वीकृत हुई है। इसके अतिरिक्त, 'दन्तक योजना' के अन्तर्गत दोनों पक्षों में कुछ राष्ट्रीय राजमार्ग व पुलों को बनाने की स्वीकृति हुई है। इसके साथ भूटान के लिए अत्यन्त हर्ष की बात है कि भारत ने दोनों के बीच उधार राशि की 100 मिलियन से बढ़ाकर 250 मिलियन कर दी है। इस प्रकार दोनों देशों के मध्य आपस में सुदृढ़ आर्थिक सम्बन्ध विद्यमान है। सरकारी अनुदान, सहायता व ऋणों के अतिरिक्त भारत सरकार ने भूटान के निकटवर्ती तथा दूरगामी विकास हेतु पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। समय-समय पर होने वाले द्विपक्षीय आर्थिक समझौतों एवं पंचवर्षीय योजनाओं के लिए धन उपलब्ध कराकर भारत ने भूटान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है।[2]

उपर्युक्त दोनों पहलुओं के अध्ययन से पता चलता है कि राजनैतिक व आर्थिक रूप से भारत व भूटा1 के बीच घनिष्ठ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रहे हैं। भारत ने जहाँ भूटान के विकास व आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वहीं भूटान ने भी सामरिक व सुरक्षा की दृष्टि से भारत के साथ सहयोग की भावना का प्रदर्शन किया है। भारत ने जहाँ एक ओर भूटान को अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त करने में सहायता की है, वहीं दूसरी ओर सभी अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भूटान ने भारत का साथ दिया है। यद्यपि दोनों के सम्बन्धों का मूल आधार आज भी 1949 की मित्रता व सहयोग की संधि ही है। तथापि परिपक्व राजनैतिक सम्बन्धों तथा महत्वपूर्ण आर्थिक सहयोग ने उन्हें मित्रता की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। इन दोनों के तनाव मुक्त सम्बन्धों ने भारत-भूटान सम्बन्धों को बड़े एवं छोटे राज्यों के मध्य सम्बन्धों की एक आदर्श श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है।

---

1. बी० एम० जैन, ''इंडिया एण्ड भूटान : स्क्योरिटी एण्ड स्ट्रेटेजिक डायमैन्सज स्ट्रेटजिक ऐलेलिमिज, वाल्यूम 8, अंक 6 सितम्बर 1995, पृ० 850.

2 बी० एम० जैन, ''इंडिया एण्ड भूटान : स्क्योरिटी एण्ड स्ट्रेटेजिक डायमैन्सज,'' स्ट्रेटजिक ऐनेलिसिज, वाल्यूम 8, अंक 6 सितम्बर 1995 पृ० 850.

दक्षिण एशिया में महाशक्तियां

दक्षिण एशिया में सहयोग की समस्या महाशक्तियों के संघर्ष से भी निर्धारित होती है। महाशक्तियों ने दक्षिण एशिया में निरन्तर दिलचस्पी ली है क्योंकि यह अमेरिका, सोवियत संघ और चीन में अन्तर क्रिया के मार्ग में स्थित हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बादसंयुक्त राज्य अमेरिका ने भी सक्रियता दिखलाई। दक्षिण एशिया में महाशक्तियों की भूमिका और अभिरूचि से दो तथ्य उजागर होते हैं—प्रथम, महाशक्तियों द्वारा अपना आधार बनाने के लिए इस क्षेत्र में शक्ति प्रतिस्पर्द्धा का उभरना, द्वितीय, दक्षिण एशिया के देश स्वयं आपसी प्रतिस्पर्द्धा और राजनीतिक मतभेदों में उलझ गये। दक्षिण एशियाई क्षेत्र में महाशक्तियों के हस्तक्षेप से भारत-पाक संघर्ष, मतभेद और तीन-चार बार भंयकर युद्ध में परिवर्तित हो चुका है। भारत-पाकिस्तान में शस्त्रों की बढ़ती हुई प्रतिस्पर्द्धा महाशक्तियों की दिलचस्पी का स्पष्ट नमूना है।[1]

द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होने के बाद प्रारम्भिक दिनों में किसी भी शक्ति ने दक्षिण एशिया में विशेष रूचि नहीं ली। परन्तु 1949 में चीन में साम्यवादियों द्वारा विजय प्राप्त करने पर अमेरिका ने दक्षिण एशियाई देशों को अपनी साम्यवाद विरोधी मैत्री संधि व्यवस्था में लाने का प्रयास किया। दुर्भाग्यवश 1947 में हुए विभाजन के बाद से ही भारत और पाकिस्तान में सम्बन्धों का रूप तनावपूर्ण रहा है। 1954 में अमेरिका ने दक्षिण एशिया संधि संगठन (सीटो) का संगठन किया। भारत ने गुटनिरपेक्ष नीति पर आचरण करते हुए दक्षिण एशिया संधि संगठन में शामिल होने से इंकार कर दिया। परन्तु पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध समर्थन पाने के एकमात्र उद्देश्य को लेकर इस संगठन में शामिल होने की स्वीकृति दे दी। परिणामस्वरूप अमेरिका द्वारा पाकिस्तान के साथ सैन्य सम्बन्धों को बढ़ावा मिला। 19 मई, 1954 को हुआ 'आपसी सहयोग सम्बन्धित रक्षा समझौता' इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। अमेरिका की पाकिस्तान के सन्दर्भ में नीति भारत और पाकिस्तान के मध्य मतभेद का प्रमुख कारण रही है। अमेरिका की दक्षिण एशिया की नीतियों का आंकलन करने से स्पष्ट होता है कि साम्यवाद अवरोधक नीति में पाकिस्तान की अहम भूमिका रही है। इस सन्दर्भ में

1 सेल्टन कोडिकारा : 'स्ट्रेटजिक फैक्टर्स इन इंटरस्टेट रिलेशंस इन साउथ एशिया, 1984, पृ० 34 35

पाकिस्तान के प्रति सैन्य गठबन्धन एवं सैन्य सहायता ही अमेरिकी नीति का प्रमुख पहलू रहा है। अत: यह कहना अनुचित न होगा कि अमेरिका की युद्धोत्तर युग में दक्षिण एशिया के सन्दर्भ में नीति में भारत व पाकिस्तान की सैन्य समानता सर्वप्रथम स्तम्भ रहा है।[1] 1971 तक अमेरिका पाकिस्तान को भारतीय शक्ति को संतुलित करने वाली शक्ति के रूप में पालता रहा । उसने पाकिस्तान को सोवियत संघ के विरुद्ध सैनिक जासूसी गतिविधियों के लिए बहुत उपयोगी पाया। उदाहरणस्वरूप, सोवियत संघ ने 1990 जिस यू 2 (U_2) जासूसी वायुयान को मार गिराया था।' वह एक पाकिस्तान हवाई अड्डे से उड़ा था। इसी तरह सोवियत चीनी मतभेद बढ़ने पर चीन और अमेरिका को नजदीक लाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। दिसम्बर, 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप से 1988 में अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं की वापसी तक पाकिस्तान अफगानिस्तान में सोवियत विरोधी अफगान छापामारों को अमेरिकी सहायता पहुँचाने का उपयोगी माध्यम बना रहा। इन सेवाओं के बदले पश्चिमी देश पाकिस्तान का कश्मीर के प्रश्न पर समर्थन करते रहे। यद्यपि उन्हें यह ज्ञात था कि पाकिस्तान की शत्रुता न तो सोवियत संघ से है और न ही चीन से है वरन् केवल भारत से है, फिर भी उसे भारी आर्थिक और सैनिक सहायता प्रदान करते रहे।

1971 में बांग्लादेश की स्वतन्त्रता दक्षिण एशिया की राजनीति में एक नवीन मोड़ साबित हुआ। इसने पाकिस्तान को विश्व राजनीति में भारत के समकक्ष खड़े होने के प्रयत्न पर पानी फेर दिया। भारत की दोनों सीमाओं -पूर्वी और पश्चिमी पर पाकिस्तानी सेनाओं की उपस्थिति से उत्पन्न भारत की घेराबन्दी अब अतीत की बात हो गई। 1971 की घटनाओं के बाद से अमेरिका ने यह स्वीकार कर लिया कि भारत ने भी उपमहाद्वीपीय उच्चता और महाशक्ति की स्थिति प्राप्त कर ली है।

1979 में अफगानिस्तान में सोवियत संघ के सैनिक हस्तक्षेप से जहां एक और नवशीत युद्ध का प्रारम्भ हो गया, वहीं दूसरी ओर 30 दिसम्बर, 1979 को अमेरिका ने पाकिस्तान पर शस्त्रास्त्र की आपूर्ति पर लगे प्रतिबन्ध को वापस ले लिया। पाकिस्तान अफगानी विद्रोहियों को शस्त्रों की आपूर्ति का मुख्य माध्यम बन गया। पाकिस्तान के लिए अमेरिकी सैनिक सहायता में वृद्धि हो गयी।

इसके अतिरिक्त अमेरिका ने पाकिस्तान की नाभिकीय महत्वाकांक्षाओं को भी अप्रत्यक्षत: प्रोत्साहन देना प्रारम्भ कर दिया। उसे विदेशी सहायता अधिनियम और सिमिंगटन और ग्लेन संशोधनों से रियायत दे दी गई। विदेशी सहायता अधिनियम के ये संशोधन उन देशों को अमेरिकी सहायता देने पर रोक लगाते हुएँ जिन पर नाभिकीय शस्त्रों की प्राप्ति का प्रयत्न करने का सन्देह होता है।[1] अप्रैल, 1988 में अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं के सन्दर्भ में जेनेवा समझौता हो गया परन्तु पाकिस्तान को अमेरिकी सैनिक सहायता निरन्तर जारी रही।

अमेरिकी विदेश नीति दक्षिण एशिया को एक प्रदेशिक इकाई के रूप में न देखकर प्रत्येक देश को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखती है। अर्थात भारत-पाकिस्तान उपमहाद्वीप के लिए एक नीति, नेपाल के लिए पृथक नीति, श्रीलंका के लिए अलग नीति और बांग्लादेश के लिए पृथक नीति।

कश्मीर के प्रश्न पर अमेरिका ने प्राय: पाकिस्तान के पक्ष का ही कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष समर्थन किया है। भारत के लिए कश्मीर मात्र सीमा का प्रश्न न होकर इसकी प्रभुसत्ता से जुड़ा प्रश्न था। अत: किसी भी विदेशी राष्ट्र से सम्बन्धों में भारत के लिए कश्मीर पर उसकी राय महत्वपूर्ण तत्व थी। पाकिस्तान ने कश्मीर पर अधिकार जताने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर बहुपक्षीय मुद्दा बनाकर इसे सुलझाने का भरसक प्रयत्न किया है लेकिन भारत कश्मीर को एक बहुपक्षीय नहीं द्विपक्षीय मुद्दा मानता है और इस मुद्दे पर किसी तीसरे देश के हस्तक्षेप को अनुचित मानता है।

यही नहीं पाकिस्तान ने अब इन मुद्दों पर विजयश्री पाने की आकांक्षा में आतंकवाद का आश्रय लिया है। विश्व की इस परिवर्तित स्थिति में अमेरिका भारत और पाकिस्तान, दोनों को अपना मित्र कहता है। वह आतंकवाद का विरोध तो करता है लेकिन कहीं न कहीं पाकिस्तान का पक्ष भी लेता है और भारत को संयम बरतने की सलाह देता है। निष्कर्षत: अमेरिका की पाकिस्तानी पक्षधटता और भारत के प्रति उदासीनता को देखकर भारत को चाहिए कि वह विश्व समुदाय को अपनी नीतियां स्पष्ट कर दे।

सोवियत संघ (वर्तमान में रूस) की दक्षिण एशियाई नीति की धुरी भारत रहा है। प्रारम्भ में सोवियत संघ ने दक्षिण एशियाई राजनीति में अधिक रूचि नहीं दिखाई परन्तु स्टालिन के मृत्योपरान्त सोवियत संघ ने विशेषकर अमेरिका की अवरोध की नीति (Policy of Containment) को असफल करने हेतु भारत का पक्ष लिया। कालान्तर में चीन के साथ अपने सैद्धान्तिक मतभेद के कारण वह भारत के और निकट आ गया क्योंकि भारत पर 1962 में चीन के आक्रमण के समय से भारत-चीन संबंध तनावपूर्ण हो गये थे। परिणामस्वरूप सोवियत संघ के साथ भारत के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बने रहे। अमेरिका-पाकिस्तान मित्रता और भारत-पाकिस्तान संघर्ष के कारण सोवियत संघ के संबंध पाकिस्तान से कभी मधुर नहीं हो पाये। परन्तु 1966 के ताशकन्द समझौते के बाद दोनों देशों के सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ। 1971 में भारत और सोवियत संघ की मैत्री एवं सहयोग की संधि संपन्न हुई जिससे भारत को पाकिस्तान-चीन-अमेरिका गठबंधन के विरुद्ध बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। पाकिस्तान के अतिरिक्त अन्य सभी दक्षिण एशियाई देशों के साथ सोवियत संघ के संबंध न्यूनाधिक रूप से मैत्रीपूर्ण रहे हैं।

परन्तु अफगानिस्तान में सोवियत संघ के हस्तक्षेप ने उसे और शीतयुद्ध को दक्षिण एशिया के और निकट कर दिया। पाकिस्तान द्वारा इस कार्य का सक्रिय विरोध किया गया। अन्य देशों ने इस घटना की कटु आलोचना की। यहां तक कि भारत भी इस घटना से प्रसन्न नहीं था। शीत युद्ध के समाप्त होने के बाद दक्षिण एशिया में अमेरिका और रूस की रूचि में कमी आई है।

1991 में सोवियत संघ का विघटन तथा उसके उपरान्त 11 गणराज्यों द्वारा स्वतन्त्रता के साथ-साथ स्वतन्त्र देशों के राष्ट्रकुल (सी० आई० एस०) का निर्माण एक आश्चर्यचकित घटनाक्रम था।[1] परन्तु इसके बावजूद रूस की नीति की सदैव भारत की ही पक्षधर रही है। रूस ने भारत को क्रायोजनिक इंजन उपलब्ध कराये।[2] रूस ने उक्रेन से हस्तक्षेप करके पाकिस्तान को निर्यात होने वाले टी-80 टैंकों की खेप रुकवाकर न केवल भारत की पाकिस्तान से सैन्य क्षेत्र में सहायता की है अपितु कश्मीर पर भी भारत की नीतियों के समर्थन का अनुमोदन करता रहा है।

---

1. देवेन्द्र कैशिक, कॉमनवेल्थ ऑव इन्डीपेडेंट स्टेटस एण्ड इंडिया," इन्टरनेशनल स्टडीज, वाल्यूम 30 अंक 2 अप्रैल जून 1993 पृ० 231.
2. ऐलेक्सी ऐलमानोव व सर्गई स्त्रोकान, 'मास्को लूक्स ईस्टवर्ड," आउटलुक, 9 अप्रैल 1997, पृ० 35.

पाकिस्तान के बाद चीन भारत का दूसरा पड़ोसी राज्य रहा हैं जिसके साथ भारत के महत्वपूर्ण विदेशी सम्बन्ध रहे हैं। इन सम्बन्धों का आधार नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में दोनों देशों की भूमिकाओं एवं परिस्थितियों के आंकलन पर आधारित रहा है। चीन को प्रसन्न रखने के लिए भारत ने अक्टूबर, 1949 को उसे मान्यता प्रदान करने वाला, बर्मा के बाद, भारत दूसरा गैर साम्यवादी देश था।[1] इसके अतिरिक्त भारत ने अपने हितों की अवहेलना कर तिब्बत पर चीन के आधिपत्य को मान्यता दे दी तथा 29 अप्रैल, 1954 की पंचशील संधि के द्वारा तिब्बत में प्राप्त अपने बहिर्देशीय अधिकारों की तिलांजलि दे दी। 1950 के दशक के मध्य तक चीन ने भारत के पाकिस्तान और नेपाल के साथ द्विपक्षीय विवादों में किसी का पक्ष नहीं लिया, परन्तु जब चीन के और सोवियत संघ के मतभेद गंभीर होने लगे तथा नई दिल्ली मास्कों के समीप आया तब चीन ने भारतीय उपमहाद्वीप में तनाव उत्पन्न करने का निश्चय किया।[2] विशेषकर उसने भारत और पाकिस्तान तथा भारत और नेपाल के बीच मतभेद वृद्धि में रुचि दिखाई। चीन के इन कृत्यों का चरमोत्कर्ष तब हुआ जब उसने 1962 में भारत पर आक्रमण कर दिया। 1966 के ताशकंद समझौते के बाद चीन सशकित हुआ कि सोवियत प्रभाव पाकिस्तान तक विस्तृत हो जायेगा। अत: इस प्रभाव को अवरुद्ध करने के लिए और अमेरिका के प्रभाव को कम करने के लिए चीन ने अन्तत: पाकिस्तान को शस्त्रों की आपूर्ति देनी शुरू कर दी।

1970 के दशक में स्थिति और गम्भीर हो गई। एक तरफ पाकिस्तान-चीन-अमेरिका की धुरी स्थापित हो गई जिसका मुख्य उद्देश्य पूर्व सोवियत संघ के साथ-साथ भारत का परिरोधन करना था। कालान्तर में आर्थिक कारणों को लेकर चीन और अमेरिका में तनाव उत्पन्न होने लगा। परिणामस्वरूप भारत और चीन के सम्बन्ध तनिक मधुर होने लगे। 1988-99 तक के युग में इसमें तीव्र गत्यात्मकता आई जिसके फलस्वरूप दोनों ने सीमा विवादों को परे रखकर आर्थिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक आदि सम्बन्धों को सुधारने में भारी प्रगति की है।

---

1. भीमसन्धु, अनरिजोल्ड कनफ्लिक्ट : चाईना एण्ड इण्डिया, नई दिल्ली, 1988 पृ० 82.
2. एस० पी० वर्मा एंड के० पी० मिश्र : फॉरेन पालिसिज इन साउथ एशिया, ओरियेन्ट लांगमेन न्यू दिल्ली, 1969, पृ० 11.

अध्याय—3

दक्षिण एशिया में सहयोग एवं विवाद के आधार तथा सार्क का उद्‌भव

क्षेत्रीय संगठन के मूलभूत तत्वों में सैनिक एवं असैनिक संगठनों की परिणति क्षेत्रवाद की स्थापना के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। जिससे सहयोग एवं विवाद का आधार निर्धारित किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रवाद द्वितीय विश्व युद्धोत्तरकालीन प्रमुख देन रही है। वर्तमान कालीन विश्व व्यवस्था में क्षेत्रीय सैनिक संगठनों की अपेक्षा क्षेत्रीय आर्थिक संगठनों का विशेष महत्व है। जिसका उद्देश्य किसी क्षेत्र विशेष के देशों के पारस्परिक हित के आधार पर आर्थिक विकास करना होता है। उदाहरणस्वरूप ई० ई० सी०, एशियान आदि।

क्षेत्रवादी सहयोग के लिए, भौगोलिक निकटता, स्थानीय भेदभाव विस्मृतकरने की इच्छा, सांस्कृतिक सम्बन्ध, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक हित, सुरक्षा और प्रबुद्ध राष्ट्रीय हित का सिद्धान्त प्रमुख प्रेरक तत्व रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की धारा 3 में भी क्षेत्रीय हित से सम्बन्धित संगठन गठित करने की छूट दी गयी है। परन्तु इस तरह के संगठनों का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र संघ के भावना के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए। इसके अन्तर्गत 1948 में ओ० ए० एस० की स्थापना की गयी। जिसका उद्देश्य अमेरिका के राज्यों के बीच परस्पर आर्थिक सहयोग में वृद्धि करना था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस तरह के कई अन्य सैनिक तथा असैनिक क्षेत्रीय संगठन प्रकाश में आएं। संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में 1949 में 'नाटो' (उत्तर अटलांटिक संधि संगठन) जैसा सैनिक संगठननिर्मित हुआ। इसके अनुसार यूरोप में अथवा उत्तरी अमेरिका में किसी एक या अनेक देशों केविरुद्ध किया गया सशस्त्र आक्रमण सभी देशों के विरुद्ध आक्रमण समझा जायेगा और ऐसा आक्रमण होने की स्थिति में वे वैयक्तिक रूप से या अन्य सदस्य देशों के साथ मिलकर सम्मिलित रूप से उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र में शान्ति बनाये रखने के लिए आवश्यक समझा जाने वाला कार्य" करेंगे। 'नाटो' द्वारा सोवियत संघको चेतावनी दी गयी थी कि यदि उसने इस संगठन के किसी भी सदस्य देशों पर आक्रमण किया तो संयुक्त राज्य अमेरिका तत्काल उसकी सहायता करेगा। 1954 में 'सीएटो' (दक्षिण-पूर्व एशिया संधि संगठन) निर्मित कियागया। इसका मुख्य उद्देश्य दक्षिण-पूर्वी एशिया में

कम्युनिस्ट चीनी साम्यवादी प्रसार को अवरुद्ध करना था। 1955 में सोवियत रूस और उसके सहयोगी पूर्वी यूरोपियन आठ देशों ने वारसा पैक्ट का निर्माण किया जिसके अन्तर्गत यदि किसी सदस्य पर सशस्त्र सैनिक आक्रमण होता है तो अन्य देश उसकी सैनिक सहायता करेंगे। यदि 'वारसा पैक्ट' को 'नाटो' की प्रतिक्रिया कहे तो अनुचित नहीं होगा। 'सेन्टो' भी इसी प्रकार का एक संगठन था। इस प्रकार के विश्व के अधिकांश देश इस तरह के संगठनों में ही उलझ कर रह गये।

विश्व पर उपरोक्त सैनिक संगठनों का व्यापक प्रभाव पड़ा इससे पूर्व आरम्भ शीतयुद्ध ने विश्व में हर तरफ भय और आतंक का वातावरण बना दिया था परिणामस्वरूप शस्त्रों कीहोड़ बढ़ी। इन शस्त्रों की होड़ से दक्षिण एशिया भी अछूता नहीं रहा। दक्षिण एशिया के दो प्रमुख राष्ट्रों भारत और पाकिस्तान में शस्त्रों की होड़ बढ़ गयी जो आज तक समाप्त नहीं हुई है। इससे सैनिक व्यय भी बढ़ा। कल्याणकारी योजनाओं की उपेक्षा सी होने लगी। इसने संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था को पंगु बना दिया[1] और विश्व दो गुटों में विभक्त हो गया। संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ दो अलग-अलग गुटों का नेतृत्व करने लगे विश्व की समस्याओं को इस गुटबन्दी के आधार पर आंका जाने लगा जिससे समस्त अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ और उलझ गयी। चाहे, कश्मीर समस्या हो, कोरिया समस्या हो,अफगानिस्तान समस्या हो अथवा अरब-इजराइल संघर्ष, अब इन विषयों पर राष्ट्रीय स्वार्थों के परिप्रेक्ष्य में सोचने की प्रवृत्ति बढ़ी।[2]

इसके प्रभावस्वरूप विश्व में द्विध्रुवीयता के विरुद्ध गुटनिरपेक्षता की विचारधारा का जन्म हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तराष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप में परिवर्तन आने वाले तत्वों में 'गुटनिरपेक्षता' का विशेष महत्व है। इसी दौरान एशिया एवं अफ्रीका के राष्ट्रों का स्वतंत्र अस्तित्व उभरने लगा था, परन्तु इन राष्ट्रों ने तत्कालीन विश्व की स्थिति को देखकर गुटनिरपेक्ष रहना अधिक श्रेयस्कर समझा। इन राष्ट्रों ने सोवियत साम्यवाद तथा अमेरिकी पूंजीवाद दोनों को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वे अपने को किसी 'वाद' के साथ सम्बद्ध करना नहीं चाहते थे। उनका विश्वास था कि वो विश्व की 'तीसरी शक्ति' बन सकते थे। जो दो गुटों के विभाजन को संतुलित कर अन्तर्राष्ट्रीय

---

1. यूनाइटेड नेशन्स, वीकली बुलेटिन, न्यूयार्क, 1 अक्टूबर, 1949, पृ० 365.
2. राजन, एम० एस० : "रोड टू देतांत; ए सिनाप्टिक व्यू," एम० एस० आगवानी (संपादक) "देतांत".

सहयोग में सहायक हो सकते थे। गुटनिरपेक्षतावाद अर्थात् गुटों से अलग रहने की नीति एशिया केनवजागरण की प्रमुख विशेषता थी। सन् 1947 में आजादी प्राप्त करने के बाद भारत ने इस नीतिका पालन करना प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् कई देशों ने इस नीति में अपनी आस्था व्यक्त की। दक्षिण एशिया के सभी देश इसके सदस्य हैं।

इन सैनिक संगठनों के अलावा विश्व में अनेक क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना हुई। सन् 1957 ई० में स्थापित यूरोपीय आर्थिक समुदाय (ई० ई० सी०), पश्चिमी यूरोपीय देशों की आर्थिक और व्यापारिक नीतियों को सुनियोजित करता रहा है। इसी तरह के कई अन्य संगठन—लैटिन अमेरिका में मुक्त आर्थिक संघ (एल० ए०एफ० टी०ए०), अरब लीग अफ्रीकी एकता संगठन इत्यादि की स्थापना हुई। सन् 1967 में 'एसियान' (दक्षिण पूर्व एशियाई देशों का संगठन) गठित हुआ।[1] इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जहाँ क्षेत्रीय संगठन एक के बाद एक उभर कर सामने आए, वहीं दक्षिण एशिया में ऐसा कोई भी संगठन निर्मित नहीं हुआ।

दक्षिण एशिया के सभी सातों देश भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे के काफी नजदीक हैं। विशेषकर भारत की तो सातों देशें से स्थलीय एवं समुद्री सीमाएं हैं। इसी तरह दक्षिण एशियाई राष्ट्रों में भौगोलिक एकता विद्यमान है जो किसी क्षेत्रीय संगठन के निर्माण के लिए अनिवार्य तत्व है। समान जातीय, सांस्कृतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि सहयोग केलिए आवश्यक आधार प्रस्तुत करती है। सन् 1945 में अरब लीग राज्यों के संघ (अरबलीग)की स्थापना इन्हीं तत्वों के प्रेरणास्वरूप हुई। इसी तरह लैटिन अमरीकी राज्य (क्यूबा को छोड़कर) राजनीतिक प्रश्नों पर एक सा रुखअपनाते हैं। यूरोप में कुछप्रादेशिक व्यवस्था के अन्तर्गत बाध्यहोने केकारण और कुछ समान पृष्ठभूमि के कारणयूरोपमें ऐसी प्रवृत्ति नहीं उत्पन्न हो पायी इसके पीछे कारण यह था कि वहाँ समान संस्कृति की बुनियाद ही नहीं थी।

दक्षिण एशिया के सभी राष्ट्र सांस्कृतिक दृष्टि से काफी नजदीक रहे हैं। 1947 से पूर्व भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश की सैकड़ों वर्षों की संयुक्त सांस्कृतिक विरासत रही है। भारत में जहाँ

---

1 अहमद इमाजुद्दीन, रीजनल कोआपरेशन इन साउथ एशिया एण्ड इण्डियाज रोल, पेज 1 आई० डी० एस० ए० जनरल, भाग 15, नवम्बर 3, जनवरी-मार्च, 1983 नई दिल्ली.

हिन्दू,मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि अन्य अनेकों संस्कृतियों का संगम है वहीं पाकिस्तान और बांग्लादेश मुस्लिम संस्कृति के प्रधान केन्द्र हैं। नेपाल विश्व का एकमात्र हिन्दू राज्य है जिसकी परम्परा संस्कृति एवं सामाजिक परम्पराएँ पूर्ण रूप से भारत के समतुल्य है। भूटान की पर्वतीय जातियों का रहन-सहन एवं संस्कृति नेपाली लेप्या लोगों से मिलती जुलती है। भारत और श्रीलंका के सम्बन्ध ऐतिहासिक हैं। श्रीलंका बौद्ध धर्म प्रधान देश है। ध्यातव्य है कि प्राचीन भारत के महान मौर्य शासक सम्राट अशोक ने हीबौद्ध धर्म केप्रसार-प्रचार केलिए अपने पुत्र व पुत्री (महेन्द्र-संघमित्रा) को श्रीलंका भेजा था।[1] श्रीलंका में रहने वाले तमिलों की धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवनी भारतीय हिन्दुओं से मिलती जुलती है।

प्रादेशिक व्यवस्था के लिए प्रेरक तत्वों में आर्थिक एवं राजनीतिक हित का बहुत अधिक महत्व है। आधुनिक युग में अधिकांश प्रादेशिक संगठनों का उदय उक्त कारणों से ही हुआ है। जैसे—ओ० ई० ई० सी०, ई० पी० यू०, ई० सी० एस०सी०, ई०सी०एम०, ई० एफ० टी० ए०, कौंसिल आफ यूरोप आदि का आधार राजनीतिक अथवा धार्मिक या दोनों के फलस्वरूप हुआ है।[2]

दक्षिण एशियाई सभी राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इनके पास उन्नत तकनीकी का अभाव है। यातायात एवं संचार के साधन पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाये हैं। परिणामस्वरूप प्राकृतिक सम्पदा का शोषण नहीं हो पाता और औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है। दक्षिण एशिया की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है परन्तु तकनीकी के पिछड़ेपन के कारण गरीबी और बेरोजगारी व्याप्त है। मूलतःअपने औद्योगिक एवं कृषि के विकास हेतु ये देश विकसित पश्चिमी देशों पर निर्भर है। आवश्यकता इस बात की है कि ये देश इन गम्भीर समस्याओं का सामना पारस्परिक सहयोग से करें। यद्यपि दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के पास प्राकृतिक सम्पदा के अनमोल भण्डार हैं परन्तु फिर भी ये देश स्थानीय संसाधनों कीआपसी पूर्ति की जगहविश्व बाजार में क्रय-विक्रय करते हैं जबकि क्षेत्रीय राष्ट्रों को उन्हीं संसाधनों की आपूर्ति बाह्य राष्ट्रों से करनी पड़ती है। परिणाम स्वरूप इन राष्ट्रों का व्यापार संतुलन प्रतिकूल रहता है। उदाहरणार्थ, भारत व श्रीलंका दक्षिण एशिया में रबर के महत्वपूर्ण उत्पादक राष्ट्र है। सन् 1980 में भारत सम्पूर्ण विश्व का 4.1%

---

1 पाठक, भारत कुमार : ''दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग'' पृ० 23-24 (नेपाली भाषा), साझा प्रकाशन ललितपुर.

2. विजय अरोड़ा : अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, पृ० 110-111, 7 यू० ए० जवाहर, दिल्ली, 7, 1975.

यानि 1,55,000 टन रबर पैदा करता था और श्रीलंका विश्व का लगभग 3.5% रबर का उत्पादन करता है। श्रीलंका के विदेशी व्यापार में चाय के बाद रबर का द्वितीय स्थान है।[1] जबकि अन्य दक्षिण एशिया के राष्ट्रों के पास रबर का अत्यन्त अभाव है। अत: ये देश बाह्य विश्व को रबर की आपूर्ति की अपेक्षा क्षेत्रीय आपूर्ति को वरीयता दे सकते हैं। इसी तरह बांग्लादेश, पाकिस्तान जूट के प्रमुख उत्पादक देश हैं और श्रीलंका, भूटान,मालदीव में जूट अत्यन्त कम मात्रा में उत्पादित होता है। भारत में लोहा, कोयला, अभ्रक जैसे महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ भारी मात्रा में पाये जाते हैं जिससे पड़ोसी देशों की आवश्यकताओं की पूर्ति अच्छी तरह से की जा सकती है।

विश्व की लगभग 20 प्रतिशत विशाल आबादी का नेतृत्व करने वाले क्षेत्र दक्षिण एशिया की अर्थ व्यवस्था बहुत ही निम्न हैं विश्व के अन्य देशों की तुलना में दक्षिण एशिया का आयात तथा निर्यात दोनों बहुत ही कम हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि दक्षिण एशिया में निर्यात संवर्द्धन तथा आयात प्रतिस्थापन का प्रयत्न अत्यन्त कम प्रभावी रहा है। संतुलित भाषा में यह कहना ज्यादा उचित होगा कि ये देश दीर्घकाल से ऐसे अन्य रुचिकर तथा संकटपूर्ण आर्थिक स्थितियों में रखे गये हैं कि इस दिशा में पुनर्विचार की सशक्त अपेक्षा महसूस होती है। इन देशों से सम्बन्धित पुनर्विचार का प्रारम्भ इस दृष्टि से होना चाहिए कि दक्षिण एशिया के देशों में पृथक्-पृथक् प्रयासों से आर्थिक विकास की तीव्रता को पर्याप्त स्तर पर नहीं लाया जा सकता।

विश्व अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि सभी दक्षिण एशियाई देश एक संकटपूर्ण चौराहे पर रख दिये गये हैं। तीन बाह्य आर्थिक संकेतकों-भुगतान एवं व्यापार लेखा-जोखा का सन्तुलन, ऋणबोध और सहयोग के रूप में विदेशी धन की संभावनाओं पर एक साथ विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि बाह्य कारकों का प्रभाव क्षेत्र की प्रत्येक अर्थव्यवस्था को अधिक प्रतिकूल बना देता है। इस प्रकार के प्रतिकूल प्रभाव की अन्त करने के लिए स्वतंत्रता के स्थान पर सामूहिकता ज्यादा प्रभावशाली साबित हो सकती है। जो सार्वभौमिक आर्थिक उतार-चढ़ावों को सहन कर जीवनोपयोगी है और क्षेत्र के विकास की आवश्यकताओं को पर्याप्त आधार प्रदान करते हैं।[2]

---

1 क० स्पीदचेकों : विश्व के आर्थिक और राजनीतिक भूगोल की रूपरेखा, पृ० 92-93, प्रगति प्रकाशन, मास्को.

2. सिह, डी०आर०, ''रिजनल ट्रेड कोआपरेशन इन साऊथ एशिया'', स्टेप टू बई्स इकोनोमिक यूनियन,द यंग इकोनामिस्ट, भाग 1, नं० 1, पृ० 4, 1988.

ऐसी परिस्थितियों में प्रतिकूल प्रभाव का अन्त करने तथा एक क्षेत्रीय आधार पर विकासात्मक गतिविधियों सहित अग्रसर होने के लिए विकासात्मक क्षेत्रवाद की रणनीति से गत्यात्मक प्रभाव प्रशस्त होंगे। उदाहरणार्थ—माप अर्थव्यवस्था, बाह्यअर्थव्यवस्था, विशेषीकरण एवं बढ़ती आर्थिक क्षमता जो क्षेत्र के विस्तृत आन्तरिक व्यापार तथा विशाल अन्तर्राष्ट्रीय बाजार पर बढ़ सकें।

इस प्रकार दृष्टिगत है कि सहयोग हेतु संभावित मूलाधार है जो न केवल व्यक्तिगत असफलताओं एवं कमियों को पूर्ण करेंगे, बल्कि भविष्य में सामूहिक रूप से हित संवर्द्धन करेंगे। प्रथम,अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार एवं औद्योगीकरण, जिसके द्वारा व्यापार और औद्योगिक गतिविधियों के सामंजस्य से क्षेत्र की आपूर्ति व्यवस्था में प्रत्यक्ष सुधार होगा। द्वितीय, बाजार विस्तारीकरण से लाभ, जिसके द्वारा क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मांग पक्ष की बढ़ती सौदेबाजी क्षमता प्राप्त कर सकेगा। इस प्रकार दो मूल आधारों पर विकासात्मक क्षेत्रवाद दक्षिण एशियाई देशों को जीवनप्रदान कर सकता है। प्रथम, विश्व के अन्य देशों के साथ विशाल एवं शक्तिशाली सौदेबाजी क्षमता के ढांचे द्वारा। द्वितीय अधिक विस्तृत अन्तर्मुखी बनकर, क्योंकि ये देश न केवल शोषण कर सकते हैं, बल्कि क्षेत्रीय संसाधनों का सफल उपयोग भी कर सकते हैं।

उपर्युक्त तथ्यात्मक विश्लेषण से स्पष्ट है कि दक्षिण एशियाई देशों की प्रतिव्यक्ति आय के स्तर को बढ़ाना प्राथमिक आवश्यकता है। जो जीवन स्तर की बेहतरी के साथ न केवल विकास के मार्ग पर ले जायेगा बल्कि माँग के दोनों व्यक्तिगत एवं सामूहिक संरचना की अभिवृद्धि होगी। इस स्थिति में आय एवं रोजगार में वृद्धि के साथ माँग की संरचना में वृद्धि घरेलू एवं सामूहिक विस्तार के द्वारा आपूर्ति संरचना के विकास के माध्यम से हो सकता है। इस सन्दर्भ में दक्षिण एशिया में सहयोग हेतु कुछ क्षेत्रों को चुना जा सकता है—

कृषि

वर्तमान में कृषिविकास, विशेष रूप से भारत और पाकिस्तान में इस स्तर पर पहुँच गया है कि ये दोनों देश प्राकृतिक आपदाओं के कारण उद्भूत आपातकालीन स्थितियों का मुकाबला सफलतापूर्वक कर सकते हैं। ये संगठित उपायों का विस्तार करके जल आधारित कृषि, कृषक विनिमय योजना, अनेकतकनीकी सहयोग शोध एवं विस्तारीकरण सेवाओं, दक्षिण एशिया के अन्य देशों में कृषि विकास को विस्तार प्रदान कर सकते हैं।

प्राकृतिक संसाधन वं पर्यावरण

दक्षिण एशिया में प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण संरक्षण सहयोग के विस्तृत क्षेत्र को स्पष्ट करते हैं जिसके लिए महत्वपूर्ण पहल संभव एवं अपेक्षित है। यह स्पप्ट है कि कई सक्रिय निर्णय प्रत्येक राष्ट्र में या दो राष्ट्रों के मध्य किये जा सकते हैं। वन संरक्षण, बाढ़ों की रोक, मृदा के क्षय पर रोक,प्रत्येक राष्ट्र के लिए समान महत्व के विषय हैं। प्राकृतिक सहयोग के लिए मुख्यत: महत्वपूर्ण क्षेत्र—जैसे एकत्रीकरण, स्तरीकरण, सांख्यिकी विनिमय, बाढ़ पर नियंत्रण, बाढ़ पूर्वानुमान व्यवस्था का विकास, जल प्रदूषण पर रोक एवं नियंत्रण, जल प्रदूषण से उत्पन्न रोग एवं उन पर नियंत्रण आदि।

औद्योगीकरण

औद्योगिक विकास एवं ऊर्जा संसाधन विकास के सन्दर्भ में सामूहिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता पर आधृत क्षेत्रीय सहयोग की अवधारणा सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध हो सकती है। दक्षिण एशिया के सभी देश अपने औद्योगिक विकास में अकेले अग्रसर हैं परिणामस्वरूप इन देशों का विकसित देशों पर निर्भरता एवं आन्तरिक विषमताएँ गतिशील हुई है। इस सन्दर्भ में औद्योगीकरण के लिए क्षेत्रीय उपगमन सभी देशों में अधिक सन्तुलित एवं विविध अर्थव्यवस्था के विकास को सुनिश्चित करेगा। प्रत्येक देश औद्योगिक सहयोग से औद्योगिक विकास के दीर्घ अवधि अभिकल्पना को प्राप्त कर सकते हैंजो अपने संसाधन प्रतिभा के मूल्यांकन,विकासात्मक आवश्यकताओं एवं संभावनाओं पर आधारित होगा।[1] इस प्रकार के सहयोग न केवल प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण प्रशिक्षण एवं व्यवस्थापन सहयोग का होना चाहिए, बल्कि प्रारम्भिक दौर में आत्मनिर्भरता के लिए योजनाबद्ध भी होना चाहिए।

ऊर्जा संसाधन

दक्षिण एशिया में सहयोग के लिए ऊर्जा संसाधन का विकास एक अत्यन्त ही आशाजनीन क्षेत्र है। एक ओर सभी देशों में ऊर्जा के पाम्परिक साधनों जैसे जलावन, उपला फसल अवशिष्ट तथा कोयला इत्यादि पर पूर्णरूपेण निर्भरता है वहीं दूसरी ओर जनसंख्यावृद्धि से वन संसाधनों की अल्पता

---

1. सिह,डी०आर० : ''रिजनल ट्रेड कोआपरेशन इन साउथ एशिया,' स्टेप टू वर्ड्स इकोनामिक यूनियन, द यंग इकोनामिस्ट, भाग 1, नं० 1, पृ० 5,1988.

एवं प्रत्येक वर्ष गम्भीर मृदा का क्षय हो रहा है। इसके बावजूद, इस क्षेत्र में ऊर्जा संसाधनों में दोहन की प्रक्रिया लम्बित है। जिसके लिए विशाल ऊर्जा स्रोत उपलब्ध है।[1] उदाहरणस्वरूप नेपाल का जल संसाधन क्षमता का प्रयोग स्वयं नेपाल के लिए और भारत के हित में किया जा सकता है। बहुमूल्य ऊर्जा संसाधनों के विकास में सहयोग एवं पुनर्नवीन संसाधनों का विस्तारीकरण दक्षिण एशियाई क्षेत्र में सामान्य हित से जुड़ी है। वांछित मानव शक्ति के प्रशिक्षण, उपकरणों, संघटकों का उत्पादन और ऊर्जा सेक्टर की आवश्यकताओं का प्रबन्धन यह क्षेत्र सक्षम उपायों द्वारा कर सकता है।

वित्तीय संसाधन

दक्षिण एशिया के सभी देश, अपने देश के विकास के लिए वित्त निवेश एवं प्रौद्योगिकी के बाह्य साधनों पर आश्रित है। इन्हें अपने निर्यात एवं बाजार के लिए मूलरूप से औद्योगिक बाजार अर्थव्यवस्था पर निर्भर रहना पड़ता है। विकासशील देशों में पिछड़ापन एवं संरक्षणवाद वह मुख्य कारण है जिससे दक्षिण एशियाई देशों के बाजार-अवसर संकुचित हो गये हैं। इसके साथ बहुआयामी अभिकरणों विशेषकर आई०डी० ए० द्वारा वित्त के सस्ते साधनों की उपलब्धता नगण्य है। ये समस्त उत्पादन इस क्षेत्र के सभी देशों को आवश्यक रूप से संकेत करते हैं कि क्षेत्र के सभी देश सम्मिलित रूप से नियम एवं शर्तों के आधार पर कार्य करें जिससे उन्हें वाह्य वित्त, विदेशी धन का आगमन, प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण आदि उपलब्ध हो सके।

दक्षिण एशिया के देश, स्थानीय समस्याओं के मध्य क्षेत्रीय सहयोग योजना पर अग्रसर हैं। इस क्षेत्र में सहयोग तभी संभव है जब सभी सदस्य देश परस्पर एक दूसरे की वास्तविक अथवा संभावित अभिरुचियों के अनुसार अपने व्यवहार में सामंजस्य बनाये रखें। दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क)के स्थिर विकास के लिए प्रत्येक सदस्य देश को जीवन क्षय क्षेत्रीय इकाई के रूप में स्वीकृति एक पूर्व शर्त है और दूसरा इस क्षेत्र के राष्ट्रों को अपनी पारम्परिक प्रत्यक्ष ज्ञान एवं रणनीतियों से हटकर प्रत्यक्ष विदेशी प्रभावों से अलग रहना चाहिए। इसलिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है

---

[1] मुखर्जी,आई० एन० : ''इकोनोमिक कन्सट्रेन्ट्स ऐण्ड प्रास्पेक्ट्स,(संपादित) विमल प्रसाद,विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,1989, पृ० 103.

कि सहयोग की प्रक्रिया सदस्य राष्ट्रों की वास्तविक अपेक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए। क्षेत्रीय सहयोग को अर्थपूर्ण बनाने के लिए दीर्घ अवधि की प्रभावशली क्षेत्रीय वैदेशिक नीति की आवश्यकता है। इस प्रकार की नीति के लिए निम्नांकित तत्व विचारार्थ लिया जा सकता है—

(i) क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग एवं क्षेत्रीय निवेश नियमन के अलावा छोटे देशों के बाजारों के लिए बाजार समाकलन एवं सुरक्षात्मक उपाय की रणनीति 'सार्क' के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं।

(ii) प्रत्येक राष्ट्र को आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता की उपलब्धता हेतु एक दूसरे पर विश्वास करना चाहिए।

(iii) प्रत्येक देश द्वारा एक इकाई के रूप में आतंकवादी गतिविधियों के विरुद्ध समन्वित प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(iv) सभी देशों को स्वयं को एक क्षेत्रीय सहयोग की ईकाई के रूप में स्वीकृत करना चाहिए और सर्वमान्य निर्णय द्वारा वचनबद्धता का पालन किया जाना चाहिए।

(v) अन्य दो भू-परिवेष्ठित राष्ट्रों (भूटान और नेपाल) तथा समुद्ररूद्ध (मालदीव) हेतु अलग दक्षेस व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे उनके तत्सम्बन्धी समस्याओं का परीक्षण करके उनके हल ढूंढे जा सके।जब तक ये देश दक्षिण एशियाई आर्थिक अन्तनिर्भरता के लिए व्यवहार्य आर्थिक इकाई नहीं बनते, सार्क के उद्देश्य पूर्ण नहीं होंगे।

(vi) क्षेत्रीय स्तर पर सामाचार प्रवाह की वृद्धि के लिए बुद्धिजीवियों, शिक्षाविदों, पत्रकारों तथा समाज के महत्वपूर्ण घटकों के बीच एक विशाल सांस्कृतिक अन्तक्रिया होनी चाहिए।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त उत्पादनों पर यदि गहनता से विचार किया जाये तो ये 'सार्क' के त्वरित विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं,अन्यथा क्षेत्रीय सहयोग की गति अत्यन्त धीमी रहेगी। दक्षिण एशियाई क्षेत्र में संसाधन संकट, बढ़ती जनसंख्या, परिस्थिति का अवरुद्ध होना, दुर्व्यवस्था तथा

---

1. नकवी, एस० एच० एन० : पासिविलिटीज आफ इकोनामिक इन्टेग्रेशन, रीजनल कोआपरेशन इन साउथ एशिया, प्राबल्म्स एण्ड प्रास्पेक्टस (संपादक) विमल प्रसाद, विकास पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1989,पृ० 166.

अन्य समतुल्य घटक भविष्य में प्रबल हो सकते हैं। परिणामस्वरूप वाह्य शक्तियों पर निर्भरता अधिक और असंख्य होगी। अतः इस प्रकार की परिस्थितियों में एक सहयोगी क्षेत्रीय वैदेशिक नीति सामंजस्य बनाये रखने में पर्याप्त सहायक सिद्ध होगी। दक्षिण एशिया में सार्थक सहयोग हेतु सार्क एक प्राणदान संकेत के रूप में उभरेगा।

दक्षिण एशिया का आयात-निर्यात कुछ वस्तुओं तक सीमित नहीं है, बल्कि कुछ देशों एवं क्षेत्रों तक प्रतिबन्धित है। विकासात्मक प्रयोगों ने आयात की प्रकृति एवं व्यापार की दिशा को प्रभावित किया है। निर्यात मुख्य रूप से पारम्परिक वस्तुओं (भारत को छोड़कर) का होताहै। अतः इस क्षेत्र की मूल समस्या पारम्परिक एवं गैर पारम्परिक वस्तुओं के निर्यात में अभिवृद्धि की है। और इस समस्या का निदान किसी एक देश के प्रयास से नहीं हो सकता। संयुक्त प्रयास द्वारा न केवल निर्यात की समस्या हल होगी बल्कि आर्थिक विकास से सम्बन्धित अवरोधों को भी दूर कियाजा सकता है।

इसके अलावा, इस क्षेत्र के देशों की भुगतान स्थिति का वर्तमान सन्तुलन कठिनता की पुष्टि करते हैं। वर्षों से इन देशों में भुगतान गणना के सन्तुलन के सन्दर्भ में घाटे की मात्रा बढ़ गयी है। और भविष्यकालीन परिस्थितियों में यह और बढ़ सकती है। इस सन्दर्भ में कहना उचित होगा कि क्षेत्र के अधिकांश राष्ट्रों में विदेशी मुद्रा गणना में वेतन भोगियों द्वारा प्रेषित धनराशि महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। खड़ी देशों में मानव शक्ति की माँग कम होने के कारण विदेशी मुद्रा भण्डार का अनुपात कम हो जाने की सम्भावना है।[1]

जहाँ तक दक्षिण एशियाई क्षेत्र के ऋण की समस्या का प्रश्न है, दक्षिण एशियाई राष्ट्र गम्भीर ऋण समस्या से नहीं ग्रस्त हैं परन्तु फिर भी उन पर ऋण के बढ़ते दबाव और क्षेत्र के विकास गति पर प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वास्तव में यह इस स्तर तक पहुँच गया है जहाँ उपयुक्त व्यवस्था के अभाव में इस क्षेत्र के देशों की भुगतान स्थिति गम्भीर रूप से प्रभावित हो सकती है।

उपर्युक्त प्रतिबन्धों को मद्देनजर रखते हुए यह कहा जा सकता है कि कुछ व्यापार दिक्

---

1. नकवी, एस० एच० एन० : पासिविलिटीज आफ इकोनामिक इन्टेग्रेशन, रीजनल कोआपरेशन इन साउथ एशिया, प्राबल्म्स एण्ड प्रास्पेक्टस (संपादक) विमल प्रसाद, विकास पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1989,पृ० 171.

परिवर्तन होगा, लेकिन यह व्यापार सहयोग का एक पहलू होगा। विकसित अर्थव्यवस्था वास्तव में, प्रतियोगी अर्थव्यवस्था इस अर्थ में है कि वे सर्वप्रथम कृषि अर्थव्यवस्था और विकासशील औद्योगिक अर्थव्यवस्था काआधार है।[1]यह सत्य है,परन्तु यहाँ व्यापार सहयोग हेतु पर्याप्त आसार है। प्रमुख बात यह है कि उत्पादों की प्रतिस्पर्धा क्षेत्रीय सहयोग के लिए लाभदायक है क्योंकि प्रतिस्पर्द्धा प्रतियोगिता के माध्यम से कार्यकुशलता में वृद्धि करता है और व्यापार विस्तार से अनुपूरकता का अवशोषण होता है। निश्चय ही ऐसा कहा जा सकता है कि आरम्भ में यह भुगतान समस्याओं के सन्तुलन को सरल बना देता है क्योंकि 'सार्क' राष्ट्रों को तृतीय देशों से माल का प्रतिस्थापन होगा तथा दीर्घकाल में उच्चतम उत्पादन के तार्किक प्रक्रिया तथा व्यापार अनुकूलन से भुगतान स्तर के सन्तुलन में सुधार आयेगा। इस प्रकार अन्त में यह पुनः कहा जा सकता है कि क्षेत्रीय व्यापार सहयोग न केवल अपरिहार्य है बल्कि दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के लिए अधिक वांछनीय भी है।

दक्षिण एशियाई देश पश्चिमी देशों की तुलना में तकनीकी दृष्टि से भी पिछड़े हुए हैं। परन्तु विज्ञान एवं तकनीकि में सभी दक्षिण एशियाई देश समान रूप से पिछड़े नहीं हैं। इन दक्षिण एशियाई राष्ट्रों में भारत औद्योगिक तकनीकि, परमाणु तकनीकि एवं कृषि तकनीकि में अन्य दक्षिण एशियाई राष्ट्रों से अग्रिम है। इसके पास प्राकृतिक संसाधनों का अपेक्षाकृत उचित दोहन करने की क्षमता है। यहाँ तक कि भारत ने समुद्री क्षेत्र की आर्थिक संपदा दोहन करने की तकनीकि भी विकसित कर ली है। इसके बाद क्रमशः पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका आदि का स्थान है।[2]

भारत और पाकिस्तान, विकसित, सरल एवं आसान शर्तों पर अन्य पड़ोसी राष्ट्रों को विज्ञान एवं तकनीकि का प्रशिक्षण देते हैं। इसमें विकासशील देशों का हित भी हैं क्योंकि विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को तकनीकी प्रशिक्षण हस्तान्तरण करने के पीछे दो कमियाँ हैं प्रथम, विकसित देश विकासशील देशों को पुरातन तकनीकी हस्तांतरित करते हैं। द्वितीय तकनीकी हस्तांतरण हेतु कठोर शर्तें भी शामिल रहती हैं। इस प्रकार विकासशील देश स्वयं द्वारा विकसित की

---

1. जेतली नेन्सी : 'इमरजेन्स आफ सार्क; रीजनल कोआपरेशन इन साऊथ एशिया : प्राबलम्स एण्ड प्रास्पेक्ट्स (संपादक) विमल प्रसाद, विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1989 पृ० 66
2. धर्मदासानी, एम० डी० : (सम्पादक) : कन्टेम्पोरेरी साउथ एशिया, पृ० 2-3, शालीमार पब्लिशिंग हाऊस, लंका, वाराणसी, 1985.

गयी तकनीकी का आपसी वितरण करने पर परस्पर निर्भरता में वृद्धि कर सकते हैं और विकसित देशों के प्रभाव से मुक्त हो सकते हैं।

क्षेत्रीय सहयोग का महत्वपूर्ण औचित्य राष्ट्रों की पूंजी का क्षेत्रीय परिभ्रमण में रहना हो सकता है। यदि समस्त दक्षिण एशिया के देश बाह्य देशों से वस्तुओं को मंगाने की अपेक्षा आपसी आयात निर्यात को प्रोत्साहन दे तथा स्थानीय संसाधनों की पूर्ति से अपने आवश्यकताओं की पूर्ति करे तो क्षेत्रीय पूंजी क्षेत्रीय चयन में रहेंगी, उससे व्यापार सन्तुलन क्षेत्रीय राष्ट्रों के पक्ष में रहेगा।[1]

क्षेत्रीय सहयोग का एक औचित्य स्थानीय सुरक्षा से सम्बन्धित है। दक्षिण एशियाई देशों के झगड़े, मूल रूप से से उपनिवेशवाद की देन है। परिणामत: इन देशों में प्राय: किसी न किसी विषय को लेकर विवाद चलता रहता है, यहाँ तक कि इसके लिए युद्ध भी हो जाते हैं।[2] शीतयुद्ध राजनीति एवं हिन्द महासागर की दिन-प्रतिदिन महत्ता बढ़ने से दक्षिण एशिया महाशक्तियों की राजनीति का अखाड़ा बना हुआ है। महाशक्तियों की शक्ति राजनीति ने क्षेत्रीय राज्यों में सैनिक व्यय में वृद्धि की है। सन्1975 में बांग्लादेश में शेख मुजीबुर्रहमान की हत्या के बाद बांग्लादेश का रूझान भी भारत विरोधी नजर आने लगा था। सन् 1980 के बाद श्रीलंका के तमिल-सिहलियों के विवाद ने भारत-श्रीलंका, सम्बन्धों में मनोमालिन्यता उत्पन्न कर दिया था।[3] पांचवें एवं छठें दशक में अमेरिका के साम्यवाद विरोधी हित साधन में सहभागिता निभाते हुए पाकिस्तान अपने देश की सुरक्षा के लिए 'सीएटो' एवं 'सेन्टो' जैसे सैनिक संगठनों का सदस्य बना।

सन् 1970 से लेकर आज तक दक्षिण एशियाई राष्ट्रों का सर्वाधिक व्यय सुरक्षाव्यवस्था पर किया जा रहा है। विशेषत: दक्षिण एशियाई राष्ट्रों में भारत, पाकिस्तान तथा श्रीलंका इस विषय पर सर्वाधिक खर्च करते हैं। सुरक्षा के भय के कारण भारत व पाकिस्तान में प्राय: सैन्य तकनीकि एवं सैनिक व्यय की होड़ रही है। सन्1980 में अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को 3.5 मिलियन डालर की

---

1. पाठक, जी० के० : "ऐन एक्सरसाइज इन रीजनल कोआपरेशन," इण्डियन जर्नल आफ नेपालीज स्टडीज, वाल्यूम 1, 1985 बी० एच० यू०, वाराणसी.
2. पान्डा, राजाराम : "रीजनलीज्म इन साउथ एशिया", सेन्टर फार ईस्ट एशियन स्टीडीज, जे० एन०यू० नई दिल्ली, पृ० 5 6.
3. डॉ० बराल लोकराज: रीजनल एण्ड एक्स्ट्रा रीजिनल लिक्स एण्ड साउथ एशियन कोआपरेशन, पृ० 120 21

सहायता एवं एफ 16 विमान देने की घोषणा से दक्षिण एशियाई क्षेत्र का सैन्य सन्तुलन बिगड़ गया। परिणामस्वरूप भारत को मिराज 2000 के लिए फ्रांस से समझौता करना पड़ा। इसी प्रकार भारत से सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध न होने के कारण बांग्लादेश तथा श्रीलंका भी अपनी सेनाओं के आधुनिकीकरण में लगे हैं।[1] अगर क्षेत्रीय सहयोग की भावना से ये राष्ट्र एक दूसरे के काफी नजदीक आ जाएं एवं राजनीतिक मतभेद कम कर पायें तो यह निश्चित है कि क्षेत्रीय राष्ट्रों में परस्पर मैत्री एवं विश्वास की भावना जागृत हो जायेगी जिससे क्षेत्रीय सैनिक व्यय में कमी हो जायेगी।[2]

यह सर्वविदित है कि दक्षिण एशियाई क्षेत्र भुखमरी, बेरोजगारी,गरीबी एवं शोषण का शिकार रहा है जो धन सैनिक साज-सज्जा में व्यय किया जाता है, यदि उसी धनको इस क्षेत्र की समस्याओं के निदान हेतु प्रयोग किया जाय तो निश्चित ही यह क्षेत्र अल्प समय में ही विकास की ऊंचाईयों को छू पाने में समर्थ हो पायेगा।[3]

विश्व में असमान स्तर पर विकसित होती अर्थव्यवस्था को देखकर विश्व के देशों ने सन् 1974 के बाद नवीन अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की वकालत की है जिसके अनुसार विकसित देशों को विकासशील देशों का शोषण करने के स्थान पर उनके साथ इस तरह आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए ताकि वे परम्परागत अर्थव्यवस्था से मुक्ति पा सकें। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर न्यायपूर्ण अर्थव्यवस्था की स्थापना की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए पश्चिमी जर्मनी के भूतपूर्व चान्सलर विलीब्रान्ट की अध्यक्षता में गठित आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में यह कहा गया है कि उत्तर के देशों द्वारा विकासशील देशों को दिये गये ऋण के ब्याज में कटौती करनी चाहिए, साथ ही विश्व के शस्त्रीकरण पर होने वाले प्रतिवर्ष 650 अरब डालर के व्यय को दक्षिणी राष्ट्रों की विकास की आवश्यकता पर खर्च किया जाना चाहिए।[4] इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम सम्मेलन 1984 में नानकुन में

---

1. डॉ० बराल लोकराज: रीजनल एण्ड एक्स्ट्रा रीजिनल लिक्स एण्ड साउथ एशियन कोआपरेशन, पृ० 67.
2. पाठक, जी० के० : "ऐन एक्सरसाइज इन रीजनल कोआपरेशन," इण्डियन जर्नल आफ नेपालीज स्टडीज, वाल्यूम 1, 1985 बी० एच० यू०, वाराणसी.
3. अहमद,इमाजुद्दीन : रीजनल कोआपरेशन इन साउथ एशिया एण्ड इण्डियाज रोल, पृ० 5,आई० डी०एस० ए० जर्नल,वाल्यूम 15, नं० 3, जनवरी-मार्च, 1983, नई दिल्ली.
4. झा, सतीश : ब्रांट का द्वितीय सन्देश, योजना,1-5 जुलाई,1983, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,पटियाला हाउस, नई दिल्ली.

हुआ। जिसे उत्तर-दक्षिण सम्मेलन कहा गया। इस सम्मेलन में दक्षिणी राष्ट्रों ने उत्तरी राष्ट्रों से अर्थव्यवस्था में परिवर्तन की अपील की थी। परन्तु इसका भी सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकला। एक लम्बे अन्तराल के बहस के बाद दक्षिण के देशों को स्पष्ट हो गया कि विकासशील देश उनकी अर्थव्यवस्था के सुधार में कोई सहयोग नहीं कर सकते, अत: उन्हें स्वयं इसके लिए प्रयासरत होना चाहिए। जी० 77 के 124 सदस्यों में कुछ प्राकृतिक संपदा, तो कुछ राष्ट्र कृषि, कुछ तकनीकी दृष्टि से सम्पन्न हैं, अत: ये राष्ट्र एक दूसरे के सभी संभव क्षेत्रों में सहयोग करके आर्थिक सुदृढ़ता की प्राप्ति कर सकते हैं। इसी प्रयास में 22-24 फरवरी,1982 में आधिकारिक स्तर पर दक्षिण-दक्षिण संवाद आयोजित किया गया तथा सन् 1984 में मंत्री स्तर पर दक्षिण-दक्षिण संवाद का आयोजन हुआ।[1]

क्षेत्रीय राष्ट्रों का एक दूसरे पर निर्भरता का एक मुख्य लाभ होगा कि उनके मध्य मौजूद वैमनस्यता कम होगी तथा किसी भी समस्या का समाधान सकारात्मक साधनों द्वारा संभव हो पायेगा। अत: क्षेत्रीय सहयोग का राजनैतिक आर्थिक तथा सामरिक तीनों दृष्टि से महत्वपूर्ण है। विश्व की दो तिहाई जनसंख्या जहाँ एक ओर गरीबी तथा भुखमरी से ग्रस्त है वही भयानक शस्त्रीकरण की प्रवृत्ति ने मानव जीवन की गरिमा की अस्मिता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। अत: सहयोग एवं मैत्री मानव के भौतिक विकास में ही नहीं वरन् उसे प्रच्छन्नता मनोविकार से मुक्ति दिला पाने में सफल होंगे। उक्त सारे तत्वों से क्षेत्रीय सहयोग का औचित्य स्पष्ट होता है। इसी औचित्य को महसूस करते हुए सभी सात दक्षिण एशियाई राष्ट्रों ने क्षेत्रीय सहयोग के प्रति अनुकूल कदम उठाया। यह तथ्य क्षेत्रीय सहयोग की आधारशिला है, जिस पर सार्क की नींव रखी गयी है।

दक्षिण एशिया में सहयोग का प्रश्न ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में देखने से यह स्पष्ट होता है कि दक्षिण एशिया के उपनिवेशवाद के बाद का इतिहास, क्षेत्र के विभिन्न राज्यों के मध्य बहुत ज्यादा संघर्ष और तनाव से भरा पड़ा है। भारतीय उपमहाद्वीप का विखण्डन कर पाकिस्तान का निर्माण करने में अंग्रेजों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। परिणामस्वरूप संघर्ष की एक लम्बी श्रृंखला बनी जिसने इस क्षेत्र के आपसी सहयोग और जीविका को बुरी तरह झकझोर दिया। इसके अलावा अंग्रेजों ने

---

1. धर्मदासानी, एम० डी० (सम्पादित), "कान्टेम्पोरेरी साउथ एशिया," शालिमार पब्लिशिंग हाउस, लंका, वाराणसी, 1985,पृ० 4 5.

राज्यों की सीमाएं बगैर चिन्हित किये छोड़ दिये। दक्षिण एशिया में विवाद और तनाव का मुद्दा यह भी बना कि विभिन्न दक्षिण एशियाई राष्ट्रों द्वारा सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए विभिन्न मार्गों एवं नीतियों का अनुसरण किया गया। औपनिवेशिक वैभवशाली कदमों ने इन विभिन्न मार्गों एवं नीतियों के निर्धारण में पृष्ठभूमि का कार्य किया।[1]

दक्षिण एशिया में जहाँ तक राष्ट्र निर्माण की बात है यह भारत पाकिस्तान और श्रीलंका में सन् 1947-48 में देश के स्वतंत्रता आन्दोलन की सफलता हेतु, विभिन्न मार्गों एवं नीतियों को मानसिक रूप से विभिन्न पारस्परिक असंगत सन्दर्भों में अपनाने के लिए अनिवार्य सा बन गया था।

पाकिस्तान में इस्लाम और उर्दू, बांग्लादेश में इस्लाम और बंगाली, श्रीलंका में बुद्धवाद और सिहलीवाद, नेपाल में हिन्दूवाद और वर्मा एवं भूटान में बुद्धवाद के विभिन्न सम्प्रदाय एवं उपजाति पर बल दिया गया। भारत भी धर्मनिरपेक्षता की छत्रछाया में राजनीतिक उद्देश्य के लिए नीति साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता और भाषावाद की ओर मुड़ा। इन सबका परिणाम यह हुआ कि दक्षिण एशिया के देशों में एक प्रबल जातीय समूहों का आविर्भाव हुआ।

दक्षिण एशिया में अन्तरक्षेत्रीय सम्बन्ध इन्हीं परावर्तनों के कारण असन्तुलित हो गया। हिन्दू-मुस्लिम का गतिशील सम्बन्ध विशेषरूप से भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में परस्पर सीधे रूप में राज्य का राज्य से टकराहट के रूप में जुड़ गया। दक्षिण भारत में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम का उदय भारत और श्रीलंका के मध्य सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला हुआ।[2] किन्तु फिर भी इन देशों में परस्पर आर्थिक, सामाजिक,राजनीतिक और रक्षात्मक रूप से कुछ अनन्योश्रित सम्बन्ध रहे हैं। भारत, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश का समन्वित रूप से सौ दो सौ वर्षों का औपनिवेशिक इतिहास रहा है। इन देशों में रहने वाली विभिन्न जातियों में स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान सहयोगात्मक रुख दृष्टिगत हुआ। भारत, नेपाल तथा भूटान जितना सामाजिक रूप से जुड़े हैं, उतना ही आर्थिक रूप से भी जुड़े हैं। भारत इन देशें में विभिन्न प्रकार की परियोजनाएं भी संचालित कर रहा है। भारत तथा नेपाल के मध्य सीमा खुली है। इन देशों में आपस में अन्य सदस्यों की अपेक्षा व्यापार भी अधिक

---

1. ब्रेचर माइकल, 'द न्यू स्टेट्स ऑफ एशिया,' लंदन (1963).
2. कानर, डब्ल्यू० : "इथनोलाजी एण्ड द पीस इन साउथ एशिया", वर्ल्ड पालिटिक्स,भाग 22,अक्टूबर,1969.

होता है। अत: यह कहना उचित होगा कि इस क्षेत्र के देशों में काफी असमानताओं के बावजूद काफी समानताएँ तथा सहयोग मौजूद हैं जो भविष्य में सहयोग बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं।

दक्षिण-एशियाई देशों द्वारा अपनाये गये आर्थिक विकास की नीतियों में एक तरफ कुछ समानताएँ हैं तो दूसरी ओर कुछ विभिन्नताएँ भी हैं। सभी की विस्तृत पहुँच इस बात पर हैं कि तीव्र औद्योगीकरण मिश्रित अर्थ व्यवस्था केन्द्रीय योजनाएँ, समाजवाद के भड़काऊ तथा साज-समान के मध्य पूंजीवाद को प्रोत्साहन देते हुए राष्ट्र निर्माण करें। अन्तत: यह कहा जा सकता है कि ये सभी सामाजिक विकास को स्थायित्व करने में अभीष्ट लक्ष्य और आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सफल नहीं रहे हैं तथा गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी और अन्तर्राष्ट्रीय पद्धतिपर बढ़ती निर्भरता दक्षिण एशिया में सतत् जारी हैं।

पड़ोसी देशों का यह विश्वास है कि भारत अनिवार्य रूप से एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में अपनी भागीदारी, किसी भी आपसी सहयोग की योजना में अदा कर सकता है तथा उन पर हावी होने एवं उनके प्राकृतिक वृद्धि एवं समृद्धि का शोषण कर सकता है। इसी भय के कारण उन्होंने क्षेत्रीय प्रणाली के विकास में सहयोग न करके पश्चिमी देशों के साथ जैसे जापान और अन्य पश्चिमी यूरोप के देशों में अपना व्यापारिक सम्बन्ध बना लिया है।[1] इनका उद्देश्य सम्भवत: भारत को व्यापार और आर्थिक मामलों में निम्न दिखाना था। इन देशों के भय का एक कारण यह भी हो सकता हैं कि ये राष्ट्र निर्माण एवं आर्थिक विकास की नीति में भारत की अपेक्षा काफी परिवर्तनों को स्वतंत्र तथा मूल रूप में देख चुके हैं। पाकिस्तान में जनप्रतिनिधि एवं नौकरशाही (अधिकारवादी) सरकारी स्वरूपों के मध्य कई बार परिवर्तनों की एक श्रृंखला देखने को मिलती है। श्रीलंका में शक्ति संघर्ष यूनाइटेड नेशनल पार्टी तथा श्रीलंका फ्रीडम पार्टी के मध्य हस्तान्तरित होता रहा है। बांग्लादेश में भयंकर परिवर्तन राजनीतिक पद्धति के बदलाव के रूप में सन् 1975 में देखा जा चुका है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सन् 1960 के बाद राजतंत्र ने नेपाल में अपनी गहरी जड़े जमा ली थीं। तथा अब उसने लोकतंत्र की राह पकड़ ली है। बांग्लादेश, वर्मा, पाकिस्तान, नेपाल तथा श्रीलंका में प्राय:

---

1. जयरामन, टी० के० : 'इन्ट्रा-रीजनल ट्रेड इन द इण्डियन सब कॉन्टीनेन्ट', फारेन ट्रेड रिव्यू, नई दिल्ली, अप्रैल-जून, 1976.

शासन पक्ष के लोगों में असुरक्षा देखी जाती है। अत:आवश्यकता इस बात की है कि दक्षिण एशिया के सभी देश क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा दे जो राजनीतिक समर्थन के साथ-साथ घरेलू शक्ति तथा जनता पर अपनी पकड़ और मजबूत कर सकें। इस दिशा में भारत के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने का प्रयास विगत 3-4 युद्धों के कारण सफल नहीं हो पाया है। कुछ विद्वानों के मतानुसार यह तभी सम्भव है जब पश्चिमी शक्तियाँ विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका उस क्षेत्र में एक कृत्रिम शक्ति का निर्माण करने के लिए खड़ा नहीं होता है।[1]

1966 में ताशकन्द में संयुक्त राज्य अमेरिका की सहमति से सोवियत संघ ने भारत और पाकिस्तान के मध्य मध्यस्थता की थी परन्तु उसने इस उपमहाद्वीप की समस्या के समाधान में एक सामान्य रास्ता ढूंढ़ने के बजाय बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप एवं विलगाव को दर्शाया।[2]

दक्षिण एशिया में सहयोग के विकास में मुख्य बाधक तत्व—औपनिवेशिक वैभवता, राष्ट्रीय एकता की समस्याएँ राष्ट्र निर्माण, असमान आर्थिक विकास और शासन स्थायित्व शक्ति की असमानता जिस पर कि भारत और पाकिस्तान के मध्य कृत्रिम सन्तुलन का दबाव बना हुआ है और वाह्य शक्तियों की भूमिका आदि है। 70 के दशक के बाद उपर्युक्त बाधाओं के बावजूद एक नया माहौल बनाने में सफलता मिली है। संयुक्त राष्ट्र संघ व्यापार और विकास सम्मेलन द्वारा बनाये गये तकनीकी प्रयास,व्यापार के क्षेत्र में, जी-77 के देशों, निर्गुट आन्दोलन का सम्मेलन और अनेक क्षेत्रीय संगठनों (तृतीय विश्व के देशों द्वारा स्थापित) ने तृतीय विश्व के देशों के अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति को समानता प्रदान करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है। इससे उत्तर-दक्षिण सम्बन्ध अच्छे हुए हैं। फलत: कई राजनीतिक एकताएँ तृतीय विश्व के देशों विशेपकर भारत और पाकिस्तान में आर्थिक मोर्चों पर कार्य करने को एक साथ सहमत हो गये हैं। अत: वर्तमान में यह कहना गलत न होगा कि तृतीय विश्व के देशों में सर्वथा शुद्ध सहयोग की भावना पनप चुकी है।

दक्षिण एशिया के सहयोग के मार्ग में एक महत्वपूर्ण बाधक तत्व आन्तकवाद है। उदाहरणस्वरूप श्रीलंका में तमिल टाइगर्स का आतंकवाद, भारत में पंजाब तथा कश्मीर में

---

1. वन्डर्स, विलियम जे०; "इण्डिया पाकिस्तान एण्ड द ग्रेट पावर्स, (लन्दन, 1972).
2. प्रसाद विमल, "द सुपर पावर्स एण्ड द सबकान्टिनेन्ट" इन्टरनेशनल स्टडीज, भाग 13, नम्बर 4, अक्टूबर, 1974

आतंकवाद। भारत में आतंकवादी कार्यवाही में पाकिस्तान का प्रत्यक्ष हाथ रहा है। यद्यपि पाकिस्तान के तत्कालिक राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ भारत के साथ महयोग को बढ़ावा देना चाहते हैं। परन्तु भारत ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया है कि जब तक पाकिस्तान आन्तकवाद जैसी विश्व विनाशक तत्व को प्रश्रय देना बन्द नहीं कर देता, वह सहयोग में साथ नहीं देगा। श्रीलंका ने आतंकवाद से निपटने के लिए सामूहिक रूप से कदम उठाने का सुझाव दिया है। यह सुझाव आज इतना व्यावहारिक है कि आपसी सहयोग बढ़ाने का सबसे विश्वसनीय आधार इसी से निर्मित हो सकता है। इसी प्रकार की समस्या नशीले पदार्थों की तस्करी की है। तस्करों को नेपाल तथा पाकिस्तान में छिपने के लिए सुरक्षित मांदे मिलती हैं।[1] अतः इन तत्वों के होते हुए दक्षिण एशिया में सहयोग की शुरुआत असंभव है।

सोवियत संघ का विघटन एक ऐसी घटना है जिसने आर्थिक भविष्य को ही अनिश्चित नहीं बनाया है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष भी अनेक प्रश्न चिन्ह खड़े कर दिये हैं। पूरी दुनिया में समीकरण बदल रहे हैं। ऐसी स्थिति में सार्क के समक्ष सर्वाधिक प्रभावशाली भूमिका यही शेष है कि इसके सदस्य देश आपसी सहयोग को मजबूत कर अपने को संभावित शोषण से बचावें और साथ ही अपनी आन्तरिक शक्ति बढ़ावें।

सार्क का उद्भव

'दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ' (सार्क) के उद्भव में जिस विशेष पृष्ठभूमि को महत्व दिया जा सकता है, वह है क्षेत्रीयवाद की घटनायें जिनके द्वारा परस्पर विरोधी परिस्थितियों में भी दक्षिण एशिया के सातों देश एक मंच पर इकट्ठा होने के लिए प्रेरित हुए। जिन नीतियो के अधीन सार्क की स्थापना हुई वह सन्1977 और सन 1979 के मध्य निर्धारित की गई थी। यह वह समय था जब इस क्षेत्र के सातो देशो की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो चुकी थी तथा भारत, श्रीलंका और पाकिस्तान में सत्ता परिवर्तन के नवीन शासन व्यवस्थाएं स्थापित हो चुकी थी। उदाहरणस्वरूप भारत में जनता दल की मिली-जुली शासन व्यवस्था का अन्त हुआ और श्रीमती इन्दिरा गांधी पुनः

---

1 नवभारत टाइम्स : नई दिल्ली, 26 नवम्बर, 1990.

प्रधानमंत्री बनी थी। श्रीलंका में राजनीतिक परिवर्तनो के अन्तर्गत श्रीमती भण्डारनायकें के दल की पराजय के बाद जयवर्धने राष्ट्रपति पद पर आरूढ़ हो चुके थे। इधर पाकिस्तान में भी प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था का अन्त हो चुका था। और जनरल जिया-उल हल ने तख्ता पलट कर सैनिक शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली थी। इस प्रकार इस क्षेत्र के प्रमुख बड़े तीनों देशों में राजनीतिक उथल-पुथल के साथ ही समस्याओं से भरा हुआ एक ऐसा वातावरण बना जो क्षेत्र के प्रधानों को साथ एकत्रित करने में सहायक सिद्ध हुआ। सार्क के विकास का सूत्रपात प्राय: 1977 में बांग्लादेश से माना जाता है परन्तु कतिपय विद्वान इसका प्रारम्भ नेपाल से मानते हैं, इनके मतानुसार क्षेत्रीय सहयोग के सम्बन्ध में सर्वप्रथम पहल नेपाल नरेश बीरेन्द्र वीर विक्रम शाह देव ने सन1977 में छब्बीसवें मन्त्री स्तरीय बैठक के दौरान की थी जो कोलम्बों योजना हेतु परामर्श सम्मेलन के रूप में थी और काठमाण्डू में आयोजित कीगई थी। इस सम्मेलन में एशियाई क्षेत्रीय सहयोग के अन्तर्गत भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, चीन के साथ ही अन्य नजदीक के क्षेत्रों को भी रखने का सुझाव दिया गया था।[1] नेपाल के इस सुझाव से यह स्पस्ट होता है कि संभवत: उसका झुकाव चीन की ओर था। किन्तु सहयोग का यह प्रस्ताव बिना निर्णय के ही रह गया। इससे सम्बन्धित एक दूसरा सम्मेलन इण्यिन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स, नई दिल्ली के नेतृत्व में मई, 1978 में आयोजित हुआ जिसमें पाकिस्तान, बंग्लादेश, श्रीलंका तथा नेपाल के विशिष्ट अर्थशास्त्री, प्रबन्धशास्त्री एवं विकास क्षेत्र के विद्वान शामिल हुए ध्यातत्य है इस दौरान दक्षिण एशिया से तात्पर्य भारत बंग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, वर्मा, ईरान,मालदीव और अफगानिस्तान से समझा जाता था। विशेषज्ञों के अनुसार सहयोग की प्रकृति के आधार पर इसमें चीन को भी शामिल किया जा सकता है। जो भी हो, सार्क के उद्भव सम्बन्धी इस वाद-विवाद में न पड़कर उस मान्यता प्राप्त विचार-प्रवाह को ही स्वीकार करना पड़ेगा, जिसे सन् 1977 में बांग्लादेश से आरम्भ माना जाता है।[2]

---

1. जे० डी० खण्ड, 'नेपाल्स रिलेशन्स, कोआपरेशन एण्ड पीस, काठमान्डू · प्रथम खण्ड, 1984, पृ० 161-162.
2. मधुकर शमशेर राना, 'इकोनॉमिक डाइमेन्शन ऑफ रीजनल कोआपरेशन : ए स्ट्रैटजिक पर्सपेक्टिव, रीजनल सिक्यॉरिटी इन साउथ एशिया, संपादक श्रीधर के०खत्री, काठमान्डू (नेपाल), 1987, पृ० 8.

क्षेत्रीय सहयोग की अवधारणा से सम्बन्धित प्रयासों में और पीछे देखने का प्रयत्न करें तो ज्ञात होता है कि इस प्रकार का प्रयास सन् 1950 से ही भारत द्वारा आर्थिक और तकनीकी सहयोग के स्तर पर नेपाल और सिक्किम की संधियों के माध्यम से किया जा चुका था। तथा सन् 1950 की ही कोलम्बो योजना, जो दक्षिण पूर्वी एशिया के आर्थिक विकास और सहयोग से सम्बन्धित थी, की स्थापना हुई थी,जो बहुपक्षीय सहयोग कार्यक्रम पर आधारित थी और जिसमें भारत ने हिस्सा लिया था। साथ ही भारत अपने विभिन्न आर्थिक तथा तकनीकी कार्यक्रमों के माध्यम से, विस्तृत पैमाने पर विस्तार में अपने क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ गया था। अत: स्वाभाविक था कि वह अपने सहयोग के क्षेत्रको बढ़ाने का प्रयास करता। जैसा कि उसके भावी योगदान से स्पष्ट होता है।[1]

क्षेत्रीय सहयोग से सम्बन्धित यह बता देना आवश्यक है कि मई, 1978 में नई दिल्ली की बैठक के दौरान विशेषज्ञों के विचार विमर्श के बाद यह बात सामने आई कि क्षेत्रीय सहयोग की वृद्धि में भौगोलिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ बाधक हो सकती हैं, क्योंकि उन पर कोई रोक नहीं लगाई जा सकती। फिर भी यदि किंचित् उपायों से दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग विभिन्न विरोधाभासों के होने के बावजूद, तृतीय देशों के विकास कार्यक्रम को सामूहिकरूप प्रदान कर सके, तो इससे न केवल दक्षिण एशिया परिवर्तित होगा, अपितु पूरा विश्व प्रभावित होगा। अत: यह आवश्यक है कि दक्षिण एशिया का प्रत्येक देश अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सम्मिलित रूप से परस्पर मिलकर कार्य करे,और क्षेत्रीय सहयोग की स्थाप के लिए आगे आये। यह एक तथ्य है कि दक्षिण एशिया के राष्ट्रों में राजनीतिक दृष्टि से विषमताएं होने के बावजूद उनके विकास सम्बन्धी उद्देश्यों में कई समानताएं विद्यमान हैं। जैसे इस क्षेत्र के सभी देशों की आवश्यकता अपने नागरिकों को सन्तुष्ट करना है, बेरोजगारी को दूर करना है, प्राकृतिक साधनों का उपयोग करना है, जनसंख्या पर नियंत्रण लगाना है तथा प्रत्येक को अपने यहाँ के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना है। इसके अतिरिक्त इन्हें गरीबी और अमीरी के बड़े अन्तर को कम करना है इत्यादि। संक्षेप में दक्षिण एशिया के सभी देशों का यह कर्तव्य है कि अपने उपर्युक्त समान उद्देश्यों के पूर्ति के लिए अपने-अपने आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय को विकसित करते हुए दक्षिण एशिया के क्षेत्र में क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा दें और जनमानस की आकांक्षाओं की पूर्ति करें।

---

1. तबस्सुम इकबाल, 'सार्क-ए नीड ऑफ टाईम एण्ड इण्डियाज रिस्पांस ट्वर्ड्स, एशियान स्टडीज, यूनीवर्सिटी ऑफ फिलीपीन्स, एशियन सेन्टर, डिलिमन क्वीज सिटी, जुलाई-सितम्बर, 1988, पृ० 65.

सार्क के विकास का इतिहास एक ऐसा साक्ष्य रहा है, जिसमें इस क्षेत्र के प्रधानों ने कठोर परिश्रम द्वारा अपनी सामूहिक वृद्धि तथा दूरदर्शिता का प्रथम परिचय एक मंच पर आकर दिया, जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक पद्धति से विश्व के सामने उभरा। इसकी विशेषता यह थी कि क्षेत्रीय सहयोग के उत्कर्ष का विचार सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ, भले ही पारस्परिक हितों में विभिन्नताएं रहीं हों। इस क्षेत्रीय सहयोग का अभिप्राय जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ वह था एक क्षेत्र के भीतर राज्यों का समान उद्देश्यों केआधार पर एक ऐसा संघ निर्मित करना, जो समान आवश्यकताओं का सामना कर सके, समान समस्याओं को हल करसके, और समान हितों की सुरक्षा कर सकें। इस प्रकार दक्षिण एशियाई संघ के विचार में, सहयोग के रूप में संक्षेप में मुख्यत: तीन बातें शामिल की गयीं, जिसका स्वाभाविक रूप सार्क घोषणापत्र में देखने को मिलता है—

(i) क्षेत्रीय सहयोग द्वारा दक्षिण एशिया के प्रत्येक देश को ऐसे लाभ प्राप्त होंगे जो अकेले रहने पर नहीं प्राप्त हो सकते।

(ii) वे राज्य, जो सम्मिलित रूप से इस समूह की रचना कर रहे हैं, सभी प्रभुत्व सम्पन्न राज्य हैं।

(iii) क्षेत्रीय सहयोग की भावना जीवन का लक्ष्य है,रुचि नहीं।[1]

उपर्युक्त तीनों बातें सम्बन्धित देशों के विचारों में कुछ बाधक सी थी, और देशों में पारस्परिक सम्बन्धों में कुछ आशंकायें भी विद्यमान थीं। उदाहरणस्वरूप भारत की पाकिस्तान के नेतृत्व के प्रति आशंका। अर्थात् पाकिस्तान नेतृत्व प्राप्त कर भारत के विरोध में कोई अवांछित कार्यवाही कर सकता है। ध्यातव्य है कि पाकिस्तान अपने जन्म से ही भारत को हमेशा सशंकित दृष्टि से देखता रहा है। इसके अलावा अन्य सम्बन्धित छोटे देश यह अनुभव कर रहे थे कि भारत एक विशाल देश होने के कारण उन पर आधिपत्य जमाने का प्रयास कर सकता है। इन शंकाओं के होते हुए भी क्षेत्रीय सहयोग की भावना में पश्चिमी जग को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था, क्योंकि कुछ राष्ट्रों का झुकाव अमेरिका के प्रति था। जिसके परिणामस्वरूप वह दक्षिण एशियाई क्षेत्र पर अपनी आर्थिक

---

1. दी टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, ९ दिसम्बर, १९८५.

सहायता तथा सुरक्षा प्रदान करके प्रभुत्व स्थापित कर सकता था। जबकि ब्रिटेन इस क्षेत्र को शान्ति क्षेत्र बनाये रखना चाहता था।[1]

बांग्लादेशके राष्ट्रपति स्व० जिआ उर रहमान ने क्षेत्रीयता के विचार से सन् 1977 से सन् 1980 के मध्य पड़ोसी देशों, भारत, नेपाल,पाकिस्तान तथा श्रीलंका की यात्राएँ की।[2] क्षेत्रीय सहयोग के इस विचार को एक आकार देने के लिए 1979 में बैठकें हुई जो सरकारी स्तरपर की थी। अधिकारिक स्तर पर प्रारूप तैयार हो जाने के बाद बांग्लादेश के राष्ट्रपति ने मई, 1980 में सभी सम्बन्धित देशों भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, मालदीव के प्रधानों के पास अपने विशेष दूत भेजकर एक पत्र द्वारा क्षेत्रीय सहयोग से सम्बन्धित एक शिखर बैठक का सुझाव दिया।[3] क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना के लिए उन्होंने अपने सुझाव में केवल उन्हीं देशों को सम्मिलित किया जिसे पूर्ण सहयोग की आशा थी। यहाँ एक प्रश्न यह उठ सकता है कि पड़ोसी देश वर्मा, अफगानिस्तान, इण्डोनेशिया, मलेशिया को क्यों नहीं शामिल किया गया। ऐसा संभवत: इसलिए था क्योंकि सन् 1977 में काठमाण्डू में नेपाल नरेश द्वारा आयोजित बैठक में,जिसमें इन विभिन्न देशों को शामिल करने पर चर्चा हुई थी, लेकिन इस पर आम सहमति नहीं हो पायी थी,दूसरे इसके लिए विभिन्न राजनीतिक सामाजिक तथा भौगोलिक कारण भी हो सकते हैं। वस्तुत: बांग्लादेश ने मई,1980 में प्रेषित पत्र में जिन देशों को शामिल किया था, उन्होंने क्षेत्रीय सहयोग हेतु एक मंच निर्मित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। दक्षिण एशिया के सहयोग से सम्बन्धित इसी क्रम में 25 नवम्बर,1980 को पुन: एक पत्र द्वारा प्रत्येक देश को इस विषय पर विचार विमर्श हेतु एक शिखर बैठक आयोजित करने की बात कही गयी।

---

1. फॉरेन अफेयर्स रिकॉर्ड, मिनिस्ट्री ऑफ इक्सटनरल अफेयर्स, नई दिल्ली, जनवरी, 1978 पृ० 47-57 एण्ड मी कैलघन्स स्टेटमेन्ट इन दी ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ऑन हिज विजिट टू दी सबकान्टीन्ट 3-13 जनवरी,1978, दी टाइम्स, लन्दन,17 जनवरी, 1978; कोटेड बाई-एस० डी० मुनी, साउथ एशियन रीजनल कोआपरेशन : इवोलूशन एण्ड प्रासपेक्टस, ग्लोबल सिक्योरिटी.के० सुब्रमण्यम और जसजीत सिंह,नई दिल्ली, 1987, पृ० 112.
2. सार्क पर्सपेक्टिव, एडीटेड एण्ड पबलिस्ड बाई-सेक्रेट्रियेट ऑफ दी साउथ एशियन एसोसियेशन फॉर रीजनल कोआपरेशन, काठमाण्डू, मई,1987, पृ० 19.
3. वही, पृ० 9.

बांग्लादेश के राष्ट्रपति ने विभिन्न सार्क देशों को भेजे, पत्रों में जिन विषयों पर विचार करने का प्रस्ताव रखा था, उसमें कार्यप्रणाली निश्चित करने पर विशेष बल दिया गया था और यह भी कहा गया था कि आरम्भिक स्तर पर अधिकारी वर्ग एवं तकनीकिविशेषज्ञों के द्वारा योजनाओं तथा विभिन्न कार्यक्रमों का प्रारूप तैयार किया जाना चाहिए। इसके अलावा उनके द्वारा यह भी कहा गया कि उनके द्वारापत्र में दिये सुझावों को सार्क देशों की शिखर बैठक में रखा जाय एवं विचार करके महत्वपूर्ण विषयों पर अन्तिम वर्णन किया जाय। बांग्लादेश के राष्ट्रपति द्वारा प्रेषित पत्र में सहयोग के जिन ग्यारह क्षेत्रों पर विचार विमर्श की संस्तुति की गयी थी, वे निम्न हैं—(i) कृषि तथा अनुसन्धान (ii) जहाजरानी (iii) परिवहन, (iv) दूरसंचार, (v) मौसम विज्ञान, (vi) वैज्ञानिक एवं तकनीकि सहयोग (vii) बाजारों को प्रोत्साहन, (viii) सांस्कृतिक सहयोग, (ix) शिक्षा सम्बन्धी तथा तकनीकी शिक्षा सहयोग, (x) पर्यटन, (xi)संयुक्त साहसिक कार्य।[1]

सार्क की योजनाओं के कार्य क्षेत्र को एक आकार देने के लिए सात सार्क देशों के विदेश सचिवों की 21-23 अप्रैल,1981 में कोलम्बो में प्रथम बैठक आयोजित हुई, जिसमें विचार-विमर्श के दौरान भारत और पाकिस्तान के मध्य संस्थागत ढांचे पर कुछ मतभेद सामने आए किन्तु संयम और विवेक का परिचय देते हुए सभी सचिवों ने एक मौलिक ढांचे को अन्तिम आकार दिया। विदेश सचिवों की इस बैठक में क्षेत्रीय सहयोग के लिए निश्चित मुख्य सिद्धान्तों में किसी भी विषय पर एकमत होकर सर्वसम्मति से निर्णय करना।

तथा द्विपक्षीय कटुता एवं संघर्ष उत्पन्न करने वाले विवादास्पद मामलों को सार्क के क्षेत्र से बाहर रखना प्रमुख था। यह भी निश्चित किया गया कि द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय मामलों के निपटारे के लिए इस क्षेत्रीय सहयोग को माध्यम नहीं बनाया जा सकेगा अपितु इसके समाधान में सम्मानपूर्वक सहायक हो सकेगा। यह भी तय हुआ कि एक उच्च अधिकारी वर्ग की बैठक आहूत की जाये जिसमें श्रीलंका को समन्वय स्थापित करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाये जिससे श्रीलंका यह निश्चित करे कि सहयोग के विभिन्न क्षेत्र क्या-क्या हो सकते हैं। साथ ही इस बैठक के दौरान विशेषज्ञों के

---

1. रीजनल स्टडीज, यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1986 वाल्यूम 4, नं० 4, पृ० 53, मोहम्मद शमशुल हक, "इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स—ए थर्ल्ड वर्ल्ड पर्सपेक्टिव, नई दिल्ली 1987 पृ० ४४.

पांच अध्ययन समूह बनाने का भी निर्णय लिया गया तथा प्रत्येक विभाग हेतु एक-एक समन्वय स्थापित करने वाला देश भी नियुक्त किया गया। इस बैठक में पूर्व चयनित पांच अध्ययन क्षेत्र का विभाजन इस प्रकार किया गया-(1) ग्रामीण विकास (श्रीलंका), (2) मौसम विज्ञान (भारत), (3) स्वास्थ्य और जनसंख्या कार्यक्रम (नेपाल), (4) कृषि (बांग्लादेश), (5) दूरसंचार (पाकिस्तान)।[1]

उपर्युक्त वर्गीकृत कार्यक्षेत्र पर संयुक्त रूप से ठोस प्रस्ताव रखने का सुझाव दिया गया। सचिवों द्वारा सातों सार्क देशों के वरिष्ठतम् अधिकारियों की एक कमेटी भी बनाई गई जो सहयोग के अन्य क्षेत्रों पर विचार करके उसे आगामी बैठक में प्रस्तुत करेगी।

2-4 नवम्बर, 1981 को काठमाण्डू (नेपाल) में सार्क देशों के विदेश सचिवों की दूसरी बैठक सम्पन्न हुई जिसमें प्रथम बैठक में लिये गये निर्णय निम्नवत् हैं—

(i)पांच अध्ययन समितियों के सुझावों को स्वीकृत किया गया। इनकी संस्तुतियों को कार्य रूप में परिणत करने हेतु अध्ययन समूहों को कार्य करने वाले समूहों के रूप में परिवर्तित कर दिया गया, जिसका सभापति प्रत्येक देश का नेतृत्व करने वाला व्यक्ति बारी-बारी से होगा।

(ii)सहयोग हेतु तीन अन्य क्षेत्रों को शामिल किया गया तथा उत्तरदायित्व निर्वहन के लिए तीन अध्ययन समितियाँ गठित कीं। तीन नये क्षेत्र—(क)परिवहन (मालद्वीप), (ख) वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग (पाकिस्तान), (ग) डाक सेवाएँ (भूटान) थे।[2]

सार्क के सभी सातों सदस्य देशों ने एकमत होकर सकारात्मक रुख अपनाया और कार्य को गति देने के लिए सहमत हुए। चूँकि भारत और पाकिस्तान परस्पर एक-दूसरे को शंका की दृष्टि से देखते थे, इसलिए दोनों देशों ने अपने-अपने प्रतिनिधियों को सतर्कतापूर्वक कार्य करने का समझाव दिया। सभी सदस्य देश इस विचार पर एकमत रहे कि 'सार्क' (SAARC) अभी शिशु अवस्था में है और विकास के मार्ग पर अग्रसर है, इसलिए इसे दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में लचीलेपन की दृष्टि के

---

1. सार्क पर्सपेक्टिव एडीटेड एण्ड पॅब्लिस्ड बाई सेक्रेट्रियेट ऑफ दी साउथ एशियन एसोसियेशन फॉर रीजनल कारपोरेशन, काठमाण्डू, मई, 1987, पृ० 19; पार्थ एस० घोष, ''कोआपरेशन एण्ड कॉनफ्लिक्ट इन साउथ एशिया'', नई दिल्ली, 1989, पृ० 9; रीजनल स्टडीज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1987, वाल्यूम 4, सं० 4, पृ० 53.
2. वही, पृ० 19, 19, 53-54.

साथ देखा जाना चाहिए, जिससे कि सहमति प्राप्त अधिक से अधिक कार्यक्षेत्रों में प्रबन्ध को विस्तारित किया जा सके।[1]

सार्क सदस्य देशों के विदेश सचिवों की तृतीय बैठक 7-8 अगस्त, 1982 को इस्लामाबाद में सम्पन्न हुई।[2] इस बैठक में लिये गये निर्णय निम्नांकित हैं—

(i) पांच कार्य कर रहे समूहों की संस्तुतियों को स्वीकृति दे दी गयी और काठमाण्डू में प्रस्तावित तीन अन्य अध्ययन पद्धतियों के प्रतिवेदन को मान लिया गया तथा उन्हें कार्य करने वाले के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

(ii) एक नवीन कार्यक्षेत्र खेलकूद, कलाएं तथा संस्कृति जोड़ा गया और इसके लिए अध्ययन समूहों की नियुक्ति की गयी। किन्तु एस० डी० मुनी के मत में एक और अध्ययन क्षेत्र नियोजन और विकास भी जोड़ा गया।[3]

सभी सार्क देशों की समितियों ने यह भी निर्णय लिया कि कार्यरत समस्त कार्यसमूहों के प्रतिवेदनों का अध्ययन करके एकीकृत सहयोग के कार्यक्रम को तैयार किया जाये जो सर्वसम्मत हो। इसी बैठक में आवश्यक वित्त व्यवस्था के लिए भी संस्तुति की गई और क्षेत्रीय सहयोग के कार्यक्रम को कार्यान्वित किया गया। इसके अतिरिक्त इस बैठक में आगामी 1983 में होने वाली विदेश मंत्रियों की बैठक के कार्यस्थल तथा कार्यक्रम के सम्बन्ध में भी विचार किया गया।

इस्लामाबाद की बैठक में लिये गये निर्णय के अन्तर्गत समस्त सात सार्क देशों की समिति की एक बैठक 10-13 जनवरी, 1983 को कोलम्बो में सम्पन्न हुई। इस बैठक में कार्य करने वाले समूहों के प्रधान तथा सातों देशों के उच्च पदाधिकारी उपस्थित थे। इस समिति के पूर्व संस्तुतियों के आधार पर विस्तृत कार्यक्रम तैयार किया गया जिसमें स्वीकृत नौ में से आठ कार्यक्षेत्रों पर कार्यक्रम तैयार किया गया, जो इस प्रकार थे—(क) ग्रामीण विकास, (ख) मौसम विज्ञान, (ग) डाक सेवाएं, (घ)

---

1. रीजनल स्टडीज कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इग्लैण्ड, 1986 वाल्यूम 4, नं० 4, पृ० 53-54.
2. सार्क पर्सपेक्टिव एडीटेड एण्ड पब्लिस्ड बाई सेक्रेट्रियेट ऑफ दी साउथ एशियन एसोसियेशन फॉर रीजनल कारपोरेशन, काठमाण्डू, मई, 1987, पृ० 19.
3. पार्थ एस० घोष, कोआपरेशन एण्ड कानफ्लिक्ट इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, 1989, पृ० 9 10

स्वास्थ्य और जनसंख्या कार्य, (ङ) दूरसंचार, (च) विज्ञान और तकनीकी ज्ञान, (छ) कृषि, (ज) परिवहन।[1]

समिति द्वारा प्रत्येक क्षेत्र हेतु अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन कार्यक्रम कार्यान्वयन के लिए संस्तुति की गयी। अल्पकालीन कार्यक्रमों के अन्तर्गत आंकड़ों का फेर-बदल विशेषज्ञों की कार्यमेवा व्यवस्था, प्रशिक्षण और अनुसंधान परिसंवादों का आयोजन और कार्यशालाओं की व्यवस्था शामिल थी जो बगैर विलम्ब किये व्यय भागीदारी के सिद्धान्त पर आधारित थे। दीर्घकालीन कार्यक्रम के अन्तर्गत क्षेत्रीय संस्थाओं की स्थापना, पूर्व संचालित प्रशिक्षण और अनुसंधान में समन्वय और सहयोग, सदस्य देशों की सहमति प्राप्त राष्ट्रीय सुविधाओं के सहयोग कार्यक्रम में वृद्धि करना तथा स्वीकृत योजनाओं को पूर्ण करने के लिए सम्बन्धित देशों द्वारा पर्याप्त मात्रा में धन की व्यवस्था करना सम्मिलित किया गया।[2]

20-30 मार्च, 1983 को ढाका में सार्क देशों के विदेश सचिवों की चतुर्थ बैठक सम्पन्न हुई जिसमें पूर्व समिति द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रम पर पुनर्विचार किया गया और एकीकृत कार्यक्रम (IPA) को स्वीकृति दे दी गयी। इस बैठक में कार्य क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने तथा एकीकृत कार्यक्रम के कार्यान्वयन पर विचार करने हेतु, जिसमें सदस्य देशों द्वारा धन की व्यवस्था किये जाने की बात तय हुई थी, विदेश सचिवों के स्तर की एक स्थायी समिति बनायी गयी। इस बैठक का एक महत्वपूर्ण निर्णय 'एकमत होने के सिद्धान्त' को स्वीकृत करना था, न कि सामंजस्य स्थापन की प्रक्रिया को। इसी बैठक में पूर्व स्वीकृत नौ में से आठ कार्यक्षेत्रों हेतु तकनीकि समितियाँ भी निर्मित की गयीं। नवें कार्यक्षेत्र खेलकूद, कला आदि के लिए तकनीकि समिति गठित करने का कार्य अभी शेष था।

इस समिति में उच्च अधिकारियों के मध्य विचार-विमर्श के तहत ई० ई० सी० तथा अन्तर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ द्वारा प्रस्तावित आर्थिक सहायता के सुझाव को भी स्वीकारा गया। इसी बैठक में अगस्त, 1983 में दिल्ली में विदेश मंत्रियों की आगामी बैठक आयोजित करने का भी निर्णय

---

1. रीजनल स्टडीज कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1986 वाल्यूम 4, नं० 40, पृ० 54
2. वही, पृ० 54 55.

लिया गया। वस्तुतः इस बैठक का निर्णय क्षेत्रीय सहयोग तथा एकीकृत कार्यक्रम को प्रथम चरण माना जा सकता है।[1]

बैठक के उपर्युक्त निर्णयों तथा स्वीकृत मुद्दों से सम्बन्धित भारतीय विदेश मंत्री पी० वी० नरसिम्हा राव की प्रथम प्रक्रिया अति उत्साहवर्धक रही। उन्होंने दक्षिण एशिया के पत्रकारों के एक दल को यह बताया कि किसी भी भागीदार देश को किसी भी प्रकार का नुक्सान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। उनका कथन था कि जो भी निर्णय सार्क सदस्य देशों को एकमत से स्वीकार होंगे, वहीं अपनाया जायेगा और उसी पर कार्यवाही की जायेगी।[2]

वस्तुतः तीन वर्ष तक चली उपर्युक्त विदेश सचव स्तर की समस्त बैठकों में भविष्य की राजनीतिक स्तर की बैठकों के लिए एक सुदृढ़ भूमिका तैयार कर ली गयी जिससे आगामी होने वाली विदेश मंत्रियों की बैठक में कार्य को गतिशीलता प्रदान हो और ऐसा ही हुआ।

28-29 जुलाई, 1983 को नई दिल्ली में हुई विदेश सचिवों की पांचवीं बैठक में अगस्त,1983 में आयोजित होने वाली विदेश मंत्रियों की बैठक हेतु पृष्ठभूमि तैयार की गयी।

सार्क के सातों सदस्य देशों के विदेश मंत्रियों की प्रथम बैठक 1-2 अगस्त, 1983 को नई दिल्ली में सम्पन्न हुई। इस बैठक की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि अभी तक सचिव स्तर की बैठकों में एशियाई सहयोग के कार्यक्रम पर विचार-विमर्श और निर्णय होते रहे तथा कार्यक्षेत्रों का निर्धारण होता रहा था किन्तु सार्क की स्थापना नहीं हो पायी थी, परन्तु विदेश मंत्रियों की इस बैठक में 'सार्क' (SAARC) की औपचारिक स्थापना संभव हो सकी थी। इस बैठक में नामित संस्था का नाम दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की स्थायी समिति कहा जायेगा।

विदेश मंत्रियों की प्रथम बैठक का उद्घाटन करते हुए भारतीय प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने कई महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि इस क्षेत्र के देशों को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग अपनी आर्थिक समस्याओं से जूझने के स्थान पर उनका मामना सामूहिक रूप

---

1. वही०, पृ० 55.
2. दी इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 21 अप्रैल, 1983.

से करने में ही इस क्षेत्र को विशेष लाभ होगा। उनका कथन था कि यदि संयुक्त रूप से क्षेत्रीय कार्यक्रमों में रुचि लेते हुए तथा गुट निरपेक्ष ढांचे के भीतर कार्य करें, तो औद्योगिक और विकसित देशों के साथ समन्वय स्थापित करते हुए हमें अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के विकास में पर्याप्त सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त उन्होंने जोरदार शब्दों में आश्वस्त किया कि इस क्षेत्रीय सहयोग का किसी भी प्रकार का कोई सैनिक उद्देश्य नहीं है, और न परस्पर किसी के विरुद्ध कोई कार्य करने का इरादा है।" इन्दिरा गाँधी के इस वक्तव्य से क्षेत्रीय सहयोग के प्रति शुद्ध नीति का स्पष्टीकरण हो जाता है।[1]

विदेश मंत्रियों की इस बैठक में लिये गये महत्वपूर्ण निर्णयों का विवरण निम्नवत् है—

1. 2 अगस्त, 1983 को दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग के घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किये गये, और उसे एक वैधानिक रूप दिया गया।

2. एक स्थायी समिति की स्थापना की गयी और संगठन के निर्माण की आवश्यकता, उद्देश्य, सिद्धान्त, प्रबन्ध, कार्यसूची का विवरण तैयार किया गया।

3. पूर्व निर्धारित दो सिद्धान्तों को स्वीकृत किया गया, जिसके अन्तर्गत सार्क देशों द्वारा किसी विषय पर एकमत होकर ही निर्णय लिया जायेगा तथा द्विपक्षीय संघर्षों अथवा विवादों को इस मंच पर नहीं उठाया जायेगा।

4. आवश्यक कार्यों के लिए धन की व्यवस्था स्वेच्छा के सिद्धान्त पर समस्त सदस्य देशों द्वारा परस्पर सहयोग से की जायेगी।

5. वार्षिक बैठकों में सार्क के विकास पर पुनर्विचार किया जायेगा।

6. बैठक में यह निर्णय लिया गया कि उन राष्ट्रीय योजनाओं, संगठनों एवं शिक्षण संस्थाओं के द्वारा क्षेत्रीय सहयोग के विकास में आवश्यक सहायता ली जाय, जो सम्बन्धित क्षेत्रों में कार्य कर रही है।

---

1. रीजनल स्टडीज कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1986 वाल्यूम 4, नं० 40, पृ० 55.

7. विदेश सचिवों के निर्देशन में परिश्रम पूर्वक तैयार किये गये अध्ययन समूहों एवं कार्य करने वाले समूहों द्वारा सहमति प्राप्त एकीकृत सहयोग को नौ कार्यक्षेत्रों को स्वीकृति प्रदान की गयी, और उन्हें कार्यरूप में परिणत करने का निर्णय लिया गया।

8. साथ ही इस बैठक में, आगामी, विदेशमंत्रियों की बैठक तथा उसमें शिखर बैठक की तिथि एवं स्थान निर्णय पर भी विचार किया गया।[1]

विदेश मंत्रियों की इस बैठक की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—सार्क देशों के विदेशमंत्रियों ने यह संकल्प किया कि वे सब मिलकर आत्मविश्वास के लिए पड़ोसी सम्बन्धों को प्रोत्साहित करेंगे तथा गरीबी एवं रोग पर नियंत्रण पाने के लिए प्रयासरत रहेंगे। सभापति के पद से भारतीय विदेशमंत्री पी० वी० नरसिम्हाराव ने दक्षिण एशियाई क्षेत्र से गरीबी, भुखमरी, कुपोषण तथा निरक्षरता एवं बीमारी की जड़ें समाप्त करने हेतु संयुक्त रूप से कार्य करने का आवाहन किया। उनका कथन था कि दक्षिण एशिया के देशों को अपने ही प्रयत्नों के बल पर जन-जीवन में गुणात्मक सुधार के लिए प्रयत्न करना होगा।[2]

बांग्लादेश के विदेश मंत्री के मत में सार्क के गठन से एक अरब लोग प्रभावित होंगे अर्थात् यह विश्व को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण और रचनात्मक घटना है। उन्होंने आसियान संघ की भाँति सार्क का भी एक संघ बनाने का प्रस्ताव रखा।

पाकिस्तानी विदेशमंत्री की दृष्टि में यह क्षेत्रीय सहयोग सकारात्मक एवं रचनात्मक कार्यों को प्रोत्साहित करेगा, जो कि शान्त वातावरण बनाने एवं अच्छे पड़ोसी के सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होगा।

नेपाल के विदेशमंत्री के विचार में इस बैठक के फलस्वरूप हम अपने विचारों को आम सहमति के आधार पर ठोस रूप दे सकेंगे। उनके मतानुसार वर्तमान कालीन परिस्थिति में कोई भी देश एकान्त होकर उन्नति नहीं प्राप्त कर सकता। अतः सभी दक्षिण एशियाई देशों को सामूहिक

---

1. रीजनल स्टडीज कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1986 वाल्यूम 4, नं० 4, पृ० 55-56.
2. दी हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 2 अगस्त, 1983.

सहयोग एवं जागरूकता के साथ कार्य करना होगा। उनके दृष्टिकोण से सार्क का मंच इस क्षत्र में जनसाधारण के मनोबल को उच्चता प्रदान करने में असीम शक्ति प्रदान करगा।

भूटानी विदेशमंत्री ने इस विचार गोष्ठी को एक मनोवैज्ञानिक विचार प्रवाह बताया, जो हमें भविष्य की ओर देखने की दूरदर्शितापूर्ण प्रबल शक्ति के साथ आगे ले जायेगा। उनके कथनानुसार हमें संकीर्ण विचारों को त्यागकर अपने पारस्परिक सम्बन्धों को बिगाड़ने वाली भावनात्मक बाधाओं को उखाड़ फेंकने हेतु, आपसी विश्वास के साथ कार्य करना होगा, हम सबकी राजनीतिक इच्छा है कि हमें पहले से अच्छे और सुन्दर भविष्य बनाने हेतु लग्नता से कार्य करना होगा।

श्रीलंका के विदेशमंत्री का मत था कि इस क्षेत्रीय सहयोग की दो वर्ष पूर्व कोलम्बों में सम्पन्न बैठक का उद्घाटन करने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हुआ था। उनके विचार में यह क्षेत्रीय सहयोग रचनात्क ढंग से कार्य करते हुए जनता की दशा में सुधार लायेगा।

मालदीव के विदेशमंत्री के विचार में हम सभी के समक्ष जो कठिन, पेंचीदा और जटिल समस्यायें खड़ी हैं उन्हें उत्तरदायित्व की भावना, अधिक समझदारी तथा सामूहिक प्रयत्नों से सुलझाया जा सकता है।[1]

विदेशमंत्रियों की सम्पन्न प्रथम बैठक अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण साबित हुईं—प्रथम, दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग को एक राजनीतिक जामा पहनाते हुए, सार्क केसभी सदस्य देशों ने इसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया। द्वितीय, यह बैठक बड़े ही असमंजसपूर्ण एवं संघर्षमय मानसिक वातावरण के मध्य सम्पन्न हुई थी क्योंकि इसी दौरान कोलम्बो (श्रीलंका), में जुलाई, 1983 में ही तमिल विरोधी दंगे आरम्भ हो गये थे। अत: अर्न्तक्षेत्रीय सहयोग के विरोधी वातावरण में सभी नेताओं में एकमत सहमति के लिए संकोच व्याप्त था। परन्तु फिर भी इस बैठक को सफलता हासिल हुई। लेकिन सार्क के स्थायी सचिवालय के लिए कोई निर्णय इस बैठक में ही नहीं हुआ था जबकि बांग्लादेश प्राय: इसका समर्थक रहा था।[2]

---

1. दी हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 2 अगस्त, 1983.
2. इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 28 जुलाई, 1983.

विदेश मंत्रियों की बैठक आयोजित होने के पूर्व ही सभी देशों ने 'सार्क' हेतु वित्त व्यवस्था के रूप में अपने अंशदान की घोषणा पहले ही कर दी थी, जिसके अनुसार सन् 1983-84 के लिए दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग के कार्यक्रमों के खर्च के लिए भारत की ओर से 50 लाख रुपये तथा बांग्लादेश ने 5 मिलियन टका (2.24 मिलियन रुपयों के बराबर), नेपाल ने 1.5 मिलियन नेपाली सिक्के, पाकिस्तान ने 3.6 मिलियन पाकिस्तानी सिक्के देने की घोषणा की। इसी मध्य यूरोपीय आर्थिक समुदाय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दूर संचार संघ द्वारा भी आर्थिक सहायता देने की घोषणा कर दी गयी थी।[1] ई० ई० सी० से एक लाख पचास हजार यूरोपियन यूनिट्स तथा यू० एन० डी० पी० के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय दूर संचार संघ द्वारा दो लाख बीस हजार डॉलर की सहायता दी गयी।[2]

अभी तक सहयोग के कार्यक्षेत्रों केलिए नौ क्षेत्र चयनित किये गये थे, जिसमें व्यापार और वाणिज्य शामिल नहीं किया जा सका था, क्योंकि इस पर आम सहमति न होने के कारण उसे भविष्य के लिए छोड़ दिया गया।

यद्यपि सात सार्क सदस्य देशों के द्वारा व्यतिगत रूप से इच्छानुसार, सार्क कार्यक्रमों के लिए धन देने की बात स्वीकार की जा चुकी थी, तथापि धन में कमी हो जाने की स्थिति में विकसित देशों से आर्थिक सहयोग प्राप्त करने की सुविधा पर सहमति हो चुकी थी। किन्तु इस सहयोग के साथ शर्त यह होगी कि कोई भी आर्थिक सहायता देने वाला देश सार्क की कार्यवाही पर अपना कोई विचार नहीं थोपेगा और न ही सार्क की आन्तरिक अथवा वाह्य नीतियों पर किसी प्रकार का दबाव डालेगा। साथ ही इस प्रकार प्राप्त विदेशी आर्थिक सहायता के व्यय का क्षेत्र भी निर्धारित कर लिया गया।[3]

विदेशमंत्रियों की इस प्रथम बैठक में क्षत्रीय सहयोग हेतु स्वावलम्बन को अपनाने पर बल देने की आवश्यकता को महसूस किया गया। श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने सामूहिक सामर्थ्य और योग्यता का प्रयोग करके जनता की सुख-समृद्धि के लिए प्रयासरत रहने पर बल दिया। उनका कथन था कि हमें उन बातों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा, जो हमें एकता के सूत्र में बांध सकती है ताकि वे भी

---

1. वही.
2. दी नेशनल हेरॉल्ड, नई दिल्ली, 29 जुलाई, 1983; दी पैट्रियाट, नई दिल्ली, 30 जुलाई, 1983.
3. पैट्रियाट, नई दिल्ली, 30 जुलाई, 1983.

जो हमें विभाजित करती है। इस निश्चय के साथ ही हमें सामूहिक आत्मनिर्भरता के लिए शान्तिपूर्वक विकास करना होगा।[1]

सार्क देशों के विदेश मंत्रियों की यह बैठक दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं थी, अपितु उन विभिन्न दृष्टियों से भी सार्क की स्थापना एक ऐतिहासिक घटना थी, जो राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से विश्व को प्रभावित कर सकने की सामर्थ्य रखती थी। इस बैठक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि पाकिस्तान की विरोधी नीतियों व शंकाओं एवं श्रीलंका की राजनीतिक घटनाओं जैसी विरोधी परिस्थितियों के मध्य भी समस्त सार्क देशों के विदेशमंत्री सार्क की स्थापना के प्रश्न पर सर्वसम्मति से एकमत थे।

सार्क के सातों सदस्य देशों के विदेश सचिवों की पूर्व निर्मित स्थायी समिति की एक बैठक में 27-28 फरवरी, 1984 को दिल्ली में सम्पन्न हुई जिसमें एकीकृत कार्यक्रम के कार्यान्वयन तथा विकास प्रक्रिया को अन्तिम व्यावहारिक रूप दिया गया। इसी समिति में भारत और पाकिस्तान ने इस बात पर सहमति जतायी कि दोनों देश अपने-अपने क्षेत्र में परिवहन योजनाओं के निर्माताओं हेतु एक-एक प्रशिक्षण संस्था गठित करेंगे। इसी प्रकार श्रीलंका, ग्रामीण गरीबों हेतु एक कारखाने की स्थापना करेगा, नेपाल परिसंवाद, मलेरिया तथा कुष्ठ निवारण के लिए कार्यक्रम आयोजित करेगा, भूटान को समुद्री कौशल एवं टेबुल टेनिस के लिए प्रशिक्षण संस्थाएँ खोलने तथा मालदीव को पानी के प्रबन्ध व्यवस्था का कार्य सौंपा गया।[2]

भारत के प्रस्ताव के अनुसार स्थायी समिति ने विश्व की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रीय देशों को मिल जुलकर अपने यहाँ उसे सुदृढ़ बनाने का आहवान किया। इसके पूर्व जो नौ तकनीकि समितियाँ बनायी गयी थीं, उनके सुझावों पर भी विचार करते हुए एक क्षेत्रीय मौसम विज्ञान अनुसंधान केन्द्र खोलने तथा उसके लिए धन एवं साधनों की व्यवस्था पर भी विचार किया गया। यह भी निश्चित हुआ कि सहयोग बढ़ाने के उद्देश्य से दक्षिण एशिया के ऐतिहासिक और पुरातत्व

---

1. जी०के० रेड्डी, सट्रेस ऑन रीजनल कोआपरेशन फॉर कलेक्टिव सेल्फ रिलायन्स, दी हिन्दू मद्रास, 2 अगस्त, 1983.
2. रीजनल स्टडीज कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1986 वाल्यूम 4, नं० 40, पृ० 56.

सम्बन्धी सम्मेलनों को भी आयोजित किया जाय। पूर्व स्वीकृति एकीकृत कार्यक्रम को सहयोग के उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों तक ही सीमित रखने का निर्णय किया गया।[1]

10-11 जुलाई, 1984 को माले में विदेशमंत्रियों की द्वितीय बैठक हुई। विदेशमंत्रियों की इस बैठक के आयोजित होने के पूर्व स्थायी समिति की द्वितीय बैठक आरम्भ हो चुकी थी। बैठक में 1984 के अन्तिम त्रिमास में प्रथम शिखर सम्मेलन ढाका में आयोजित करने पर विचार किया गया था। इसके अलावा दक्षिण एशिया के समस्त देशों की राजधानियों को हवाईमार्ग से जोड़ेजाने पर भी बल दिया गया। विदेशमंत्रियों ने यह स्पष्ट संकेत दिया कि पहले आर्थिक समस्याओं को आपसी .समान सहयोग के साथ सामना किया जाय, और सामूहिक व्यवहार से सार्वभौमिक समस्याओं का समाधान खोजा जाय। बैठक के दौरान विभिन्न क्षेत्रों में वस्तुओं के गिरते मूल्यों से व्यापार में मंदी, सीमाशुल्क में वृद्धि, कर्जो का भारी बोझ तथा उसे अदा करने की समस्या एवं धन की निम्नता के विषय में भी विस्तार से चर्चा की गयी।[2]

5-7 फरवरी 1985 को माले (मालद्वीव) में हुई स्थायी समिति की बैठक में न्यूनाधिक रूप से पूर्व की बैठक के निर्णयों को दोहराया गया, और उन पर विचार विमर्श किया गया तथा तीसरी बैठक से सम्बन्धित आगामी बैठक ढाका में आयोजित करने का निर्णय लिया गया।

इसी दौरान सार्क की क्षेत्रीय राजनीतिक स्थिति में संघर्ष का वातावरण व्याप्त हो गया। श्रीलंका में गँभीर जातीय संकट उत्पन्न हो गया। इन कठिन परिस्थितियों के बावजूद भारत एवं श्रीलंका ने संयम का परिचय दिया और ऐसी कोई घटना सामने नहीं आई, जो परस्पर विश्वास को ठेस पहुँचाने वाली हो। इसी बैठक में सचिवालय की स्थापना के लिए भी एक प्रस्ताव लाया गया, किन्तु उसे भविष्य के लिए स्थगित कर दिया गया।[3]

---

1. इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 28 जुलाई, 1984; पैट्रियाट, नई दिल्ली, 30 जुलाई, 1984, जी०के० रेड्डी, सट्रेस ऑन रीजनल कोआपरेशन फॉर कलेक्टिव सेल्फ रिलायन्स, दी हिन्दू, मद्रास, 2 अगस्त, 1984.
2. रीजनल स्टडीज कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1986 वाल्यूम 4, नं० 40, पृ० 56; सार्क पर्सपेक्टिव एडीटेड एण्ड पब्लिस्ड बाई सेक्रेट्रियेट ऑफ दी साउथ एशियन एसोसियेशन फॉर रीजनल कारपोरेशन, काठमाण्डू, मई, 1987, पृ० 19; पार्थ एस० घोष, कोआपरेशन एण्ड कानफ्लिक्ट इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, 1989, पृ० 9 10.
3. रीजनल स्टडीज कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1986 वाल्यूम 4, नं० 40, पृ० 56; पार्थ एस० घोष, कोआपरेशन एण्ड कानफ्लिक्ट इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, 1989, पृ० 9 10.

13-14 मई, 1984 को थिम्पू (भूटान) में विदेशमंत्रियों की तृतीय बैठक आयोजित हुई। ध्यातव्य है कि पूर्ण स्थायी समिति की होने वाली चतुर्थ बैठक आयोजित होनी थी किन्तु भारत और श्रीलंका के मध्य तमिल समस्या पर गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो जाने के कारण बड़ी बाधा आयी और बैठक कठिनता से संभव हो सकी। उक्त स्थायी समिति तथा विदेशमंत्रियों की बैठक का विशेष महत्व इस कारण था कि इन्हीं बैठकों के दौरान हुए विचार-विमर्श के पश्चात् ढाका में प्रथम शिखर सम्मेलन का आयोजन होना था। तमिल समस्या की गम्भीरता को देखते हुए श्रीलंका की सरकार ने अन्तिम क्षणों में इस बैठक में शामिल न होने का निर्णय लिया। वस्तुत: श्रीलंका का यह निर्णय नितान्त विरोध के कारण था। भारतीय विदेश विभाग के राज्यमंत्री द्वारा राज्य सभा में यह वक्तव्य दिया गया कि श्रीलंका की सरकार तमिलों के मध्य मतभेद पैदा करके उन्हें विभक्त कर रही है। वास्तव में श्रीलंका पर यह एक गम्भीर आरोप था, जो तत्कालीन क्षेत्रीय सहयोग हेतु विकासात्मक परिस्थियितों की दृष्टि से तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से भी सम्भवत: उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भारत के राज्यमंत्री के उक्त वक्तव्य के तत्काल बाद श्रीलंका के तत्कालीन कार्यवाहक विदेशमंत्री ने प्रतिक्रियास्वरूप अपने देश की संसद में अपनी सरकार के इस निर्णय को स्पष्ट कर दिया कि श्रीलंका यद्यपि सार्क से अलग नहीं होगा, तथापि सार्क की बैठकों में हिस्सा लेना या न लेना उसकी स्वेच्छा पर निर्भर करेगा। साथ ही यह भी बताया गया कि श्रीलंका का सार्क की बैठक में शामिल होना इस बात पर निर्भर है कि उसे पूर्ण सन्तुष्टि हो जाए कि सार्क का सर्वाधिक बड़ा देश अर्थात् भारत दक्षिण एशियाई क्षेत्र में सबसे बड़ा दबंग अथवा धौंस जमाने वाला देश नहीं बनेगा।[1]

विदेश मंत्रियों की बैठक के पूर्व हुई स्थायी समिति की बैठक में शिखर बैठक की संस्तुति को अन्तिम रूप दिया जा चुका था। विदेशमंत्रियों द्वारा इस संस्तुति को स्वीकार कर लिया गया और यह भी निश्चित हो गया कि शिखर बैठक का आयोजन 7-8 दिसम्बर, 1984 को ढाका में किया जायेगा। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चय किया गया कि ढाका में होने वाली शिखर बैठक के पूर्व स्थायी समिति तथा विदेशमंत्रियों की बैठक आयोजित की जायेगी, जिसमें शिखर बैठक का कार्यक्रम निर्धारित किया जायेगा साथ ही इस बैठक में सार्क संगठन के स्थायी ढांचे हेतु एक विस्तृत घोषणा

1. रीजनल स्टडीज कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1986 वाल्यूम 4, नं० 40, पृ० 57.

पत्र, तथा विदेशमंत्रियों की एक सर्वप्रधान कौंसिल बनाने की संस्तुति की गई, और शिखर बैठक में इसकी स्वीकृति के लिए एक प्रस्ताव भी बनाया गया।

सार्क संगठन के गठन से सम्बन्धित विदेशमंत्रियों की इस तृतीय बैठक का एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव संस्था के नाम में परिवर्तन का था अर्थात् दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग (SARC) का नाम बदल कर अब 'दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन' (SAARC) करने पर बल दिया गया। ज्ञातव्य है कि इस प्रस्ताव को शिखर बैठक में स्वीकार कर इसकी घोषणा की जानी थी।[1]

इसके अलावा विदेशमंत्रियों की इस बैठक (तृतीय) का विशेष महत्व इसलिए है कि भारत द्वारा सहयोग के क्षेत्र में विकास में वृद्धि हेतु एक प्रस्ताव रखा गया, जिसमें व्यापार आर्थिक सहयोग तथा ऊर्जा के उत्पादन में सहयोग होना था। भारत के इस प्रस्ताव का प्रमुख उद्देश्य व्यापार और पूँजी व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की तुलना में मात्र 6 प्रतिशत ही था। बांग्लादेश ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया किन्तु पाकिस्तान सहित अन्य चार सदस्य देशों ने इस प्रस्ताव को नकार दिया, क्योंकि उन्हें भारत के बढ़ते व्यापार से भय था। उन्हें यह शंका थी कि इससे भारतीय उत्पादन उनके देश के व्यापार में पूर्ण रूप से छा जायेगा। पाकिस्तान के साथ अन्य चारों सार्क सदस्य देशों की यह आशंका मात्र व्यापारिक स्थिति एवं अपने-अपने देशों में वस्तुओं के आयात निर्यात की व्यवस्थाओं पर आधारित था।

स्पष्ट है कि क्षेत्रीय सहयोग अब चरम सीमा पर विकसित होने के लिए अन्तिम क्षणों पर था, अतः इस बैठक हेतु जो पहली आवश्यकता महसूस की गयी थी वह थी आर्थिक कौशल में जागृति लाना। यह कार्य केवल पारस्परिक व्यापार के विकास से ही संभव था, न कि विदेशी आर्थिक सहायता पर। क्षेत्रीय विकास हेतु यह भी आवश्यक माना गया कि सार्क के उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों की विवेचना की जाय और उन्हें स्पष्टतः परिभाषित किया जाय। साथ ही दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की प्रबन्ध व्यवस्था पर भी ध्यान देने के साथ-साथ सर्वसम्मति से वित्तीय व्यवस्था के सन्दर्भ में नियम बनाने की आवश्यकता भी अनुभव की गयी। इससे सम्बन्धित और दो बातें आवश्यक समझी गयीं

---

1. वही.

प्रथम, क्षेत्रीय सहयोग एवं संगठन के विकास से सम्बन्धित कार्य योजना, द्वितीय, राजनीतिक और सुरक्षा की समस्या। जहाँ तक विकास के कार्ययोजना का प्रश्न है, नौ कार्यक्षेत्रों को पूर्व ही स्वीकृत कर लिया गया था। राजनीतिक और सुरक्षात्मक समस्या के समाधान का संकेत दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग घोषणा की प्रस्तावना में ही निहित था कि सामूहिक प्रयासों द्वारा क्षेत्र की शान्ति को स्थायित्व कठोरता से वैदेशिक नीतियों का विकास, परस्पर शक्ति का प्रयोग न होना तथा शान्तिमय उपायों से समस्त मतभेदों का निपटारा करना, आपसी समझदारी को बढ़ाना तथा अच्छे पड़ोसियों के सम्बन्ध व सहयोग की स्थापना करना आदि सभी कार्य-सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना से ही सम्पन्न होंगे।[1]

सार्क के पूर्ण रूप में अस्तित्व में आने के पूर्व अधिकारिक स्तर पर संस्था के उद्देश्यों पर जो विचार विमर्श हुआ था, उसमें क्षेत्रीय राष्ट्रों की सामूहिक आत्मनिर्भरता तथा जनजीवन के स्तर में गुणात्मक सुधारों को प्रोत्साहन देने का उद्देश्य स्पष्ट हो चुका था। इन्हीं उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए अध्ययन समितियाँ, कार्यवाही समितियाँ, तकनीकी समितियाँ तथा एक स्थायी समिति आदि गठित की गयी, जिनका उत्तरदायित्व योजनाओं तथा कार्यक्रमों को स्पष्ट करना, स्वीकार करना तथा आवश्यक धन एकत्रित करने के तरीकों पर विचार करना आदि था। इसके अलावा यह भी निर्णीत किया गया कि सार्क के सभी कार्य पारस्परिक विश्वास, समझदारी, सहानुभूति के साथ ही राष्ट्रीय आकांक्षाओं और अभिलाषाओं को पूर्ण करने हेतु क्षेत्रीय सहयोग पर आधारित होना चाहिए।[2]

सार्क का उद्देश्य केवल धन एकत्रित करके आर्थिक सहयोग करने तक ही सीमित नहीं था अपितु इसके साथ ही सामूहिक स्वालम्बन की वृद्धि करना और उसे सुदृढ़ बनाना भी था। संक्षेप में कहा जाय तो सार्क का उद्देश्य सभी राष्ट्रों में एक विशाल दृष्टिकोण उत्पन्न करना था। वस्तुत: अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का सामना करने की प्रथम शर्त सामूहिक सहयोग होना चाहिए, और यह सार्क की अन्तरात्मा में पूर्ण रूप से दृष्टिगत है। यह तथ्य ढाका के घोषणा-पत्र में स्पष्टत: दिखायी

---

1. एस० डी० मुनी, ''साउथ एशियन रीजनल कोआपरेशन : इवोल्यूशन एण्ड प्रासपेक्ट्स, ग्लोबल सिक्योरिटी, एडीटर्स के० सुब्रमण्यम एण्ड जसजीत सिंह, नई दिल्ली, 1987, पृ० 115.
2. दी स्टेट्समैन, नई दिल्ली, 3 अगस्त, 1983.

देता है, जिसमें शीर्ष स्तर पर क्षेत्र में आर्थिक एवं सामाजिक विकास राष्ट्रीय और सामूहिक स्वावलम्बन, दक्षिण एशिया में शान्ति की स्थापना तथा विश्व में उन्नति और उसके स्थायित्व में सहयोग प्रदान करने की भावनाओं में तीव्रता ले आना स्वीकार किया गया था। अत: इन महत्वपूर्ण मुद्दों को विदेशमंत्रियों के घोषणा पत्र में और बाद में ढाका घोषणा पत्र में भी स्वीकृत किया गया।[1] ज्ञातव्य है कि दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की मंत्रिमण्डलीय स्तर की अगस्त, सन् 1983 की घोषणा, या नई दिल्ली की घोषणा को विदेशसचिवों की प्रथम बैठक से ठीक 2 वर्ष 4 महीने का समय लगा।[2]

उपर्युक्त समस्त विवेचन के बाद दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग (AARC) की घोषणा में जिन उद्देश्यों को निर्धारित किया वे निम्नांकित हैं—

1. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तकनीकी एवं वैज्ञानिक क्षेत्र में सक्रियात्मक सहयोग तथा पारस्परिक सहायता से प्रोत्साहित करना।
2. दक्षिण एशियाई देशों में सामूहिक आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन देना और उसे सुदृढ़ता प्रदान करना।
3. अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर समस्त देशों के मध्य समान हित के विषयों पर सहयोग को सुदृढ़ता देना।
4. दक्षिण एशिया के जनमानस के कल्याण को प्रोत्साहित करना तथा उनके जीवन स्तर को उन्नत करना।
5. विकासशील देशों के सहयोग को सुदृढ़ बनाना।
6. आर्थिक विकास को गतिप्रदान करना, क्षेत्रीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को विकसित करना और उनकी अन्त:शक्ति को चरितार्थ करना।

---

1. BLISS Journal, Vol. 8, No. 4, 1987, p. 404.
2. मधुकर शमशेर राना, इकोनॉमिक डाइमेन्शन ऑफ रीजनल कोआपरेशन : ए स्ट्रैटजिकपर्सपेक्टिव, रीजनल सिक्योरिटी इन साउथ एशिया, एडीटेड बाई श्रीधर के० खत्री, काठमाण्डू, (नेपाल), 1987 पृ० 85.

7. एक दूसरे की समस्याओं का गुणदोष के आधार पर विश्लेषण करना तथा पारस्परिक विश्वास और समझपूर्ण सहयोग देना।

8. समान उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के लिए क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में सहयोग प्रदत्त करना।

"दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग के उपर्युक्त लक्ष्यों को सफलतापूर्वक पूर्ण करने के लिए जो सिद्धान्त निर्धारित किये गये, वे निम्नांकित हैं—

1. क्षेत्रीय सहयोग का प्रथम सिद्धान्त प्रभुसत्ता तथा समानता के आधार पर निर्धारित किया, गया जिसमें सम्मान पर आधारित राज्यक्षेत्रीय अखण्डता, राजनीतिक स्वतंत्रता, किसी के घरेलू मामले में हस्तक्षेप न करना तथा पारस्परिक लाभ की भावनाएँ निहित थीं।

2. क्षेत्रीय सहयोग, द्विपक्षीय अथवा बहुपक्षीय मुद्दों हेतु प्रयुक्त नहीं किया जायेगा, बल्कि इसमें सहायक होगा।

3. द्विपक्षीय और संघर्षपूर्ण समस्याओं को सहयोग के विचार विमर्श की सीमा से बाहर रखा जायेगा।[2]

सार्क घोषणा पत्र में प्रबन्ध एवं वित्त व्यवस्था हेतु निर्धारित नियम निम्न प्रकार से हैं—

कार्यक्षेत्रों में सम्बन्धित प्रत्येक तकनीकी समिति, जिसमें दक्षिण एशियाई क्षेत्र के समस्त देश हिस्सा लेंगे, निर्धारित कार्यक्रम के कार्यान्वयन, समन्वयन, प्रबन्धन इत्यादि हेतु उत्तरदायी होगी। वह अपने उत्तदायित्व निम्नांकित प्रतिबन्धों के साथ पूर्ण करेगी—

1. तकनीकि समिति के सभापति पद पर क्षेत्रीय देशों के सदस्यों का बारी-बारी से पदासीन होना और दो वर्ष तक कार्य करना। सभापतित्व पद वर्णमालीय आधार पर निर्धारित होगा।

2. सहमति प्राप्त क्षेत्रों में क्षेत्रीय सहयोग की अन्त:शक्ति तथा क्षेत्र निर्धारित करना।

---

1. एस० डी० मुनी, "साउथ एशियन रीजनल कोआपरेशन : इवोल्यूशन एण्ड प्रासपेक्ट्स, ग्लोबल मिक्योरिटी, एडीटर्स के० सुब्रमण्यम एण्ड जसजीत सिह, नई दिल्ली, 1987, पृ० 195; दी टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 9 दिसम्बर, 1985.
2. एस० डी० मुनी, "साउथ एशियन रीजनल कोआपरेशन : इवोल्यूशन एण्ड प्रासपेक्ट्स, ग्लोबल मिक्योरिटी, एडीटर्स के० सुब्रमण्यम एण्ड जसजीत सिह, नई दिल्ली, 1987, पृ० 196; दी टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 9 दिसम्बर, 1985

3. तकनीकी समितियों द्वारा नियतकालिक प्रतिवेदन स्थायी समिति को देना।

4. कार्य क्षेत्र के सम्बन्ध में कार्यक्रमों की सूची तैयार करना तथा उसकी योजनायें बनाना।

5. अंचलीय कार्यों का कार्यक्रम और वित्तीय उलझनों का निर्धारण करना।

6. अंचल के कार्यक्रमों का कार्यान्वयन, समन्वयन तथा विकास का प्रबन्धन करना।

7. कार्य क्षेत्रों के व्ययों के आवंटन की संस्तुतियों का सूचीकरण करना।

8. तकनीकि समिति, आवश्यकतानुसार निम्नांकित संरचनाकरने की अधिकारी होगी—

(i) विशेष क्षेत्रों में विशेषज्ञों की बैठक आयोजित करना।

(ii) क्षेत्र में स्वीकृत उत्कर्ष के केन्द्रों के मध्य सम्पर्क बनाना। इन केन्द्रों को व्यावहारिकता और औचित्यता के आधार पर सुदृढ़ करना तथा क्षेत्रीय सहयोग के कार्यक्रमों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु साधनों का अनुकूल प्रयोग करना आदि।

(iii) राष्ट्रीय तकनीकी संस्थाओं के प्रधानों की बैठक आयोजित करना।

सार्क के घोषणा पत्र के अन्तर्गत कार्य समिति इसके लिए अधिकृत होगी कि वह ऐसी योजनाओं को जिसमें दो देशों से अधिक (किन्तु सातों देश नहीं) देश सम्बद्ध हैं, स्थायी समिति का पूर्व प्राप्त आदेशानुसार उस योजना के कार्यान्वयन के लिए व्यवस्था कर सकती है।

घोषणा पत्र में यह स्पष्ट किया गया कि दक्षिण एशियाई क्षेत्र के सभी देशों के विदेश सचिवों की एक समिति होगी, जिसे स्थायी समिति कहा जायेगा, जिसका मुख्य कार्य दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग में समन्वयन और प्रबोधन स्थापन करना होगा। इस कार्य के निम्नांकित आधार होंगे।

(1-i) क्षेत्रीय तथा वाह्य साधनों एवं स्रोतों का संगठन करना।

(ii) अन्तरवर्गीय प्राथमिकताओं का निर्धारण करके तथा कार्यों के कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करना।

(iii) सहयोग के नये क्षेत्रों की जानकारी लेना, जो उचित अध्ययन द्वारा निर्धारित तरीकों पर आधरित हों।

(iv) योजनाओं और कार्यक्रमों को स्वीकृत करना और उनकी वित्तीय यात्रा को निश्चित करना।

(2) स्थायी समिति का आयोजन आवश्यकतानुसार होगा किन्तु एक वर्ष में एक बार बैठक का होना अनिवार्य होगा।

(3) आवश्यक निर्णय हेतु स्थायी समिति विदेशमंत्रियों से प्रपत्र द्वारायोजनाओं के कार्यान्वयन तथा उनसे सम्बन्धित वित्तीय प्रबन्ध के लिए उनकी स्वीकृति प्राप्त करेगी। स्थायी समिति विदेश मंत्रियों की बैठक का उचित प्रबन्ध करेगी, तथा उनसे सम्बन्धित दायित्वों का निर्वाह करेगी।

घोषणा पत्र में स्वीकृत क्षेत्रीय सहयोग से सम्बन्धित कार्यों के उचित संचालन के लिए वित्तीय व्यवस्था ही बड़ी स्वाभाविक थी, अर्थात् प्रत्येक देश को यह सुविधा थी कि क्षेत्रीय कार्यों के कार्यान्वयन हेतु वह अपनी स्वेच्छा से धन का अंशदान करेगा, अर्थात् अपनी इच्छा से जो जितना दे सकता है वही देगा, उस पर कोई दबाव नहीं होगा। प्रत्येक तकनीकि समिति प्रस्तावित कार्यों के व्यय के लिए आवंटन की संस्तुति करेगी, जिसमें निम्नांकित निर्देशक तत्वों को ध्यान में रखना होगा—

(i) परिसंवादों में शामिल विशेषज्ञों के भरण पोषण का व्यय उन्हीं देशों पर भारित होगा, जिस देश में वे कार्यरत है किन्तु यात्रा व्यय अथवा वेतन उन देशों द्वारा दिया जायेगा, जहाँ से वे भेजे गये हैं, अथवा भाग लेने वाले सभी देश इस व्यय को सम्मिलित रूप से वहन करेंगे, अथवा वाहन साधनों से प्राप्त धन से भी इसकी व्यवस्था की जा सकेगी।

(ii) सर्वसम्मति से सहमति प्राप्त मुद्दों के अतिरिक्त प्रत्येक देश अपने सदस्य का यात्रा व्यय भरण पोषण, कारखानों में प्रशिक्षण देने तथा विभिन्न कार्यक्रमों एवं परिसंवादों में हिस्सालेने के लिए वहन करेगा, किन्तु परिसंवादों के संगठन तथा कारखानों और शिक्षण केन्द्रों एवं कार्यक्रमों के संगठनों पर जो व्यय होगा, उसे मेजबान देश, वहन करेगा अथवा हिस्सा लेने वाले देशों में उनकी सुविधानुसार बाँट दिया जायेगा। वाह्य देशों से प्राप्त आर्थिक सहयोग से भी इस प्रकार का व्यय किया जा सकेगा।

(iii) दीर्घकालीन योजनाओं हेतु सम्बन्धित तकनीकि समिति उसके व्ययों का विवरण तैयार स्थायी समिति से उसकी स्वीकृति हेतु संस्तुति करेगी।

(iv) जिन योजनाओं और कार्यक्रमों के संचालन हेतु क्षेत्रीय सहयोग द्वारा पर्याप्त धन की व्यवस्था न होने पर उसका प्रबन्ध स्थायी समिति की स्वीकृति के पश्चात् उचित साधनों द्वारा वाह्य सहयोग से किया जा सकेगा।

(v) अन्य प्रकार के व्यय, जिसमें अध्ययन की तैयारियों का व्यय भी सम्मिलित है, परस्पर सहमति के आधार पर किया जायेगा।[1]

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों से यह स्पष्ट है कि सार्क की भावना में जनमानस का कल्याण में निहित है, न कि किसी राज्य या सरकार का कल्याण। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि जनता ही सार्क की नींव है और जनता का हित साधन ही उसका अन्तिम उद्देश्य। इसके अतिरिक्त एक नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का निर्माण भी उसका एक महत्वूर्ण उद्देश्य है, जिसके खुले रूप से वह राष्ट्रीय आंकाक्षाओं की पूर्ति कर सके और जन जीवन के स्तर को ऊंचा उठा सके। अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि सार्क का प्राथमिक उद्देश्य सहयोग को स्थापित करना और उसे विकसित करना है, जबकि द्वितीयक उद्देश्य राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की भावना है।

सार्क के उद्देश्यों का गम्भीरता पूर्वक विश्लेषण करने पर उसकी स्पष्टता तथा अस्पष्टता दृष्टिगत होती है। उदाहरणस्वरूप सार्क उद्देश्यों के अन्तर्गत सदस्य देशों में पारस्परिक विश्वास की भावना में वृद्धि करना एवं एक दूसरे की समस्याओं को समझदारी पूर्वक अनुकूल समाधान निकालना कहा गया है, किन्तु यह बात स्पष्ट नहीं हो पायी कि सामान्य जनता के मध्य इसका सार्थक उपयोग किस प्रकार किया जायेगा। इस प्रश्न के अन्तर्गत ही यह स्पष्ट करने का प्रयत्न उचित प्रतीत होता है कि उद्देश्य एवं सिद्धान्तां में क्या, कुछ कमी दिखायी देती है। जहाँ तक विचारों को स्पष्ट करने की बात है, कुछ मामले नि:सन्देह भ्रम रहित हैं। जैसे सार्क देशों द्वारा प्रत्येक राज्य के अधिकारों का न्याय संगत सम्मान करना, पारस्परिक लाभ और हित साधन करना, द्विपक्षीय और बहुपक्षीय सहयोग का पूरक बनाना तथा उनमें संगत न होना, किये गये निर्णयों का सभी स्तरों पर सामंजस्यपूर्ण होना

---

1. एस० डी० मुनी, अराधना मुनी, रीजनल कोआपरेशन इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, 1984 पृ० 197 98.

तथा मतभेदपूर्ण मुद्दों को सार्क के क्षेत्र से परे रखना आदि निश्चित किये गये उद्देश्यों में किंचित मात्र भ्रम उत्पन्न होने की गुंजाइश नहीं दिखायी देती।

सार्क के उद्देश्य एवं सिद्धान्तों में दृष्टिगत अस्पष्ट बातें इस प्रकार हैं—किसी भी समिति अथवा कार्यक्रम में किसी का शामिल होना आदेशात्मक नहीं, स्वेच्छात्मक होगा। जिन योजनाओं में से दो से अधिक देश शामिल हैं, किन्तु यह संख्या सभी सात देशों से अल्प है, उसकी कार्यवाही कार्यसमिति के माध्यम से भिन्न रूप में करना, किसी सदस्य देश का किसी कार्यक्रम में भाग लेने की छूट, किन्तु तदर्थ धन देने हेतु कोई प्रतिबन्ध न होना, समस्त कार्यक्रमों एवं योजनाओं में हिस्सेदार होना, तथा धन की कमी हो जाने पर अथवा वैसे भी विदेशों द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग को स्वीकार करना इत्यादि कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं, जो यद्यपि भ्रमोत्पादक प्रतीत होते हैं किन्तु फिर भी कुछ प्रतिबन्धों को निश्चित करती है जिसके अधीन रहकर ही सार्क देशों को निर्णय लेना है और निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अग्रसर रहना है। अर्थात् यह प्रतीत होता है कि सार्क के आर्थिक तथा सामूहिक स्वावलम्बन जैसे मूल सहयोगों को भी ऐसे कौशल के रूप में रखा जाय, जिससे क्षेत्र के समस्त लोगों को समान हित तथा समान लाभ प्राप्त हो सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अन्त:शक्ति को विकसित करते हुए इच्छा, आवश्यकता तथा लाभ की भावनाओं को प्रमुखता प्रदान करनी होगी, जिसमें औद्योगीकरण, अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार, पर्यावरण की रक्षा, प्रबन्धात्मक सुधार, जनमानस के उत्थान के साधन आदि पर विशेष ध्यान देना होगा। विदेशों से धन प्राप्त करने की आकांक्षा सार्क के सामूहिक स्वावलम्बन के उद्देश्य और सिद्धान्त के प्रतिकूल है, तथापि क्षेत्रीय विकास के लिए तकनीकी ज्ञान का आयात विदेशों से ही करना होगा, भले ही वह बैठकों द्वारा, परिसंवादी द्वारा कारखानों की स्थापना द्वारा अथवा किसी अन्य विधि द्वारा किया जाय। किन्तु यह ध्यान रखना होगा कि इस प्रकार का आयात किसी ऐसी शर्त पर आधारित न हो, जो क्षेत्र के उद्देश्य तथा सार्क में अन्तर्निहित मूल भावनाओं पर आघात करने वाला हो।[1] यहबात ध्यान देने योग्य है कि कोई भी तकनीकी ज्ञान सीमित नहीं होता। बदलती परिस्थितियों के आवश्यकतानसुार किसी भी तकनीकी का अनुसंधानों के आधार पर विकास होता रहता है। अत: विदेशी आर्थिक सहायता तथा तकनीकि

1. मधुकर शमशेर राना, "इकोनॉमिक डाइमेन्शन ऑफ रीजनल कोआपरेशन : ए स्ट्रेटेजिक पर्सपेक्टिव, रीजनल सिक्योरिटी इन साउथ एशिया, एडीटर-श्रीधर के खत्री, काठमाण्डू (नेपाल), 1987, पृ० 86.

आयात करने के साथ-साथ सार्क देशों को अपने सामूहिक स्वालम्बन पर निर्भर रहकर विकास की ओर अग्रसर होना होगा तथा शनैः-शनैः पराश्रयता को कम करना होगा।

सार्क के गठन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि अभी तक दक्षिण एशिया के क्षेत्र में सहयोग से सम्बन्धित ऐसे मंच की स्थापना नहीं हो सकी थी जिस पर क्षेत्रीय नेता एक साथ उपस्थित हो सकते। यह पहला मंच है जिस पर परस्पर विरोधी विचारधारा वाले आमने-सामने बैठकर अनौपचारिक विचार विमर्श द्वारा कई अनसुलझी समस्याओं को अपने विवेक एवं समझदारी के साथ सुलझाने हेतु एकत्रित हुए हैं। इस मंच द्वारा आशंकापूर्ण परिस्थितियों में भी अन्तरक्रिया के विकास द्वारा पारस्परिक विश्वास एवं सहयोग की भावना जागृत होने के सुअवसर प्राप्त हो पाये हैं क्योंकि अधिकाधिक पारस्परिक सम्पर्क विश्वास को बढ़ाता है। विभिन्न देशों के शिक्षाविदों का पारस्परिक मिलन तथा विचार-विमर्श विभिन्न समस्याओं के समाधान में सफल हो सका है, इसके लिए भारत-पाक का हवाई मार्ग विवाद, भारत-श्रीलंका के मध्य जातीय विवाद भारत-बांग्लादेश के मध्य जल का विवाद, भारत-नेपाल के मध्य व्यापारिक विवाद तथा भारत द्वारा मालद्वीप की रक्षा सम्बन्धी विवाद आदि के आंशिक समाधान भी प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

सार्क कोई ऐसा गुट या सन्धि नहीं है, जो किसी सुरक्षा या असुरक्षा के आधार पर वाह्य खतरे के कारण बना हो। इस क्षेत्र में सामान्यतः क्षेत्रीय सुरक्षा की कोई विशेष परिस्थिति दृष्टिगत नहीं होती। सार्क एक ऐसा सहयोग का मंच है जो परस्पर सहयोग के आधार पर एक दूसरे की समस्याओं के सर्वसम्मत समाधान के आधार पर बना है।

सार्क के सभी कार्यक्षेत्रों एवं विचारकोटि में किसी वाह्य तत्व का हस्तक्षेप नही है। समस्त प्रारम्भिक एवं तकनीकी अध्ययन, क्षेत्र से सम्बद्ध विशेषज्ञों द्वारा ही किये जाते हैं। सार्क में सामाजिक एवं राजनीतिक वास्तविकताएँ प्रतिबिम्बित होती हैं। इसमें विभिन्नता में एकता लाने का प्रयत्न किया जाता है। इस संगठन की एक महत्वपूर्ण विशेषता जो दृष्टिगत होती है वह यह कि यह कोई अन्तर्राष्ट्रीय संगठन नहीं है अर्थात् कोई भी देश अकेले या मिलकर किसी निर्णय को किसी पर थोप नहीं सकता। क्योंकि किसी निर्णय का आधारभूत सिद्धान्त सर्वसम्मत या एकमत होना है। यदि एक भी देश किसी निर्णय के विरुद्ध है तो वह स्वीकृत नहीं होता। समस्त सार्क सदस्य देश छोटे-बड़े होते हुए भी समान रूप से सम्प्रभु हैं और सभी के अधिकार समान हैं।

उपरोक्त विवेचन द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विश्व के विभिन्न संगठन जहाँ सुरक्षात्मक तथा राजनीतिक सिद्धान्तों के आधार पर गठित हैं, वहीं दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग की स्थापना का मौलिक सिद्धान्त पारस्परिक सहयोग, समानता तथा सर्वसम्मति पर एकमत होना है और सार्क की यह मूल विशेषता विश्व के किसी अन्य संगठनों में दिखाई नहीं देती।

यद्यपि सार्क संगठन सभी भ्रूण अवस्था में है और अन्य संगठनों जैसे आसियान तथा ई० ई० सी० के समकक्ष आने में विलम्ब हो सकता है, किन्तु यदि ध्यान दिया जाय तो इन दोनों संगठनों का प्रारम्भ भी बड़े छोटे स्तर पर और समस्याओं एवं कठिनाइयों से ग्रस्त था। अत: यह कहा जा सकता है कि सार्क संगठन के क्षेत्रों में भी विकास की अनेक सम्भावनाएँ हैं, जो सामूहिक स्वावलम्बन के माध्यम से सार्क को एक विशेष संगठन के रूप में ला सकेगी।[1]

1. एच० के० दुआ, "रीजनल रियलिटीज," दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 27 जुलाई, 1983.

अध्याय—4

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ के विभिन्न सम्मेलन

1. प्रथम शिखर सम्मेलन, ढाका 1985

शिखर सम्मेलन के पूर्व विदेश सचिव स्तर एवं विदेश मन्त्रियों के स्तर पर विभिन्न बैठकें हो चुकी थीं, जिसमें ''दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग''संगठन के उद्देश्य, सिद्धान्त एवं कार्यक्षेत्रों पर विस्तार से चर्चा के बाद कतिपय निर्णय लिये जा चुके थे। शिखर स्तर के प्रथम सम्मेलन के पूर्व 4-5 दिसम्बर,1985 को विदेशमन्त्रियों की एक बैठक हो चुकी थी, जिसमें शिखर सम्मेलन के लिए समस्त प्रपत्रों को व्यवस्थित रूप से तैयार करके प्रस्तुत किया जाना था। अत: विदेशमन्त्रियों की इसी बैठक के पश्चात 7-8 दिसम्बर 1985 को ढाका (बांग्लादेश) में दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन से सम्बन्धित सभी सदस्य सातों राष्ट्रों के प्रधानों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें सार्क उद्भव की घोषणा को अन्तिम रूप दिया गया। इस सम्मेलन में बांग्लादेश, भुटान, नेपाल, पाकिस्तान, भारत, मालद्वीव और श्रीलंका के प्रधान सम्मिलित हुए। प्रधानों के स्वरूप की दृष्टि से इसमें चार राष्ट्रपति, दो नरेश तथा एक प्रधानमन्त्री था।

बांग्लादेश के राष्ट्रपति जनरल इरशाद के सभापतित्व में बंगलादेश की ''जातीय संसद'' में आयोजित एक अनुष्ठानित उत्सव में सातों देशों क प्रधानों ने ''दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन'' घोषणा-पत्र की सात प्रतियों तथा उसके शासन पत्र(प्रालेख)पर हस्ताक्षर किए। नेपाल नरेश वीरेन्द्र विक्रम शाह देव ने प्रालेख को स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव किया तथा पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जिया-उल-हक ने उसका अनुमोदन किया,कि इस प्रालेख को'' ढाका घोषणा'' के नाम से जाना जाये। सम्मेलन के सभापति जनरल इरशाद ने सार्क घोषणा पत्र को स्वीकार करने का संकेत

दिया,[1] और यह घोषणा की गई कि अब दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग को ''दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन''के नाम से सम्बोधित किया जायेगा।[2]

सार्क सम्बन्धी शासन पत्र (प्रालेख) तथा सार्क घोषणा पत्र जिस रूप में विदेश मन्त्रियों द्वारा तैयार और स्वीकार किया गया था, उसमें बिना किसी प्रकार के परिवर्तन किये दृढ़ विश्वास और समर्थन के साथ सातों प्रधानों द्वारा स्वीकार कर लिया गया।[3]

'सार्क' शासन पत्र : प्रालेख (SAARC Charter)

''दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन'' (SAARC) के प्रालेख एवं घोषणा पत्र का मूल रूप इस प्रकार है[4]—

हम,बांग्लादेश, भूटान, नेपाल, पाकिस्तान, भारत, मालद्वीप तथा श्रीलंका के राज्यों एवं सरकारों के प्रधान इस क्षेत्र में शान्ति, स्थायित्व, मित्रता तथा उन्नति के इच्छुक हैं। हम संयुक्त राष्ट्र संघ के शासन पत्र और निर्गुट नीति का पालन करते हुए, एक दूसरे के प्रभुत्व सम्पन्न सिद्धान्तों के अनुसार समानता, क्षेत्रीय अखण्डता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, बल या शक्ति अर्थात् सैनिक बल का प्रयोग किये बिना तथा एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करने एवं शान्तिमय ढंग से सभी मतभेदों और झगड़ां का निपटारा करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

हम, इस आत्मनिर्भरता के संसार में शान्ति के उद्देश्य, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, आर्थिक उन्नति, दक्षिण एशिया क्षेत्र में परस्पर समझ, अच्छे पड़ोसी के सम्बन्ध, इतिहास और संस्कृति से एक दूसरे के साथ जुड़े सदस्य राज्यों के बीच पूरी तरह सजग हैं।

हम, दक्षिण एशिया की जनता के समान समस्याओं, हितों, आकांक्षाओं, अभिलाषाओं तथा संयुक्त रूप से कार्य करने की आवश्यकता, अपने-अपने राजनीतिक एवं आर्थिक पद्धतियों और सांस्कृतिक परम्पराओं के अधीन बढ़ते हुए सहयोग तथा समान समस्याओं के प्रति जागरूक हैं।

---

1. दि स्टेट्समैन, नई दिल्ली, 9 दिसम्बर, 1985.
2. दि हिन्दू, मद्रास, 9 दिसम्बर,1985.
3. वही.
4. दि टाइमस ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 9 दिसम्बर, 1985.

हम, दक्षिण एशिया के देशों के बीच क्षेत्रीय सहयोग को परस्पर लाभदायक, उचित एवं कुशलक्षेम या कलयाण के लिए अर्थात् इस क्षेत्र की जनता की दशा के सुधार, आर्थिक, सामाजिक एवं तकनीकी सहयोग और राष्ट्रीय तथा स्वावलम्बन के लिए महत्वपूर्ण योगदान को स्वीकार करते हैं।

हम, यह मानते हैं कि क्षेत्रीय देशों के बीच बढ़ता हुआ सहयोग, आपसी सम्पर्क तथा .विचारों का आदान-प्रदान हमारी मित्रता को प्रोत्साहित करेगा, और इससे जनता के बीच समझदारी का विकास होगा।

हम क्षेत्रीय सहयोग से प्राप्त विकास सम्बन्धी घोषणा-पत्र को, जिसे विदेशमंत्रियों ने 2 अगस्त, 1983 को नई दिल्ली में हस्ताक्षरित किया था, पुन: स्मरण करते हैं। हम उनके उन पक्के इरादों को भी मानते हैं, कि एक संस्थागत ढांचे के अन्दर ही रहकर क्षेत्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देंगे।[1]

हम ''दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन'' (SAARC) के लिए एक संस्थागत संगठन की स्थापना करने में सहमत हैं, जिसके निम्नलिखित उद्देश्य, सिद्धान्त तथा संस्थागत प्रबन्ध एवं वित्तीय समझौते हैं—

अनुच्छेद 1

उद्देश्य— संघ के उद्देश्य इस प्रकार होंगे— .

1. दक्षिण एशिया की जनता के बीच कल्याण या कुशलक्षेम को प्रोत्साहित करना तथा उनके जीवन स्तर को सुधारना।
2. आर्थिक विकास की गति को तेज करना, क्षेत्र में सामाजिक विकास तथा सांस्कृतिक विकास करना एवं सभी को मान-सम्मान के साथ रहने देना तथा अपनी-अपनी अन्तर्निहित शक्तियों के विकास का अवसर प्रदान करना।
3. दक्षिण एशिया के देशों के बीच सामूहिक स्वावलम्बन को दृढ़ करना और प्रोत्साहन

---

[1]. वही.

देना।

4. पारस्परिक विश्वास एवं एसमस्याओं को समझना और समझदारी को बढ़ाना।
5. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों में सक्रिय सहयोग करना, और परस्पर सहायता प्रदान करना।
6. अन्य विकासशील देशों से सहयोग को दृढ़ बनाना।
7. अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर समान हित के मामलों में सहयोग को दृढ़ता प्रदान करना।
8. समान लक्ष्य एवं उद्देश्यों वाले अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संगठनों के साथ सहयोग करना।[1]

अनुच्छेद 2

सिद्धान्त या मूल तत्व—

1. संगठन के ढांचे के अन्दर परस्पर लाभ के लिए सहयोग की निर्भरता निम्नलिखित बातों पर आधारित होगी, जैसे—एक दूसरे के प्रभुसत्ता सम्पन्न सिद्धान्त के अनुसार समानता, क्षेत्रीय अखण्डता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना।
2. क्षेत्रीय सहयोग में द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय मामलों को कोई स्थान नहीं मिलेगा, किन्तु वह सहायक हो सकता है।
3. क्षेत्रीय सहयोग द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय मामलों के लिए असंगत नहीं होगा।[2]

अनुच्छेद 3

सदस्य देशों के इस प्रस्ताव पर कि बैठक आवश्यक है, राज्यों का सरकारों के प्रधानों की .बैठक वर्ष में एक बार अवश्य होगी।

---

1. वही.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दल्ली, 9 दिसम्बर, 1985; एशियन रिकार्डर, नई दिल्ली, 15-21 जनवरी, 1986.

अनुच्छेद 4

1. सभी सदस्य देशों के विदेश मंत्रियों की एक समिति निम्नलिखित कार्यों के लिए स्थापित होगी—

(अ) संगठन की नीतियों को सूत्रवद्ध करना,

(ब) संगठन के अधीन सहयोग के कार्यक्रमों के विकास पर पुन: विचार करना,

(स) सहयोग के नये क्षेत्रों का निर्णय करना,

(द) आवश्यकतानुसार पत्राचार व्यवस्था करना,

(य) संगठन के अन्य हितों के विषय में निर्णय लेना,

2. विदेश मंत्रियों की बैठक यथासम्भव नियमित रूप से चलने वाले सत्र के अनुसार होगी तथा सदस्य देशों की सहमति पर असाधरण बैठक आयोजित करना।[1]

अनुच्छेद 5

1. स्थायी समिति का निर्माण सातों देशों के विदेश सचिवों को सम्मिलित कर लिया जायेगा। जिसके निम्नलिखित कर्तव्य होंगे—

सहयोग के समस्त कार्यक्रमों का निरीक्षण करना, तथा उनमें समन्वय स्थापित करना,कार्यक्रमों और योजनाओं को स्वीकार करना, स्वीकृत कार्यक्रमों के लिए वित्तीय साधनों की व्यवस्था करना, अन्तवर्गीय कार्यों में वरीयता का निर्णय लेना, क्षेत्रीय तथा बाहरी साधनों का संचालन करना तथा समुचित अध्ययन के पश्चात् सहयोग के नये क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त करना।

2. स्थायी समिति की बैठक निर्णय के अनुसार होनी चाहिए, किन्तु वर्ष में एक बार अवश्य होगी।

3. विदेश मंत्रियों के समक्ष स्थायी समिति समय-समय पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगी,

---

1. वही, 1986.

और आवश्यकतानुसार नीतियों पर निर्णय की माँग करेगी।[1]

अनुच्छेद 6

1. सदस्य देशों के प्रतिनिधियों को मिलाकर एक तकनीकी समिति का गठन किया जायेगा।

2. इस तकनीकी समिति के निम्नलिखित कार्य होंगे—

सहयोग के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना, और उनमें समन्वय स्थापित करना तथा कार्यों का निरीक्षण करना, सहमति प्राप्त कार्य क्षेत्रों तथा अन्तर्निहित कार्यों का निर्धारण करना, कार्यक्रमों को सूत्रबद्ध करना, योजनाओं को तैयार करना तथा वर्गीय कार्यक्रमों के लिए वित्तीय साधन जुटाना, व्यय सम्बन्धी संस्तुतियों को सूत्रबद्ध करना, वर्गीय कार्यक्रमों के बीच समन्वय स्थापित करना और उनके विकास की गति का संचालन करना।

3. तकनीकी समिति समय-समय पर अपना प्रतिवेदन स्थायी समिति के समक्ष प्रस्तुत करेगी।

4. अंग्रेजी अक्षरों के वर्णक्रम केअनुसार तकनीकी समिति का सभापति बनाया जायेगा, जो बारी बारी से सातों देशों का, दो वर्ष के लिए नियुक्त होगा।

5. तकनीकी समिति अपने कार्यों के सम्पादन में आवश्यकतानुसार निम्नलिखित रूप से यंत्र रचना तथा उपायों का प्रयोग कर सकेगी। राष्ट्रीय तकनीकी प्रधानों की बैठक की व्यवस्था करना, विशेष क्षेत्रों के लिए विशेषज्ञों की बैठक आयोजित करना तथा क्षेत्र के विशेष महत्व के केन्द्रों में सम्पर्क स्थापित करना।

अनुच्छेद 7

स्थायी समिति कार्य समितियों का गठन करेगी, योजनाओं को कार्यान्वित करेगी। इस कार्य समिति में सदस्य राज्यों के दो से अधिक राज्य सम्मिलित हो सकेंगे, पर सभी नहीं।

अनुच्छेद 8

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) का एक सचिवालय होगा।

---

1. वही.

अनुच्छेद 9

प्रत्येक सदस्य देश अपनी इच्छा और सामर्थ्य के अनुसार सार्क की वित्तीय व्यवस्था के लिए धन देगा।

प्रत्येक तकनीकी समिति निर्धारित कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक धन उपलब्ध कराने की संस्तुति करेगी।

यदि क्षेत्र के सदस्य राज्यों द्वारा पर्याप्त धन एकत्रित नहीं हो पाता, तो स्थायी समिति की स्वीकृति पर वाह्य साधनों से धन लिया जा सकेगा।[1]

अनुच्छेद 10

सभी मसलों या मामलों में अन्तिम निर्णय सातों सदस्य राज्यों के एकमत से ही लिया जायेगा।

द्विपक्षीय और संघर्ष को उत्पन्न कराने वाले मामले, सार्क के बाहर रखें जायेंगे। अर्थात् उन पर विचार नहीं हो सकेगा।[2]

विश्वास के साथ हम सभी सदस्य देशों के प्रधान उक्त प्रालेख पर हस्ताक्षर करके मुहर लगाते हैं।

8 दिसम्बर, 1985 को बांग्लादेश की राजधानी ढाका में निम्नलिखित प्रधानों ने हस्ताक्षर किये—हुसैन मोहम्मद इरशाद (राष्ट्रपति, बांग्लादेश), जिम्मे-सिग्में वांगचुक (भूटान नरेश), राजीव गाँधी (भारत के प्रधानमंत्री), मयूमून अब्दुल गयूम (राष्ट्रपति मालदीव), वीरेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव (नेपाल नरेश), मोहम्मद जिया-उल-हक (राष्ट्रपति पाकिस्तान), जूनियस रिचर्ड जयवर्धने (राष्ट्रपति श्रीलंका)।[3]

7-8 दिसम्बर, 1985 को सातों देशों के प्रधान ढाका में एक मंच पर इकट्ठे हुए, और

---

1. वही.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली 9 दिसम्बर, 1985; एशियन रिकार्डर, नई दिल्ली, 15-21 जनवरी,1986, वाल्यूम 32, नं० 30, पृ० 1896.
3. वहीं.

उन्होंने अपनी पहली शिखर बैठक में दक्षिण एशिया ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित किया और उसे अपनी दृढ़ इच्छा की वास्तविक अभिव्यक्ति स्वीकार किया कि वे क्षेत्रीय आधार पर आपस में समान समस्याओं के लिए सहमत होकर मित्रतापूर्ण भावना से तथा विश्वास से सहयोग करेंगे तथा परस्पर समझ से एक ऐसी संस्था की रचना कर रहे हैं, जो परस्पर सम्मान, समानता और आपसी लाभ पर आधारित हैं।[1]

सभी प्रधानों ने आपसी विश्वास, भरोसे तथा सहयोग की स्थापना के लिए समय-समय पर बैठक करना आवश्यक समझा। साथ ही सातों सदस्य देशों के प्रधानों ने दृढ़ता के साथ विश्वास व्यक्त करते हुए अपने मौलिक उद्देश्य आर्थिक और सामाजिक विकास की गति को तेज करना, जनमानस तथा क्षेत्र में उपलब्ध साधनों का उपयोग करना, जनजीवन के स्तर को ऊंचा उठाना, व्यक्त किया और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शान्ति तथा सुरक्षा के साथ अपनी जागरूकता की आवश्यकता को स्पष्ट किया।

सातों देशों के प्रधानों ने यह भी कहा कि—

1. हमारी संयुक्त राष्ट्र संघ के शासन पत्र के सिद्धान्तों के प्रति आस्था है।
2. हम सभी सदस्य देश प्रभुत्व सम्पन्न तथा एक समान हैं, और एकमत हैं।
3. हम सभी संघर्षो का निपटारा शान्तिपूर्वक बातचीत के द्वारा करेंगे।
4. कोई भी सदस्य देश दूसरे देश के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। साथ ही बल अथवा सैनिक शक्ति का प्रदर्शन नहीं करेगा।
5. प्रत्येक सदस्य राज्य की क्षेत्रीय अखण्डता तथा स्वतंत्रता सुरक्षित रहेगी।
6. अन्तर्राष्ट्रीय शन्ति और सुरक्षा को प्रभावित करने वाले सभी मामले संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच पर उठाये जा सकेंगे।
7. सातों देशों के प्रधानों ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में

1. वही.

गुटनिरपेक्ष आन्दोलनों के सिद्धान्तों में अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया।

8. सभी प्रधानों ने स्वीकार किया कि विश्व की जनसंख्या का पांचवां भाग दक्षिण एशिया के इस क्षेत्र में निवास करता है। हमारे सामने जो बड़ी चुनौतियाँ हैं, उनका हमें डटकर सामना करना है। ये चुनौतियाँ हैं—गरीबी, बेरोजगारी, जनसंख्या का दबाव, उत्पादन का निचला स्तर, बीमारी तथा भुखमरी एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व का आर्थिक शोषण तथा विपरीत कठिनाइयाँ आदि। क्षेत्र की इन समस्त समस्याओं का तर्कसंगत उपाय क्षेत्रीय सहयोग ही है। इस सहयोग द्वारा क्षेत्रीय प्राकृतिक साधनों में अन्तर्निहित शक्ति को बड़े बाजार के रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे, और क्षेत्र की जनता के अधिकाधिक कल्याण के लिए उसका उपयोग करते हुए विकास की गति को तेज कर सकेंगे। अत: हम एक साथ मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस क्षेत्र के विरुद्ध हुए निर्णयों के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर दबाव डाल सकेंगे, जिससे कि हमारी बात टाली न जा सके।

9. सभी प्रधानों की दृष्टि में क्षेत्रीय सहयोग को सुदृढ़ बनाने में जनता का अधिकाधिक योगदान आवश्यक है, अत: सभी स्तरों पर जनता का जनता के साथ सम्पर्क होना चाहिए, और उसमें जागरूकता पैदा की जानी चाहिए। साथ ही सभी प्रधानों ने एकीकृत कार्यक्रम के सहमति प्राप्त नौ कार्यक्षेत्रों के कार्य पर सन्तोष व्यक्त किया, और संस्था के ढांचे के अन्दर साझेदारी तथा समानता के आधार पर सहयोग के कार्यक्रम को बढ़ाने का विचार व्यक्त किया।

10. सभी प्रधानों ने शान्ति और सुरक्षा के वातावरण में व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप में प्रभावकारी ढंग से जनजीवन के स्तर को सुधारने में विश्वास व्यक्त किया।

11. समस्त प्रधानों ने शस्त्रों की होड़ पर, विशेषकर नाभिकीय शस्त्रों पर खर्च हो रही अथाह सम्पत्ति पर चिन्ता व्यक्त की, और इससे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव तथा मानवता के विनाश की सम्भावना व्यक्त की। उनके विचारों में यह होड़ संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र का भी उल्लंघन करती है। अत: सभी प्रधानों ने नाभिकीय अस्त्र-शस्त्रों

से सम्पन्न राष्ट्रों से एक सन्धि द्वारा उन शस्त्रास्त्रों पर रोक लगाने तथा उनके उत्पादन और विकास पर भी रोक लगाने का प्रस्ताव किया।

12. सभी प्रधानों ने यह अनुभव किया कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था संकटापन्न स्थिति से गुजर रही है। इस बिगड़ती हुई आर्थिक और सामाजिक स्थिति ने दक्षिण एशिया के विकास कार्यक्रम की गति को मन्द कर दिया है, जिससे उत्पादित वस्तुओं के दाम गिर रहे हैं, व्यापार खराब हो रहा है, सुरक्षात्मक प्रयोगों से व्यापार को नुकसान हुआ है, कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा है, बाहरी देशों की आर्थिक सहायता कम हो रही है, जिससे विकासशील देशों को काफी नुकसान हो रहा है। साथ ही क्षेत्र की कठिनाइयों को प्राकृतिक विपदाओं ने और भी बढ़ा दिया है, अनाजों का उत्पादन घट गया है, जिसका क्षेत्र पर खराब प्रभाव पड़ा है, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय साधनों से धन उपलबध न होने के कारण क्षेत्र के देशों को नुकसान उठाना पड़ा है। अत: इसके लिए उत्तर तथा दक्षिण के आथिक विकास को सम्बन्धित किया जाना चाहिए।

13. सभी प्रधानों का विश्वास था कि नव स्थापित दक्षिण एशिया सहयोग संगठन (सार्क) क्षेत्रीय सहयोग के लिए एक सुदृढ़ शिलान्यास सिद्ध होगा, और यह क्षेत्र के आर्थिक तथा सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। और इससे व्यक्तिगत तथा सामूहिक निर्भरता बढ़ेगी, जिससे इस क्षेत्र तथा विश्व में शान्ति एवं स्थायित्व की स्थापना होगी।[1]

साथ ही सातों देशों के प्रधानों ने सार्क घोषणा पत्र को स्वीकार करते हुए इस बात पर सहमति व्यक्त की कि स्थायी समिति एक ऐसी अध्ययन समिति बनायेगी जो आतंकवाद की समस्या पर विचार करेगी, क्योंकि ये समस्या "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन" (SAARC) के स्थायित्व तथा सुरक्षा को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त राष्ट्र प्रधानों ने मन्त्रि परिषद् को निर्देश

1. एशियन रिकार्डर, नई दिल्ली, 15-21 जनवरी,1986, वाल्यूम 32, नं० 3, पृ० 1869-1869.

दिया कि वह इस अध्ययन समिति के प्रतिवेदन पर विचार करके अपने सुझाव और संस्तुतियों को उनके समक्ष इस विचार से प्रस्तुत करे कि सदस्य राष्ट्र इस समस्या का समाधान परस्पर सहयोग से कैसे कर सकते हैं। आतंकवाद समस्या के अतिरिक्त नशीली दवाइयों की हेरा-फेरी तथा उनके दुष्परिणामों की भी समस्या व्याप्त है। अत: इसके निदान के लिए इस पर भी कार्यवाही की जाय।[1]

सभी प्रधानों ने जनरल एग्रीमेन्ट ऑल टेरिफ एण्ड ट्रेड (GAAT) द्वारा दिल्ली में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था तथा विश्व व्यापारपद्धति पर अपने विचारों में एक सहमति बनाने का निर्णय लिया, जिससे कि कम विकसित देशों पर ध्यान दिया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थायी समिति को यह निर्देश दिया गया कि वह एक मन्त्रिमण्डलीय स्तर की बैठक आयोजित करे। इन बैठकों की मेजबानी पाकिस्तान के राष्ट्रपति के प्रस्ताव पर उनके यहाँ होना स्वीकार किया गया।[2]

इसके अतिरिक्त सातों प्रधानों ने दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) ढांचे के अन्दर क्षेत्रीय स्तर पर महिलाओं की साझेदारी की आवश्यकता बताते हुए ऐसे कार्यक्रमों और योजनाओं के निर्माण का सुझाव दिया, जिससे कि सक्रियता के साथ विकास कार्यो में सहयोग प्रदान कर सकें। इस कार्य के लिए भी स्थायी समिति को, मन्त्रिमण्डल स्तर की बैठक आयोजित करने का निर्देश दिया गया, जिससे कि सम्भावित कार्यक्षेत्र का पता लगाया जा सके और सम्बद्ध योजना को कार्यान्वित करने का कार्यक्रम बनाया जा सके। इस बैठक को भारत में आयोजित करने के लिए भारत के प्रधानमंत्री के प्रस्ताव को स्वीकार किया गया है।[3] साथ ही, सातों देशों के प्रधानों ने सार्क के एक सचिवालय की भी स्थापना की आवश्यकता का अनुभव किया। इतना ही नहीं, उन्होंने विदेशमंत्रियों को यह निर्देश भी दिया कि इसके स्थान, बनावट, कार्य तथा वित्त व्यवस्था पर विस्तार से विचार किया जाय, और उसके बाद अपने प्रतिवेदन को सभी प्रधानों के समक्ष विचार और निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाय।[4] अन्त में सातों प्रधानों ने भारत के प्रधानमत्री के निमंत्रण पर नवम्बर, 1986 को शिखर बैठक भारत में करने के लिए कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया। साथ ही भूटान नरेश

1. वही. पृ० 1869.
2. वही.
3. वही, पृ० 1897-1898.
4. वही, 18698.

ने सन् 1987 की शिखर बैंठक भूटान में आयोजित करने का प्रस्ताव रखा।[1]

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) की घोषणा के साथ ही इस संगठन में निहित अन्त:भावना को विभिन्न राष्ट्राध्यक्षों ने इस प्रकार व्यक्त किया—

पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जिया-उल-हक ने "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन" (SAARC) को राजनीति से बाहर तथा क्षेत्र के सामूहिक लाभ के लिए, आर्थिक सहयोग के लिए, शान्ति और स्थायित्व के लिए, अणु सहित शस्त्रास्त्रों का प्रयोग न करने के लिए, आतंकवादी कार्यवाहियों का सामना करने के लिए, एक दूसरे को समझने के लिए, मतभेदों को बातचीत से हल करने के लिए, शक तथा सन्देह को निकाल देने के लिए और सुरक्षा की भावना लाने के लिए तथा विश्व में एक समान राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए बनाया गया है।[2]

नेपाल नरेश वीरेन्द्र विक्रम शाह देव ने सार्क की स्थापना को, सामान्य इच्छा प्रकट करने वाले एक नये युग का आरम्भ बताया और इसे संघर्ष को दूर करके अलगाव के स्थान पर सामंजस्य और सहयोग स्थापित करने वाला बताया। साथ ही उन्होंने कहा कि इस क्षेत्र में लम्बे समय से विद्यमान अविश्वास और शंका की ठंड अब आपसी लेन-देन तथा जीवित रहो और जीवित रहने दो के सिद्धान्त की ओर बढ़ रही है।[3]

भूटान नरेश जिग्मे सिग्मे वांगचुक ने ढाका घोषणा पत्र का सारांश बताते हुए कहा कि—सातों देश अपने मतभेदों को एक किनारे करके प्रत्येक की सम्प्रभुता का सम्मान करेंगे, भीतर तथा बाहर एक मत होकर कार्य करेंगे तथा अपनी जनता के जीवन स्तर को ऊंचा उठायेंगे। उन्होंने क्षेत्र में लम्बे समय से विद्यमान मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक अड़चनों को दूर करके सहयोग बढ़ाने पर भी बल दिया। साथ ही उनका कथन था कि इस क्षेत्र का राजनीतिक पर्यावरण ही क्षेत्रीय सहयोग

---

1. वही.
2. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1985; दि स्टेट्समैन, नई दिल्ली, 9 दिसम्बर, 1985, दि हिन्दू, मद्रास, 9 दिसम्बर, 1985.
3. दि अमृत बाजार पत्रिका, कलकत्ता 8 दिसम्बर, 1985.

की शक्ल निर्धारण करेगा।[1]

मालद्वीव के राष्ट्रपति मयूमून अब्दुल गयूम ने भी समापन समारोह को सम्बोधित करते हुए क्षेत्रीय सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि हमारी दृढ़ इच्छा और पक्का इरादा इस संगठन को मजबूत करके विश्व में हमारे सम्बन्धों को महत्व और प्राथमिकता प्रदान करेगा।

श्रीलंका के राष्ट्रपति जे० आर० जयवर्धने ने सार्क के निर्माण की तुलना एक जहाज की यात्रा से करते हुए सावधान किया कि भाग लेने वाले सभी देशों को जहाजों पर संघर्ष से बचना चाहिए, और संगठन को सफल बनाने के लिए कड़ी मेहनत करें। उन्होंने भारत के प्रधानमंत्री राजीव गाँधी से, क्षेत्र में पारस्परिक विश्वास का वातावरण पैदा करने के लिए नेतृत्व संभालने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि भारत इस क्षेत्र का सबसे बड़ा देश है, अत: सहयोग की अच्छी शुरुआत के लिए वह अपने कामों और शब्दों से विश्वास पैदा कर सकता है। उन्होंने कहा कि इस क्षेत्र में संसार की जनसंख्या का पांचवाँ भाग निवास करता है, अत: हम लोगों के बीच सहयोग का अर्थ है—जनता के बहुत बड़े भाग के साथ, अर्थात् संसार के 1/5 भाग ही जनसंख्या के साथ सहयोग करना।[2]

सार्क के उद्‌भव के साथ ही देश विदेश में भारत की आलोचनायें शुरू हो गयी थीं, कि क्षेत्र में भारत ही सबसे बड़ा देश है, अत: वह अपनी विस्तृत जनसंख्या तथा विकसित सैन्य शक्ति के द्वारा सम्बन्धित छोटे राज्यों पर आधिपत्य जमाने और उन्हें नीचा दिखाने का प्रयास करेगा। इस दुष्प्रचार का प्रभाव छोटे देशों पर पड़ना स्वाभाविक था।[3]

ढाका शिखर बैठक समाप्त होते ही भारत के विरुद्ध आरम्भ हुए प्रचार का उत्तर देते हुए बांग्लादेश के राष्ट्रपति जनरल ई० एम० इरशाद ने इस प्रचार को बेबुनियाद बताया।[4] उन्होंने जातीय संसद भवन में शिखर बैठक का उद्‌घाटन करते हुए सार्क संगठन को एक नई आशा का क्षेत्र बताया, और कहा कि यह संयुक्त उद्यम व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा एकमत से सभी को अनुबन्धित करता है।

---

1. दि स्टेट्समैन, नई दिल्ली, 9 दिसम्बर, 1985; दि अमृत बाजार पत्रिका, कलकत्ता, 8 दिसम्बर, 1985.
2. वही.
3. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली 9 दिसम्बर, 1985.
4. वही.

उन्होंने सार्क को एक शुरूआत बताते हुए आत्मनिर्भरता, आर्थिक स्वतंत्रता तथा सहयोग के आदान प्रदान के लिए एक दृढ़ नींव बताया। साथ ही उन्होंने कहा कि शिखर बैठक ने क्षेत्र में सहयोग के लिए मूल्यवान राजनीतिक प्रेरणा प्रदान की है।

शिखर बैठक की समाप्ति के तत्काल बाद एक पत्रकार सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए जनरल इरशाद ने कहा कि सार्क की स्थापना में कोई कठिनाई नहीं है। उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि ई० इ ० सी० के निर्माण में भी छोटे-बड़े देश सम्मिलित हैं। एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया कि सार्क की सदस्यता के दरवाजे बाहरी देशों के लिए भी बन्द नहीं हैं, किन्तु किसी बाहरी सदस्यता के लिए क्षेत्र के सातों देश एकमत से निर्णय लेंगे। इसी प्रश्न के उत्तर में उन्होंने अफगानिस्तान और कम्पूचिया की सदस्यता पर कोई भी विचार-विमर्श न होने की बात कही।[1]

"दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन" (SAARC) के कार्यक्षेत्र में व्यापार को शामिल न किये जाने सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया कि सभी विषयों को एक ही समय सम्मिलित नहीं किया जा सकता, फिर भी आशा है कि इसे शीघ्र ही सम्मिलित किया जायेगा।

राष्ट्रपति इरशाद ने द्विपक्षीय मामलों को सार्क के क्षेत्र से बाहर रखने की बात कही, किन्तु उन्होंने आशा व्यक्त की कि भविष्य में द्विपक्षीय मामलों को सुलझाने के लिए एक मंच बनाया जा सकेगा।[2]

भारत के प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने अपने सारगर्भित भाषण में अन्धकारमय अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति की ओर राष्ट्राध्यक्षों का ध्यान आकर्षित किया, और बताया कि इस स्तर पर आर्थिक विकास का सामंजस्य लगभग समाप्त हो गया है, जिसका प्रभाव दक्षिण एशिया पर प्रतिकूल पड़ा है। अत: क्षेत्र के देशों को सहयोग के साथ विपरीत पर्यावरण में एक सहमति से क्षेत्रीय समस्याओं का समाधान करना होगा, क्योंकि विदेशी व्यापार में सुरक्षात्मक उपायों के प्रयोग द्वारा प्रतिदिन गिरावट आ रही है, तथा पश्चिमी देश तीसरी दुनिया के देशों के साथ भेद-भाव रखते हुए बहुपक्षीय व्यापार

---

1. दि हिन्दू, मद्रास 9 दिसम्बर, 1985.
2. दि हिन्दू मद्रास 9 दिसम्बर, 1985; दि अमृत बाजार पत्रिका कलकत्ता, 8 दिसम्बर, 1985.

के तरीके अपना कर अपने वचनों का उल्लंघन कर रहे हैं। ज्ञातव्य है कि संयुक्त राज्य अमरिका इन पश्चिमी देशों का नेतृत्व करता है।[1] ऐसी स्थिति में यदि दक्षिण एशिया के देश क्षेत्र में व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से एक समान नीति अपनायें तो अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर क्षेत्र की आर्थिक नीति दृढ़ता के साथ बाहरी समस्याओं का समाधान करेगी, और क्षेत्र के सभी देश लाभन्वित हो सकेंगे।

उन्होंने कहा कि साम्राज्यवादियों का उद्देश्य ढाका घोषणा पत्र के बिल्कुल विपरीत है। उन्होंने 1947 में नई दिल्ली में आयोजित एशियाई सम्मेलन में पं० जवाहर लाल नेहरू के वक्तव्य का उल्लेख करते हुए बताया कि इस क्षेत्र में आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए सहयोग की स्थापना आवश्यक है, जिससे क्षेत्र की प्राकृतिक सम्पदा के रूप में अथाह खनिज पदार्थों का पता लगाकर उनका उपयोग किया जा सके। ज्ञातव्य है कि उपनिवेशवादी देश क्षेत्र की इस नीति के विरुद्ध होते हुए इसकी सफलता में बाधक थे, और साम्यवाद का भय दिखाकर एशियाई सहयोग में रुकावटें खड़ी करने लगे। अपने उद्देश्य की पूर्ति में उन्होंने "सीटो" तथा "सेन्टो" जैसे सैनिक सन्धि वाले संगठनों को स्थापित भी कर लिया, जिससे कि एशियाई नीति सफल न हो सके। यद्यपि पाकिस्तान अपनी विवशता और निहित स्वार्थवश इन दोनों सैनिक सन्धियों में सम्मिलित हो गया, किन्तु हमें इस बात से सावधान रहना चाहिए कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ इस क्षेत्र में सक्रिय रही हैं, और रहेंगी। सार्क के देश ज्यों-ज्यों आत्मनिर्भर होंगे, इनकी गतिविधियाँ और बढ़ेंगी। यदि सार्क के देश सहयोग के लाभ को समझें तो साम्राज्यवादी शक्तियों की कोई भी भूमिका इस क्षेत्र में सफल नहीं हो सकेंगी।[2]

भारत के विरुद्ध दुष्प्रचार एवं विषवमन के प्रति सावधान करते हुए क्षेत्र के देशों को आश्वस्त किया कि भारत के प्रति फैलाया जा रहा दुष्प्रचार निराधार है। उन्होंने कहा कि सार्क में हर देश बराबर है। अत: किसी पर आधिपत्य स्थापित करने की बात ही नहीं है। उन्होंने शिखर बैठक के बाद दिल्ली लौटने पर स्पप्ट शब्दों में कहा कि—यदि सब देश एक समान न होते तो दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) की स्थापना ही न होती।

भारत के प्रधानमंत्री ने पाक राष्ट्रपति जिया-उल-हक के उस विचार का कि भारत की

---

1. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1984; दि पैट्रियाट नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1985.
2. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1985.

प्रबल शक्ति को भय दिखाकर दूर किया जा सकेगा का खण्डन करते हुए कहा कि इस प्रकार के विचार निराधार हैं, यह सभी देशों को विश्वास रखना चाहिए। उन्होंने पाकिस्तान के उस प्रचार के प्रति भी सावधान किया कि जिसमें उसके द्वारा अणुबम न बनाने का विचार व्यक्त किया, क्योंकि वह अणुशास्त्रों के उत्पादन का प्रयत्न कर रहा है।[1]

राजीव गाँधी ने सार्क के देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों को दृढ़ करने पर जोर देते हुए एक नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था और गेट (GATT) के उद्देश्य व लक्ष्य को महत्वपूर्ण बताया।[2] उन्होंने सार्क सहयोग के फलस्वरूप बांग्लादेश के चकमा लोंगों की समस्या तथा मिजो समस्या एवं विभिन्न द्विपक्षीय मामलों को हल किये जाने का आश्वासन दिया।[3] प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने पहली शिखर बैठक के उद्घाटन समारोह में सभी देशों को परामर्श दिया कि गुटनिरपेक्षता की सच्ची भावना के साथ हमारा सहयोग अन्य देशों के लिए एक उदाहरण बन सकेगा। उन्होंने सार्क संगठन को भाईचारे की भावना से सहयोग बढ़ाने के लिए एक उत्तम उपकरण बताया। साथ ही उन्होंने क्षेत्र की विभिन्नता का स्वागत करते हुए सहअस्तित्व के साथ एक दूसरे से बहुत कुछ सीखने और सिखाने की सह भावना व्यक्त की, यद्यपि क्षेत्र में राजनीतिक और सुरक्षा के विचारों में पर्याप्त अन्तर है, फिर भी हम परस्पर सन्देह को दूर करके क्षेत्रीय सहयोग की पूर्ति कर सकते हैं।[4]

पहली शिखर बैठक की सफलता का तात्कालिक लाभ भारत पाक समझौते में देखने को मिलता है। शिखर बैठक के बाद नई दिल्ली में भारत-पाक के बीच एक दूसरे के परमाणु अनुसंधान केन्द्रों पर आक्रमण न करने के बारे में सदाशयता के साथ समझौता हुआ। प्रधानमंत्री ने दिल्ली पहुँचते ही बांग्लादेश के राष्ट्रपति को शिखर बैठक की अच्छी सफलता एवं सार्क के रूप में एक नये युग की शुरुआत, जो दक्षिण एशिया के इतिहास में एक मोड़ लाने वाली घटना सिद्ध होगी, के बारे में सूचित किया।

---

1. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1985.
2. दि अमृत बाजार पत्रिका, कलकत्ता, 8 दिसम्बर, 1985; दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1985.
3. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1985.
4. दि अमृत बाजार पत्रिका, कलकत्ता, 8 दिसम्बर, 1985.

प्रथम शिखर बैठक के बाद भारत की लोकसभा में भारत के विदेश मंत्री बी० आर० भगत ने अपने वक्तव्य में श्रीलंका की सरकार को सावधान करते हुए कहा कि जातीय समस्या के समाधान का सैनिक हल नहीं होगा। वैदेशिक नीति की पाँच घण्टे की बहस में उन्होंने सैनिक बल के प्रयोग को बेकार बताते हुए उस पर नियंत्रण रखने का परामर्श दिया।[1]

भारत-पॉक सम्बन्धों को मधुर बनाने के उद्देश्य से भारत ने अपने नाभिकीय केन्द्र के उद्घाटन के अवसर पर 16 दिसम्बर, 1985 को उपस्थित रहने के लिए पाकिस्तान के उपराष्ट्रपति जनरल जिया को निमंत्रित किया, जिसका उद्देश्य नाभिकीय कार्यक्रम को गुप्त न रखकर खुला बताया गया, न कि उसका निरीक्षण करना।[2]

लोकसभा में दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) के उद्घाटन एवं ढाका घोषणा पत्र का हार्दिक स्वागत किया गया, और विचार-विमर्श द्वारा इण्डो-पॉक सम्बन्धों में सुधार तथा क्षेत्र के तनाव में कमी लाने के प्रति भी विश्वास व्यक्त किया गया।

भूतपूर्व विदेशमत्री दिनेश सिह ने सार्क संगठन में अफगानिस्तान, वर्मा तथा ईरान को सम्मिलित किये जाने का सुझाव दिया। सदस्यों ने विश्वास व्यक्त किया कि ढाका घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करने वाला देश पाकिस्तान अपनी युद्ध प्रियता तथा शस्त्रों की होड़ को त्यागने का प्रयास करेगा। बहस का आरम्भ करते हुए वेंकटारत्नम् ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि भारत की आवाज तभी सुनी जा सकेगी, जब वह आर्थिक और सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली होगा। प्रोफेसर एन० जी० रंगा ने राजीव गाँधी की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनकी भूमिका से ही महान शक्तियाँ भी सार्क सम्मेलन की मेज पर एकत्रित हो सकी हैं। इसके अलावा कई सदस्यों ने राजीव गाँधी की पश्चिमी देशों की यात्रा के बारे में आलोचना भी की, किन्तु सार्क की उपलब्धियों की सभी द्वारा प्रशंसा की गयी।[3]

---

1. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1985.
2. लोकसभा डिवेट्स, लोकसभा सेक्रेट्रिएट, नई दिल्ली, वाल्यूम 11, नं० 15, 9 दिसम्बर, 1985, पृ० 315-388.
3. वही.

बांग्लादेश के स्व० राष्ट्रपति जिया उर रहमान, जिनकी सूझबूझ से सार्क अपने अस्तित्व में आया और विकासोन्मुख हुआ, के क्षेत्रीय सहयोग का आदर्श स्वप्न साकार हो गया, और आशा व्यक्त की गई कि सार्क अपनी शिशु अवस्था से शीघ्र ही एक शक्तिशाली वयस्क बन सकेगा।[1]

यदि सार्क उद्भव के पहले तथा बाद की परिस्थितियों को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ढाका शिखर बैठक का चमत्कार उस पारस पत्थर के समान लगेगा, जो कूड़ा करकट को सोने में बदल देता है।[2] इस सम्बन्ध में पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जिया-उल-हक का उदाहरण अच्छा होगा, जिन्होंने सार्क के द्विपक्षीय एवं झगड़ालू मतभेदों को मंच पर न उठाने वाले सिद्धान्त का उल्लंघन करते हुए शिखर बैठक के पहले 150 विदेशी पत्रकारों के सामने (जिसमें पश्चिमी देशों के पत्रकार भी सम्मिलित थे) भारत के विरुद्ध अप्रासंगिक विषवमन किया। उन्होंने बांग्लादेश के एक पत्रकार से बात करते हुए भारत के विस्तृत आकार तथा सैन्य शक्ति को आशंका की दृष्टि से देखते हुए सार्क पर प्रभुत्व जमाने वाला बताकर आरोप लगाया, और भारत के विरुद्ध अप्रिय एवं आपत्ति जनक बातें करते हुए ढाका स्थित पाकिस्तानी दूतावास के माध्यम से गन्दा प्रचार भी कराया। किन्तु शिखर बैठक के बाद अपने में आश्चर्यजनक बदलाव लाते हुए पत्रकारों को बताया कि भारत के विस्तृत आकार तथा सैनिक शक्ति में बड़ा होने पर भी उससे डरने की कोई बात नहीं है, क्योंकि सार्क में छोटे-बड़े सभी सदस्य देश बराबर और समान हैं। इसके अलावा उन्होंने बताया कि प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी से व्यक्तिगत एवं अनौपचारिक रूप से हुई बातों ने उनके विचारों एवं भावनाओं में परिवर्तन ला दिया है, जिसे कायापलट कहा जा सकता है। यद्यपि दोनों प्रधानों में पहले भी स्वतंत्रतापूर्वक बातचीत हो चुकी थी, किन्तु शिखर के पश्चात् यदि कोई विशेष बात थी, तो वह थी, "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन" (SAARC) की भावना। जिसने जिया को प्रभावित किया और उनकी प्रतिक्रिया को शिथिल बनाया। परिणामस्वरूप उन्होंने सार्क को मित्रता, समझ, प्रेम तथा सहयोग प्रदान करने वाला बताया।[3]

---

1. एन० सी० मेनन, प्राबलेम्स एण्ड प्रामिस ऑफ सार्क, दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 11 दिसम्बर, 1985.
2. वही.
3. वही.

जनरल जिया राजीव गाँधी को अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट के समान मानते थे, जो नर्मी का व्यवहार करते थे, किन्तु शिखर बैठक के पहले छः देशों के प्रधानों एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकारों के समक्ष भारत के विरोध में, स्वयं पर नियंत्रण न रखते हुए, बहुत कुछ कहा था, किन्तु शिखर बैठक के बाद उनमें बहुत बदलाव आ गया। उन्हें भय था कि यदि वे ऐसा नहीं करते तो लोग उन्हें पाखण्डी समझेंगे और उनका अपना अविश्वास उन्हीं के लिए हानिकारक सिद्ध होगा।[1]

सार्क का सर्वाधिक अच्छा पक्ष यह है कि यह एक ही स्थान पर बनी रहने वाली संस्था नहीं है। संगठन की मंत्रिपरिषद् की व्यवस्था, नीति निर्धारण, सहयोग के कार्यक्रमों का सिहावलोकन, सहयोग के नये क्षेत्रों की जानकारी करना और आवश्यकतानुसार उसकी व्यवस्था करना आदि के लिए भी एक महत्वपूर्ण अंग है।

पहली शिखर बैठक से सर्वाधिक लाभ के रूप में भारत तथा बांग्लादेश ने पारस्परिक द्विपक्षीय समस्याओं को एक दूसरे के सामने रखते हुए उनके समाधान में सफलता प्राप्त की है, चकमा समस्या इसी का उदाहरण है। राजीव गांधी ने सार्क को जनता का कार्य स्वीकार करते हुए उसे जन आन्दोलन का रूप दिया जाना आवश्यक बताया, जिससे सार्क की लोकप्रियता बढ़ सकेगी। उन्होंने मन्त्रिपरिषद् को आतंकवाद के विरुद्ध अध्ययन हेतु एक अध्ययन समिति बनाने और उसके प्रतिवेदन पर विचार करते हुए अपने सुझाव राष्ट्राध्यक्षों के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। यह एक दिलचस्प बात है कि सार्क घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करने वाला पाकिस्तान सिक्ख आतंकवादियों को पाकिस्तानी कैम्पों में प्रशिक्षित करके भारत में आतंकवादी कार्यवाहियों के लिए भेजता है, फिर भी भारत उसे बर्दाश्त कर रहा है। सार्क की एक बड़ी उपलब्धि यह है कि जहाँ प्रत्येक देश अलग-अलग रहते हुए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मंचों पर असफल छीना-झपटी करते थे, वहीं आपस में सहयोग के साथ एवं समान भागीदारी के साथ उस मंच पर सफलता प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही यदि भारत, नेपाल तथा बांग्लादेश परस्पर सहयोग के साथ ऊर्जा समस्या का समाधान करें,

---

1. वही.

तो वे अपने क्षेत्र में असीमित ऊर्जा की सम्भावना के द्वारा इस समस्या का समाधान कर सकते हैं, जो क्षेत्र की एक बड़ी समस्या है, और जो प्रगति में बाधक है।[1]

सार्क संगठन की स्थापना के विश्वव्यापी प्रतिक्रिया पर भी दृष्टि डाल लेना असंगत न होगा, क्योंकि, ढाका शिखर सम्मेलन (1985) के बाद दक्षिण एशिया क्षेत्र के वाह्यद्दर के देशों की जो भी प्रतिक्रियायें हुयी हैं, वे द्रष्टव्य हैं।

चीन के प्रधानमंत्री झाओ झियांग ने शिखर बैठक की प्रशंसा करते हुए उसे दक्षिण एशिया के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटना बताया। उन्होंने बांग्लादेश के राष्ट्रपति जनरल इरशाद को एक तार द्वारा अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि बांग्लादेश द्वारा प्रारम्भ तथा सातों देशों के संयुक्त प्रयासों से निर्मित क्षेत्रीय सहयोग एक प्रशंसनीय कार्य है, और यह दक्षिण एशिया के हित में है, एवं जो शान्ति की स्थापना में साधक होगा।

जापान के प्रधानमंत्री यशु हिरो नाका सोनी ने दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) आन्दोलन के सफल परिणामों की सराहना की।

आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री आर०जी०एल० हॉक ने दक्षिण एशिया क्षेत्रीय संगठन के प्रति अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त किया।

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रोनॉल्ड रीगन ने शिखर के सभापति को सम्बोधित अपने सन्देश में कहा कि हमारा देश आपके प्रार्थना पत्र पर क्षेत्र के सभी कार्यों में उचित सहयोग प्रदान करेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सेक्रेटरी जनरल जाबियर पीरेज दि कोइयार ने दक्षिण एशिया में सार्क की प्रत्येक सफलता की कामना की। शिखर बैठक के सभापति को सम्बोधित अपने एक सन्देश में उन्होंने आशावादी शब्दों में कहा कि सार्क अपने क्षेत्र में एक विकास का युग का प्रारम्भ करेगा, और तनाव कम करने में सहायक होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रधान ने जनरल इरशाद सहित सभी

---

1. वही.

राष्ट्राध्यक्षों को सार्क के ऐतिहासिक सम्मेलन के लिए अपनी शुभ कामनायें व्यक्त करते हुए कहा कि विगत कुछ वर्षों में इस नये क्षेत्रीय संगठन ने सन्तोषजनक कार्य किया है।[1]

सार्क संगठन का सार्वभौमिक प्रभाव इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि विश्व के पश्चिमी आर्थिक समूह के प्रभावशाली सदस्य जापान तथा संयुक्त राज्य अमेरिका सार्क की योजनाओं में सम्मिलित होने के इच्छुक हैं, तथा सार्क की स्थायी समिति की सहायता से एकमत के आधार पर हर सम्भव सहायता प्रदान करना चाहते हैं। इन देशों ने इस निर्णय से भारत को छोड़कर सभी सदस्य राष्ट्रों ने उनकी सहायता लेने की इच्छा व्यक्त की, किन्तु भारत यह चाहता था कि इस प्रकार के साधनों का प्रबन्ध क्षेत्र के अन्दर ही किया जाना चाहिए, क्योंकि कोई भी बाहरी देश बिना किसी राजनीतिक या आर्थिक लाभ के किसी प्रकार की सहायता नहीं दे सकेगा। यदि यह सहायता ली जाती है, तो निश्चित रूप से सार्क पर विदेशी राज नीतिक प्रभुत्व स्थापित हो जायेगा।[2]

द्वितीय शिखर सम्मेलन, बंगलौर, 1986

''दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन'' (SAARC) के प्रथम शिखर सम्मेलन, अर्थात् ढाका घोषणा-पत्र में औपचारिक रूप से सार्क संगठन की स्थापना हो चुकी थी, जिसकी दो प्रमुख विशेषताएँ थीं—

1. बिना किसी प्रभाव के अपनी स्वंतत्र अभिव्यक्ति तथा शाान्तिपूर्ण ढंग से किसी बात को तय करना। यह ज्ञातव्य है कि इसी प्रकार की योजना बांग्लादेश द्वारा सन् 1980 में मूल प्रपत्र में तैयार कर ली गयी थी, किन्तु अप्रैल, 1981 की पहली विदेश सचिव की बैठक में पाकिस्तान के कारण इसको स्थगित कर दिया गया था। तत्पश्चात् सितम्बर, 1981 में पाकिस्तान द्वारा युद्ध नहीं का समझौता का प्रस्ताव भारत के समक्ष रखा गया, जिसे गुण-दोष के आधार पर अनावश्यक समझा गया।

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 8 दिसम्बर,1985; दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 10 दिसम्बर, 1985; दि ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 20 अक्टूबर, 1986.
2. भवानी सेन गुप्ता, ''जापान ऐण्ड दि सार्क, ''दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 11 अप्रैल, 1986; के० सुब्रहमण्यम और जसजीत सिंह,ग्लोबल सिक्योरिटी, नई दिल्ली, 1987, पृ० 118.

2. शिखर समिति ने सार्क के स्थायित्व के लिए एक मंत्रिपरिषद् (काउन्सिल ऑफ मिनिस्टर्स) तथा सार्क सचिवालय की स्थापना का निर्णय लिया था।[1]

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) का द्वितीय शिखर सम्मेलन 16-17 नवम्बर, 1986 को बंग्लौर (भारत) में सम्पन्न हुआ, जिसमें क्षेत्र के सातों राष्ट्रों के प्रधान एकत्रित हुए। इस सम्मेलन में विभिन्न राष्ट्राध्यक्षों द्वारा अपने-अपने विचार व्यक्त किये गये।

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री एम० के० जुनेनो ने पाकिस्तान की ओर से दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन" (SAARC) के सभी देशों के साथ किसी भी स्तर पर सहयोग करने की बात .की, जिससे कि आतंकवाद की चुनौती का सामूहिक रूप से सामना कियाा जा सके। उन्होंने इसके लिए एक समझौते का प्रस्ताव रखा, किन्तु उस पर किसी ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। परमाणु अस्त्रों पर बात करने की अपनी सहमति व्यक्त करते हुए उन्होंने दक्षिण एशिया सम्बन्धी एक ऐसे समझौते की मांग की जिसमें पूर्ण सैनिक अभ्यासों की पूर्व सूचना दी जाय। तथा अन्य राज्यों को दर्शक के रूप में आमन्त्रित किया जाय साथ ही उन्होंने कृषि, ग्रामीण विकास,, तकनीकी ज्ञान, परिवहन आदि उन कार्य क्षेत्रों में सहयोग की बात भी दोहराई, जिन पर सहमति प्राप्त हो चुकी है। ज्ञातव्य है कि भारत और पाकिस्तान में इस प्रकार की द्विपक्षीय व्यवस्था है कि आपनी-अपनी सीमा के अन्दर सैनिक गतिविधियों की जानकारी एक दूसरे को दी जाय। अत: इस प्रश्न को पाकिस्तान का प्रदर्शन मात्र समझकर उस पर ध्यान नहीं दिया गया।

श्रीलंका के राष्ट्रपति ने श्रीलंका में होने वाली आतंकवादी गतिविधियों पर सदस्य देशों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने सन्1983 से बढ़ती हुई इस समस्या का समाधन करने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने भारत के लड़ाकू तमिलों का हवाला देते हुए कहा कि राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विरोध का तरीका अहिंसक होना चाहिए, हिंसक नहीं। अत: भारत को इस जातीय समस्या पर विचार करना चाहिए। उन्होंने महात्मा बुद्ध और महात्मा गांधी के आदर्शों एवं अहिंसक सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले श्रीलंका को, एक अहिंसक देश के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने पं०

---

1. पार्थ एस० घोष, कोआपरेशन एण्ड कॉन्फ्लिक्ट इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, 1989 पृ० 10-11.

पद से बोलते हुए राजीव गांधी ने क्षेत्र की समान एवं द्विपक्षीय समस्याओं को सार्क से बाहर रखते हुए उनका हल निकालने का आवाहन किया। उन्होंने जोर देकर कहा कि सातों देशें को यह निश्चित कर लेना चाहिए कि उनके क्षेत्र या सीमाओं पर उनके द्वारा न तो कोई आतंकवादी कार्यवाही करने दी जायेगी, और न ही आतंकवादियों को अपने यहाँ शरण दी जायेगी। उन्होंने कहा कि हमें बीते समय के कटु अनुभवों से ऊपर उठकर तथा अलगाववादी शंकाओं का निषेध कर शान्ति कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाना चाहिए। हमें समय और साधनों की बर्बादी न करके नये कार्यक्षेत्रों में सहयोग करना चाहिए तथा विभाजित करने वाले तत्वों की ओर न देखकर एकता बांधने वाले तत्वों की ओर देखना चाहिए। उन्होंने कहा कि क्षेत्र के गरीब तथा कष्ट उठाने वाले वर्ग हमसे यह आशा करते हैं कि हम उनकी कठिनाइयों को दूर करें। उनका कथन था कि आधुनिक संसार की एक बड़ी आवश्यकता तकनीकी ज्ञान की है, जिसमें इस क्षेत्र ने विकास किया है, और आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहा है।[1] आवश्यकता इस बात की है कि अब राष्ट्रीय प्रयत्नों को क्षेत्रीय सहयोग का सहारा लेकर और अपने ही प्रयत्नों पर भरोसा करके समान समस्याओं का समाधान करें। उन्होंने बांग्लादेश तथा श्रीलंका के राष्ट्रपति एवं भूटान नरेश के उत्साहपूर्ण उत्तर का हवाला देते हुए कहा कि उनके अनुसार क्षेत्र में हमें व्यापार और वाणिज्य कार्यक्रम को बढ़ाना चाहिए। राजीव गांधी ने नशीली दवाओं की समस्या, महिलाओं का विकास और योगदान तथा कलाओं एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम के आदान-प्रदान द्वारा सहयोग में सामंजस्य लाने के लिए एक समझौते का प्रस्ताव रखा। उनका कथन था कि क्षेत्रीय सहयोग हम नेताओं के किसी आदेश या आज्ञा पर निर्भर न होकर पारस्परिक सम्पर्कों पर आधारित है, जो सभी स्तरों पर होना चाहिए। उनका विचार था कि शस्त्रों की होड़ अर्थव्यवस्था एवं मानव जाति के सुधार सम्बन्धी साधनों को विफल एवं बर्बाद कर देती है। अतः परमाणु अस्त्रों के परीक्षण पर रोक लगनी चाहिए। उन्होंने सैनिक अस्त्रों से सुसज्जित शक्तियों की आलोचना करते हुए कहा कि इनकी कमी न बुझने वाली प्यास हर क्षेत्र के विकास में बाधक है। अतः हमारी पहली आवश्यकता यह है कि निर्गुट परिवार के हम सभी सदस्य राष्ट्र परमाणु अस्त्रों की होड़ का विरोध करने के लिए सहमत हों। साथ ही उन्होंने आतंकवाद को एक ऐसा मुद्दा

1. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 17 दिसम्बर, 1986, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 17 नवम्बर, 1986.

बताया जो सार्क की बैठकों में छाया रहता है, और जिससे प्राय: मतभेद पैदा होता है। अत: सभी को एकमत होकर आतंकवाद की निन्दा करनी चाहिए, और उसे बढ़ाने वाला अथवा आश्रय देने वाला कोइ काम नहीं करना चाहिए।[1]

प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने भारत की इच्छा व्यक्त करते हुए कहा कि व्यापार, उद्योग, ऊर्जा, पर्यावरण तथा तकनीकी स्तर को सार्क के क्षेत्र के अधीन लाया जाय और इसमें सहयोग बढ़ाया जाय।[2] साथ ही उन्होंने कृषि को जीविका का आधार बताते हुए ग्रामीण विकास एवं मौसम विज्ञान की जानकारी पर विशेष रूप से ध्यान दिलाया। इसके साथ ही संगठित डॉक सेवायें, दूर संचार, परिवहन व्यवस्था को लागू करने तथा नशीली चीजों के नाजायज व्यापार पर राष्ट्रीय स्तर पर रोक लगाने के बारे में भी प्रधानों का ध्यान आकर्षित किया।[3]

इस शिखर से पूर्व विदेश मंत्रियों की बैठक बंगलौर में हुई, जिसमें शिखर सम्मेलन द्वारा जारी किये जाने वाले घोषणा-पत्र को तैयार किया गया। इसकी औपचारिक रूप से घोषणा की समाप्ति बैठक में की गयी, जिसकी निम्नलिखित विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(1) सातों राष्ट्रों के प्रधानों ने क्षेत्र के लिए शान्ति, स्थायित्व, मित्रता, तथा विकास की इच्छा को दोहराया।

(2) संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र का कठोरता से पालन करते हुए, निर्गुट की भावना के साथ समानता, क्षेत्रीय अखण्डता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, शक्ति का प्रयोग न करना, एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना तथा शान्तिपूर्वक किसी झगड़े का निपटारा करने का दृढ़ निश्चय किया गया।

(3) सभी प्रधानों ने जनता की इच्छा और सरकारों को मिलकर सार्क के शासन-पत्र के अनुसार समान नीतियों का अनुसरण करके समान समस्याओं के समाधान की प्रबल इच्छा व्यक्त की, और सद्व्यवहार करके समान समस्याओं के समाधान की प्रबल

---

1. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 17 नवम्बर, 1986.
2. दि हिन्दू, मद्रास, 18 नवम्बर, 1986.
3. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 19 नवम्बर, 1986.

(9) सभी सहमति तथा मन्त्रिपरिषद् (काउन्सिल ऑफ मिनिस्टर्स) द्वारा स्वीकृत एक सार्क सचिवालय की स्थापना का स्वागत किया गया, और इसे काठमाण्डू में बनाने तथा प्रथम जनरल सेक्रेटरी के पद पर बांग्लादेश के राजदूत अबुल अहसन की नियुक्ति का निर्णय लिया गया। सचिवालय का मुख्य उद्देश्य कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करने में सहायता देना माना गया।[1]

(10) राष्ट्रीय विकास योजनाओं के अन्तर्गत क्षेत्र के सभी बच्चों के विकास की आवश्यकता का अनुभव किया गया, जो भविष्य में वयस्क होकर कार्यक्रम का भार ग्रहण कर सकेंगे। अत: सभी बच्चों को उनके अधिकारों का ज्ञान कराया जाय तथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रस्तावित बच्चों के अधिकारों को स्वीकार किया जाय। सन् 1990 तक सभी बच्चों को रोगमुक्त करने के लिए टीके लगवाने, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने, बच्चों को पौष्टिक भोजन देने तथा पीने के साफ पानी की व्यवस्था करने पर बल दिया गया, और सन् 2000 तक बच्चों के लिए आवास की व्यवस्था सुनिश्चित करने का प्रस्ताव रखा गया। यह भी निश्चय किया गया कि ऐसे प्रयास किये जायें कि किसी भी बच्चे की मृत्यु पारिवारिक गरीबी अथवा कुपोषण के कारण न हो। इस कार्य के लिए स्थायी समिति को बच्चों के विकास पर ध्यान देने, प्रति वर्ष इस समस्या पर पुन: विचार करने, सम्बन्धित सूचनायें इकट्ठी करने तथा अनुभवों का आदान प्रदान करने का भी आदेश दिया गया।[2]

बच्चों के विकास एवं उनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित सार्क की एक बैठक, शिखर सम्मेलन से पूर्व 29 अक्टूबर, 1986 को नई दिल्ली में हुई थी, जिसमें बच्चों के स्वास्थ्य एवं विकास हेतु एक सार्क संविदा बनाने का विचार व्यक्त किया गया था, तथा उसे क्षेत्र के सातों देशों की राष्ट्रीय योजना का एक भाग बनाया जाना भी निश्चित किया गया था। साथ ही बैठक में बालिकाओं की देखभाल तथा उनके पालन-पोषण पर विशेष। इसके अतिरिक्त बालिकाओं को ऐसी शिक्षा तथा कार्यों में

---

1. दि हिन्दू, मद्रास, 18 नवम्बर, 1986; दि टाइम्स ऑफ इण्डिया नई दिल्ली, 18 नवम्बर, 1986.; दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 18 नवम्बर, 1986.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 18 नवम्बर, 1986.

प्रशिक्षित करने पर बल दिया गया, जिससे कि वे गृहों कार्यों से कुछ मुक्ति पाने के साथ-साथ जीविकोपार्जन में भी सफल हो सकें।[1]

(11) सभी प्रधानों ने सामाजिक तथा आर्थिक विकास, राजनीतिक स्थायित्व, क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को नुकसान पहुँचाने वाले आतंकवाद को रोकने, क्षेत्र से बाहर करने, अपने-अपने क्षेत्र में प्रश्रय न देने तथा उनके कार्यो एवं गतिविधियों की तीव्र निन्दा करने का प्रबल प्रस्ताव रखा। इसी सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव संख्या 2625 के महत्व एवं सिद्धान्तों को भी स्वीकार किया गया, जिसके अनुसार किसी राज्य को उकसाने, आतंकवादी कार्यों या झगड़ों में सहायता देने, किसी दूसरे राज्य में भाग जाने व किसी भी प्रकार की आतंकवादी गतिविधियों में सहयोग देने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है।[2]

प्रधानों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्दश्यों एवं सिद्धान्तों का समर्थन करते हुए उसके प्रति अपने पूर्ण विश्वास को व्यक्त किया, और उन्होंने उसे शान्ति के लिए, निरस्त्रीकरण के लिए, न्याय एवं निष्पक्षता के साथ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं आर्थिक सम्बन्धों के सुधार के लिए एक उचित मंच बताया तथा उससे सम्बन्धित अनेक संस्थाओं के स्थायित्व एवं कार्यों को सुदृढ़ बनाने का निश्चय किया।

(12) सभी प्रधानों ने निर्गुट आन्दोलन के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों में अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त किया, और उसे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना में ऐतिहासिक भूमिका निभाने वाला एक महत्वपूर्ण आन्दोलन बताया और इसके द्वारा समान एवं न्यायोचित आर्थिक सम्बन्धों एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को दृढ़ करने में इसके महत्वपूर्ण योगदान को स्वीकार किया। उन्होंने निर्गुट देशों की हरारे शिखर बैठक की सफलता के आधार पर इस आन्दोलन की शक्ति, एकता, बढ़ते हुए सम्मान तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में इसके स्थान को महत्वपूर्ण बताया। उनके अनुसार शान्ति, सुरक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के प्रति आवश्यक सम्मान का पर्यावरण विपरीत होता जा रहा है, जो सार्क उद्देश्यों की पूर्ति में बाधक है। उनके अनुसार राजनीतिक पर्यावरण अमेरिका तथा सोवियत रूस जैसी महाशक्तियों के

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 30 अक्टूबर,, 1986
2. दि हिन्दू, मद्रास, 18 नवम्बर, 1986; दि टाइम्स ऑफ इण्डिया नई दिल्ली, 18 नवम्बर, 1986.

आपसी तनावपूर्ण सम्बन्धों से ही बिगड़ा हुआ है। बल प्रयोग की धमकी, आक्रमण तथा आर्थिक दबाव, अन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य करने की प्रवृत्ति आदि अनेक बातें महाशक्तियों में तनाव पैदा करने और सैनिक बल के प्रयोग को बढावा देती है, तथा नाभिकीय अस्त्रों की होड़ तथा अणुबम एवं हाइड्रोजन बमों के निर्माण से मानव जाति के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है।[1]

(13) राष्ट्राध्यक्षों ने अनुभव किया कि पूर्व शिखर बैठक में जो वायदे किये गये थे, उनकी पूर्ति वांछित रूप में नहीं हो पा रही है। सन्तोष यही है कि आज भी हम उन पर विचार कर रहे हैं। उन्होंने पारस्परिक बातचीत और पत्र-व्यवहार को आवश्यक बतलाया और नाभिकीय अस्त्रों के निर्माण तथा उनके परीक्षण पर रोक लगाने से सम्बन्धित एक सन्धि के प्रस्ताव को सामने रखा।

(14) राष्ट्राध्यक्षों ने विकासशील देशों को प्रभावित करने वाली विश्व की बिगड़ती हुई अर्थव्यवस्था पर चिन्ता व्यक्त की, जो क्षेत्र की विकास योजनाओं को हानि पहुँचा रही है। उन्होने अनुभव किया कि मूल्यों का गिरना, बढ़ता हुआ संरक्षणवाद, आयातित चीजों पर कम लाभ, धन का अधिक मात्रा में बाहर जाना तथा कर्जों का बढ़ना ऐसे नकारात्मक कारक हैं जो क्षेत्र के लिए हानिकारक हैं। इसी प्रकार कर्जो की अदायगी, ब्याज की ऊंची दरें, मुद्रा विनिमय में अस्थिरता, अधिक बेरोजगारी, सार्वभौमिक तथा अन्तर्निर्भरता आदि भी क्षेत्र के विकास में समान बाधाएँ हैं। साथ ही प्रधानों ने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा, बहुपक्षीय व्यापार पद्धति को सुदृढ़ बनाने के लिए वित्त सुधारों की आवश्यकता पर भी बल दिया।

(15) सातों राष्ट्राध्यक्षों ने मन्त्रिमण्डलीय स्तर पर सार्क देशों की प्राथमिकताएँ अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मुद्दों पर पहचान लेने पर सन्तोष व्यक्त किया। इन प्राथमिकताओं में रियायती सहायता, कर्जों में सुधार, व्यापार का सरलीकरण, मूल्यों में स्थिरता, तकनीकि ज्ञान आदि क्षेत्रीय महत्व की बातें सम्मिलित हैं। उन्होंने बहुपक्षीय व्यापार की बात चीत को एक चुनौती मानकर विशेपज्ञों द्वारा उसके समाधान पर बल दिया, तथा प्राथमिकता के आधार पर अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने के प्रयत्न पर

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 18 नवम्बर, 1986, दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 18 नवम्बर, 1986.

भी जोर दिया।

(16) बंगलौर शिखर बैठक में क्षेत्रीय सहयोग के नये कार्यक्रमों की सम्भावनाओं का भी पता लगाया गया, जिसमें प्रसार साधन (रेडियो, टी० वी०), पर्यटन मुद्रा विनिमय और सुविधाओं के साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान एवं संरक्षण तथा युवा कार्यक्रम सम्बन्धी स्वयं सेवी संगठन इत्यादि प्रमुख थे।[1]

बंगलौर शिखर सम्मेलन की एक महत्वपूर्ण बात यह भी थी कि सातों देशों के विदेश मंत्रियों ने क्षेत्रीय सहयोग के लिए दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के एक सचिवालय की स्थापना से सम्बन्धित स्मरण पत्र पर हस्ताक्षर किये, और जिसके प्रथम सेक्रेटरी जनरल पद पर बांग्लादेश के कूटनीतिज्ञ अबुल अहसन की नियुक्ति पर निर्णय लिया गया। विदेश मंत्रियों के इस प्रस्ताव का सभी प्रधानों ने स्वागत किया। इस सचिवालय का मुख्य कार्य समस्त क्रिया कलापों में समन्वय स्थापित करना तथा आवश्यक दिशा निर्देश करना होगा। सेक्रेटरी जनरल की नियुक्ति मन्त्रिपरिषद (काउन्सिल ऑफ मिनिस्टर्स) द्वारा उन लोगों में से की जायेगी, जिन्हें सदस्य राज्य नामांकित करेंगे तथा अंग्रेजी वर्णानुक्रम से बारी बारी से नियुक्ति 2 वर्ष के लिए होगी, और यह पद एक राजदूत के समान माना जायेगा। यदि कोई सेक्रेटरी जनरल अपने कार्य काल को पूरा नहीं कर पाता तो शेष समय की अवधि के लिए मंत्रिपरिषद् (काउन्सिल ऑफ मिनिस्टर्स— की सहमति पर वर्णानुक्रम के अनुसार ही नियुक्ति होगी। इसकी सहायता के लिए कुछ अधिकारी, कर्मचारी तथा विशेष कार्य करने वाली इकाइयाँ (डिविजन्स) भी होंगी। अधिकारी वर्ग की नियुक्ति सेक्रेटरी जनरल द्वारा, उन्हीं व्यक्तियों में से की जायेगी, जिन्हें सदस्य देश नामजद करेंगे, किन्तु प्रत्येक सदस्य देश एक व्यक्ति को ही नामजद कर सकेगा। यह अधिकारी निर्देशक के स्तर का होगा, और सौंपे गये विभाग का कार्य देखेगा। निर्देशक की नियक्ति 3 वर्ष के लिए होगी किन्तु इसे सदस्य राष्ट्र संस्तुति पर 3 वर्ष के लिए फिर बढ़ाया जा सकेगा। साथ ही सचिवालय के अन्य कर्मचारी सदस्य राज्यों के नागरिक होंगे, जिनका चयन प्रतियोगितात्मक परीक्षा के आधार पर होगा।[2]

---

1. दि हिन्दू, मद्रास, 18 नवम्बर, 1986.
2. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 18 नवम्बर, 1986; एशियन रिकार्डर, नई दिल्ली, 17-23 दिसम्बर,

सेक्रेटरी जनरल का मुख्य कार्य पत्र व्यवहार द्वारा जोड़ने वाली एक कड़ी के रूप में होगा। यह अधिकार उसे स्थायी समिति द्वारा क्षेत्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के बीच समान हित के मामलों के लिए दिया जायेगा, जिसका मार्गदर्शन मन्त्रिपरिषद् (काउन्सिल ऑफ मिनिस्टर्स) करेंगे।

सचिवालय का सभी कार्य अंग्रेजी भाषा में होगा। सचिवालय की समस्त साज-सज्जा का भार नेपाल सरकार पर होगा, किन्तु सचिवालय के प्रति वर्ष के बजट का निर्धारित अंश प्रत्येक सदस्य राज्य वहन करेगा। साथ ही सचिवालय के व्यय-वितरण की जाँच वर्ष में एक बार आडिटरों द्वारा की जायेगी तथा आडिटरों की नियुक्ति बारी-बारी से तीन सदस्य राज्यों द्वारा की जायेगी।[1]

बंगलौर शिखर सम्मेलन में दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के सचिवालय की स्थापना के सम्बन्ध में जो प्रालेख स्वीकृत हुआ, वह इस प्रकार है—

सचिवालय में सात निर्देशक नियुक्त किये जायेंगे। निर्देशकों का पद काउन्सलर्स के समान होगा। सात निर्देशक होने का कारण प्रत्येक राज्य से एक निर्देशक होना था।

सचिवालय की स्थापना का प्रारम्भिक व्यय नेपाल सरकार वहन करेगी, किन्तु प्रति वर्ष का व्यय विदेश सचिवों द्वारा निश्चित किया जायेगा।[2]

विदेश मंत्रियों द्वारा हस्ताक्षरित निर्णय के अनुसार भारत द्वारा व्यय-मद में पूरे व्यय का 32 प्रतिशत, पाकिस्तान 25 प्रतिशत, बंगलादेश, नेपाल तथा श्रीलंका, 11-11 प्रतिशत तथा भूटान एवं मालद्वीव 5-5 प्रतिशत का अंशदान करेंगे।[3]

बंगलौर शिखर सम्मेलन के बाद भारतीय प्रधनमंत्री श्री राजीव गाँधी ने लोकसभा में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये—

1986, वाल्यूम 32, नं० 51, पृ० 1924.

1. वही.
2. वही.
3. वही.

''दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग (सार्क) की शीर्ष बैठक जो 16-17 नवम्बर, 1986 को बंगलौर में क्षेत्रीय सहयोग के लिए हुई थी, वह संसार के सबसे बड़े और अभी हाल के क्षेत्रीय सहयोग के विकास में एक महत्वपूर्ण कदम था।

बांग्लादेश के प्रधान नेतृत्व के अधीन सार्क को विचार के स्थल से वास्तविकता की ओर अग्रसित किया था। अपने सभापतित्व में इसके लाभों को सूत्रबद्ध करने तथा प्रतिक्रियाओं से नये क्षेत्र में सहयोग और आगे के विकास के लिए प्रयत्न करेंगे।

सहयोग के क्षेत्रों को, जिन्हें हम लोगों ने स्वीकार किया है, हमारे जनता के जीवन स्तर को ऊपर करने में प्रभावित करती है। इससे कृषि, वन विभाग, मौसम सम्बन्धी विज्ञान, प्राकृतिक साधनों का समुचित प्रबन्ध, बच्चों और महिलाओं का विकास सम्मिलित है। हमने नशीली चीजों के प्रयोग तथा आतंकवाद का भी मिलजुल कर सामना करने का दृढ़ विश्वास व्यक्त किया है। हम लोगों का आधारभूत प्रयत्न यह है कि जन-जन के सम्पर्क को बढ़ाया जाय और वह भी सभी स्तरों पर तथा रोकने वाली समस्याओं को हल किया जाय, और आपसी ज्ञान के क्षेत्र की कमियों को समाप्त किया जाये।

मुझे विश्वास है कि इस प्रकार का जन-जन का सहयोग हमारे सम्पर्कों के कार्यो को केवल पूर्णता ही नही प्रदान करेगा, बल्कि उन महत्वपूर्ण कार्यो का भी पता लगायेगा, जिनको अभी तक आंका नहीं जा सका है। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि इस प्रकार का सम्पर्क समान इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को और अधिक समझने की भावना को प्रेरित करने में सहायक होगा, तथा साथ ही साथ इसका योगदान हमारे आवश्यक खर्चों को बचायेगा और धन के एकत्रीकरण में सहयोग होगा। इससे मित्रता और विश्वास के विकास में भी दृढ़ता आयेगी।

बंगलौर का घोषणा-पत्र और अन्य अभिलेखों, जिसे हमने द्वितीय सार्क के शीर्ष बैठक में स्वीकार किया है, इन समान उद्देश्यों को कार्यरूप में परिणित करने में एक महत्वपूर्ण कदम है।

सार्क एक राजनीतिक संघ नहीं है। द्विपक्षीय समस्यायें इसके परिधि के बाहर हैं। बंगलौर की

शीर्ष बैठक ने इतना होते हुए भी अन्य नेताओं के साथ द्विपक्षीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार का आदान प्रदान किया है।[1]

बाद में प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने संसद भवन दिल्ली में संसद सदस्यों से भी वार्तालाप के अवसर पर शिखर बैठक का विवरण इस प्रकार दिया[2]—

उनका कथन था कि यद्यपि शिखर बैठक में आतंकवाद पर चर्चा हुई, किन्तु कोई खास प्रगति नहीं हो सकी, क्योंकि आतंकवाद की परिभाषा को लेकर मतभेद बना रहा। फिर भी आशा है कि कोई सर्वमान्य परिभाषा निकाल सकेगी। उन्होंने बताया कि आतंकवाद तथा नशीले पदार्थों का व्यापार किसी न किसी रूप में आपस में सम्बन्धित है। अत: दोनों का सामना करना है।

उन्होंने बंगलौर शिखर सम्मेलन को विश्व की सबसे बड़ी एवं महत्वपूर्ण बैठक बताया, जो क्षेत्रीय सहयोग के रूप में एक विकास का चरण है। बैठक को उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक अच्छा अवसर बताते हुए उन्होंने क्षेत्र की समान समस्याओं के समाधान के साथ जनजीवन के उत्थान पर भी विचार व्यक्त किये।

एक सदस्य द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में श्री गाँधी ने सार्क सचिवालय के लिए धन की व्यवस्था कर लिये जाने की बात स्पष्ट की।

व्यापार के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट किया कि अभी तक क्षेत्र को सार्क के अधीन नहीं लाया जा सका है, और निकट भविष्य में भी इस पर विचार की आशा नहीं है। उन्होंने पर्यटन के विकास के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्न के उत्तर में बताया कि अभी तक इसके लिए वीसा सम्वन्धी कोई प्रगति नहीं हो सकी है।

इसके अतिरिक्त श्री गाँधी ने बतलाया कि ढाका के शिखर सम्मेलन में कुल नौ विषयों के कार्य क्षेत्र को अपनाया गया था, अब दो और कार्य क्षेत्र जोड़ दिये गये, जिनमें एक है—भारत में मौसम विज्ञान के लिए एक संस्था का निर्माण करना और दूसरा बांग्लादेश में कृषि सम्बन्धी सूचना प्रदान करने के लिए केन्द्र की व्यवस्था। श्री गांधी ने द्विपक्षीय मामलों पर अन्य छ: सार्क नेताओं के

---

1. लोक सभा डिबेट्स, लोक सभा सेक्रेटिएट, नई दिल्ली, वाल्यूम, 22, 19 नवम्वर, 1986. पृ० 322-324.
2. राज्य सभा आफिसियल रिपोर्ट्स, वाल्यूम, 140, पी०टी०-3, 19 नवम्बर, 1986, पृ० 278-314, दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 20 नवम्बर, 1986.

साथ हुई बातचीत का कोई विवरण नहीं दिया, और यह कह कर टाल दिया कि सरकार अगले सप्ताह इससे सम्बन्धित बयान देगी।

राजीव गांधी के अनुसार सार्क न तो एक राजनीतिक संघ है और न उसमें द्विपक्षीय मामले उठाये जा सकते हैं। फिर भी बंगलौर शिखर सम्मेलन में विचारों के आदान-प्रदान का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ तथा सभी के साथ विभिन्न प्रकार के द्विपक्षीय मामलों पर हुई चर्चा लाभदायक रही, और क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मसलों पर अनौपचारिक विचारों का आदान-प्रदान हुआ।[1]

प्रधानमंत्री श्री गाँधी ने अपनी अध्यक्षता में सम्पन्न बंगलौर शिखर सम्मेलन का लाभ यह बताया कि सार्क की अब तक की उपलब्धि को संगठित किया गया, और आगे के लिए क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से नये क्षेत्रों को अपनाने पर विचार हुआ। बांग्लादेश के नेतृत्व में सार्क पहले जो एक विचार के रूप में था, उसे बंगलौर शिखर सम्मेलन में वास्तविकता में परिणित किया गया। साथ ही उन्होंने बताया कि नये क्षेत्र से सम्बन्धित सहयोग, साधारण जनता के जीवन स्तर को उठाने से सम्बन्धित है, इसमें सम्मिलित कार्य क्षेत्र थे—कृषि, वन विभाग, मौसम विज्ञान, प्राकृतिक विपदाओं से बचने का प्रबन्ध, स्त्रियों और बच्चों का विकास तथा संयुक्त रूप से आतंकवाद एवं नशीली चीजों के प्रयोग के खिलाफ संघर्ष।[2]

श्री गांधी ने नान्दी पहाड़ियों (बंगलौर) की बैठक में कुछ अन्य सम्भावित सहयोग के क्षेत्रों में हुए विचार-विमर्श के सम्बन्ध में बताया कि इसमें रेडियो, टेलीविजन कार्यक्रम, पर्यटन, विद्वानों का आदान-प्रदान, सूचनायें एकत्रित करने सम्बन्धी एक केन्द्रीय प्रलेखन केन्द्र तथा कृषि एवं वन के विकास कार्यक्रम में योगदान के लिए स्वयंसेवकों का संगठन सम्मिलित था।

श्री गांधी ने काठमाण्डू में स्थापित होने वाले एक सार्क सचिवालय के सम्बन्ध में भी सदस्यों को जानकारी दी, जो जन-सहयोग के सिद्धान्त पर आधारित होगा। इस जन सहयोग से न केवल शासन को सहायता मिलेगी, अपितु अभी तक विचार में न आ पाये सम्भावित विषयों की भी जानकारी मिल सकेगी। इसके द्वारा आपसी मेल-मिलाप से निकट का सहयोग सम्भव होगा तथा

---

1. वही.
2. वही.

जनता में आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की भावना विकसित होगी।[1]

बंगलौर शिखर बैठक को लोक सभा दिल्ली में क्षेत्रीय पहचान का एक अगला कदम बताते हुए स्वागत किया गया। तत्कालीन विदेश मत्री एन० डी० तिवारी ने वाद-विवाद में भाग लेते हुए कहा कि सदस्य राज्यों में व्यापार और आर्थिक विकास शीघ्रता से होगा। उन्होंने इस शिखर बैठक को एक बड़ा रचनात्मक और लाभदायक कार्य बताया। श्री दिनेश गोस्वामी (ए० जी० पी०) ने सार्क की सफलता भारत पाकिस्तान के सम्बन्धों पर आधारित बताई, और कहा कि यह पारस्परिक अविश्वास और संघर्ष में सम्भव नहीं है। यह भी कहा गया कि क्षेत्र में संघर्ष और असंतोष से साम्यवादी शक्तियों को अधिक लाभ होगा। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को भारी शस्त्रास्त्र दिये जाने से दक्षिणी एशिया के क्षेत्र में सुरक्षा प्रयत्नों में परिवर्तन आ सकता है। उन्होंने क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था को परस्पर सहयोग के विकास में एक बड़ी बाधा बताया। उन्होंने स्पष्ट किया कि चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका सार्क की सफलता को कभी पसन्द नहीं कर सकते,[2] किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हमारा सहयोग असम्भव है। क्योंकि विश्व की तीन चौथाई गरीब जनता इसी क्षेत्र में है, जो हमारी समान समस्या होने के कारण सहयोग को जोड़ने वाली है। उन्होंने कहा कि यद्यपि क्षेत्र की भौगोलिक तथा राजनीतिक स्थितियाँ पक्ष में नहीं हैं, किन्तु वे विरोधात्मक भी नहीं है। यही कारण है कि बंगलौर शिखर बैठक अपनी एक क्षेत्रीय पहचान कर सकी है। काँग्रेस आई के संसद सदस्य, श्री जी० सी० स्वेल ने कहा कि दक्षिण एशिया के लोगों में क्षेत्रीय जागृति साम्राज्यवादियों को दूर रखने में सहायक होगी।

वार्तालाप के अन्त में श्री एन० डी० तिवारी ने बंगलौर शिखर बैठक को एक जादू के समान बताते हुए कहा कि बंगलौर की भावनायें निश्चित रूप से सार्क की बंगलौर घोषणा में प्रवाहित होती रहेंगी।[3]

---

1. वही.
2. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 21 नवम्बर, 1986; लोकसभा डिवेट्स लोकसभा सेक्रेट्रिएट, नई दिल्ली, 20 नवम्बर, 1986, वाल्यूम 22, पृ० 364-80.
3. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 21 नवम्बर, 1986; लोकसभा डिवेट्स लोकसभा सेक्रेट्रिएट, नई दिल्ली, 20 नवम्बर, 1986, वाल्यूम 22, पृ० 364-80.

सोवियत रूस के श्रेष्ठ विशेषज्ञों ने गुण दोषों के आधार पर अध्ययन के पश्चात् दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) घोषणा-पत्र को एक महत्वपूर्ण प्रमाण की संज्ञा दी। प्रसिद्ध सोवियत आलोचक आलेक गिट सेनको ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि बंगलौर मंच के संयुक्त प्रयास समान समस्याओं के हल करने के लिए महान अनुभवों और सम्भावनाओं के संकेत हैं। इस सहयोग से विश्व के भौगोलिक ढांचे एवं शान्ति को बढ़ावा मिलेगा। सोवियत रूस का सार्क के सम्बन्ध में अत्यधिक सकारात्मक उत्तर था।[1]

नि: सन्देह, सार्क किसी भी तरह के सोवियत प्रभाव के अधीन नहीं है, परन्तु सोवियत लोग इसे राजनीतिक परिपक्वता का संकेत मानते हैं। सोवियत राजनीतिक पर्यवेक्षक वैसिली खारकोवे के अनुसार सार्क प्रालेख का राजनीतिक महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह सीमा के क्षत्रों से बाहर सात देशों की सूझबूझ से निर्मित है, और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर इसका ध्यान केन्द्रित है, तथा एकमत परमाणु अस्त्रों की समाप्ति के लिए कृत संकल्प है। इससे संयुक्त राष्ट्र संघ को भी निरस्त्रीकरणकी समस्या के समाधान में सहयोग मिलेगा। उन्होंने बंगलौर बैठकों को भारत की निर्णायक भूमिका बताया, जो क्षेत्र में एक निश्चित स्थायित्व ला सकेगी।[2]

सोवियत पर्यवेक्षक की दृष्टि में सार्क के सदस्य राष्ट्र कृषि और उद्योग की स्थापना में एक ठोस क्षेत्रीय सहयोग सम्बन्धी निर्णय लेने में असफल रहे। इस सम्बन्ध में पाकिस्तान का व्यापार सम्बन्धी विशेषज्ञ नकारात्मक रवैया रहा। पर्यवेक्षक के अनुसार इस क्षेत्र की कठिनाइयों का कारण अतीत की घटनायें, उपनिवेशवाद तथा बाहरी साम्राज्यवादी षड्यंत्र तथा क्षेत्र को आपस में लड़ाने वाले तत्व रहे हैं, फिर भी एक जागरण है, जो इस क्षेत्र में आरम्भ हुआ है।[3]

बंगलौर शिखर सम्मेलन की अनेक उपलब्धियों के बीच एक विशेष निर्णयात्मक उपलब्धि यह थी कि क्षेत्रीय सहयोग द्वारा परमाणु अस्त्रों की होड़ को रोकने, बड़ी शक्तियों द्वारा अन्य राज्यों में

1. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 25 नवम्बर, 1986.
2. वही.
3. वही.

हस्तक्षेप करने तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव संख्या 2625 के सिद्धान्तों का पालन करने एवं उसे शक्तिशाली बनाने का एकमत से संकल्प लिया गया।[1] साथ ही निर्गुट आन्दोलन को सफल बनाने तथा उसके लक्ष्यों को पूरा करने के लिए विचार व्यक्त किया गया। यद्यपि इस प्रस्ताव को ढाका शिखर बैठक में भी उठाया गया था, किन्तु इसे दृढ़ता बंगलौर शिखर सम्मेलन में ही प्राप्त हुई।

प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने अपनी राजनीतिक परिपक्वता का परिचय देते हुए आतंकवाद की अत्यन्त कठोर शब्दों में निन्दा की, और कहा कि हमें किसी को भी आतंकवादियों को सहायता और आश्रय नहीं देना चाहिए, और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के एक उत्तरददायी सदस्य होने के नाते हमें अपनी सीमाओं पर आतंकवादी गतिविधियों का प्रयोग नहीं होने दिया जाना चाहिए।[2]

इस बैठक की एक अन्य उपलब्धि थी—नये कार्यक्षेत्रों का चयन, जिसमें रेडियो व टेलीविजन द्वारा प्रसार योजना को चालू करना, अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन को बढ़ावा देना, सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए एवं अध्ययन और अनुसंधान सम्बन्धी एक केन्द्र की स्थापना करना, नवयुवकों का एक स्वंयसेवी दल बनाना तथा उन्हें अन्त:क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों में सम्मिलित करना आदि मुख्य थे।[3]

यद्यपि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री जुनेजो ने पाकिस्तान द्वारा अणुबम विस्फोट न करने की बात दोहराई, किन्तु अमेरिकी गुप्तचर विभाग द्वारा उसकी सम्पुष्टि हो जाने पर भारत उनकी बात पर किसप्रकार विश्वास कर सकता था। इसी प्रकार पाकिस्तान द्वारा यहाँ सिक्ख उग्रवादियों को प्रशिक्षित करके उन्हें भारत में प्रवेश कराने के कार्य की सम्पुष्टि से उसकी कथनी और करनी के प्रति सन्देह के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

श्रीलंका में तमिलों की जातीय समस्या के सम्बन्ध में एल० टी० टी० ई० के मुख्य नेता श्री प्रभाकरण को भारतीय वायुसेना द्वारा बंगलौर लाया गया, जिससे जातीय समस्या का बातचीत द्वारा

1. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली 19 नवम्बर, 1986; दि हिन्दू, मद्रास, 18 नवम्बर, 1986.
2. वही.
3. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली 19 नवम्बर, 1986.

हल निकाला जा सके। अतः श्रीलंका के राष्ट्रपति श्री जयवर्धने अथवा उनके राष्ट्रीय सुरक्षा मंत्री द्वारा इस समस्या का आरोप, भारत पर मढ़ने के प्रति विश्वसनीय नही कहा जा सकता। इस प्रकार द्विपक्षीय समस्याओं में भारत पर आरोप लगाना किसी भी प्रकार न्यायोचित नहीं कहा जा सकता।

बंगलौर शिखर सम्मेलन की एक नई उपलब्धि यह थी कि महिलाओं का विकास करके उन्हें सार्क के कार्यक्रम में भागीदार बनाया जाय, तथा नशीली दवाओं के बढ़ते हुए प्रयोग से होने वाले खतरों का मिल जुल कर सामना किया जाय।[1]

तृतीय शिखर सम्मेलन, काठमाण्डू, 1987

काठमाण्डू में ''दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन'' (सार्क) के तृतीय शिखर सम्मेलन के पूर्व ही सार्क के सदस्य राष्ट्रों द्वारा संकल्पित सार्क सचिवालय की स्थापना कर दी गयी थी। इस सचिवालय का उद्घाटन 16 जनवरी, 1987 को नेपाल नरेश वीरेन्द्र वीर विक्रम शाह देव द्वारा किया गया। इस सचिवालय द्वारा क्षेत्रीय सहयोग के विकास की जानकारी प्रदान करने तथा सम्बन्धित सदस्य क्षत्रों को एक कड़ी में जोड़ने के लिए जो विशेष कार्य किया गया, वह था—''सार्क पर्सपेक्टिव'' बुलेटिन का प्रकाशन। नेपाल नरेश ने इस प्रकाशन के प्रति शुभकामनायें व्यक्त करते हुए कहा कि यह प्रकाशन सार्क के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति तथा क्षेत्रीय सहयोग के कार्यों एवं सहयोग के सम्भावित क्षेत्रों की जानकारी प्रदान करेगा जो क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला होगा।[2]

उक्त सार्क सचिवालय का कार्य आवश्यक व्यवस्था के बाद 16 फरवरी, 1987 को प्रारम्भ हुआ, जिसमें पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार एक सेक्रेटरी जनरल तथा चार डाइरेक्टरों (निदेशकों) की देखरेख में कार्य शुरू हुआ।[3]

---

1. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 18 नवम्बर, 1986.
2. लोक सभा डिबेट्स, लोकसभा सेक्रेटिएट, नई दिल्ली, 17 मार्च, 1987, वाल्यूम 26, पृ० 106; सार्क पर्सपेक्टिव, एडीटेड ऐण्ड पब्लिस्ड बाई दि सेक्रेटिएट ऑफ दि सार्क, काठमाण्डू, मई, 1987, पृ० 3, 18.
3. पार्थ एस० घोष, कोआपरेशन ऐण्ड कानफिलक्ट इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, 1989 पृ० 11.

विदेश मंत्रियों की बैठक

18-19 जून, 1987 को विदेश मंत्रियों की एक बैठक नई दिल्ली में सम्पन्न हुई। इस बैठक का महत्व इस दृष्टि से था कि इसमें क्षेत्र के एक प्रमुख राजनीतक पक्ष को सुलझाने का प्रयास किया गया, वह था—आतंकवाद। इस बैठक में 18-20 मार्च, 1989 को विशेषज्ञ वर्ग की द्वितीय बैठक में संस्तुति का ऐसा रूप दिया गया, जिसे राजनीतिक न समझा जाय। ज्ञातव्य है कि विशेषज्ञों की यह बैठक श्रीलंका की इस धमकी के परिप्रेक्ष्य में की गयी थी, जिसमें उसने बैठक में सम्मिलित न होने की बात की थी और भारत द्वारा जाफना में कोलम्बो की इच्छाओं के विरुद्ध सहायता सामग्री भेजी गयी थी।

स्वाभाविक है कि इस समस्या को काठमाण्डू शिखर बैठक में उठाया जाता।

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) का तृतीय शिखर सम्मेलन 2-4 नवम्बर, 1987 को काठमाण्डू में सम्पन्न हुआ, जिसमें सार्क संगठन के सातों राष्ट्राध्यक्ष उपस्थित हुए। परम्परा के अनुसार द्वितीय शिखर सम्मेलन के सभापति श्री राजीव गाँधी ने नेपाल नरेश वीरेन्द्र विक्रम शाह देव को तृतीय शिखर बैठक के सभापति के रूप में प्रस्तावित किया।

इस तृतीय शिखर सम्मेलन में सभी राष्ट्राध्यक्षों ने अपने-अपने विचार कुछ इस प्रकार व्यक्त किये—

श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने भारत और श्रीलंका के बीच वैदेशिक नीतियों के संचालन में एक आधार की स्थापना का उल्लेख किया, जिसमें एक दूसरे के विरुद्ध कोई नुकसानदायक कार्य न करने की वचनबद्धता है। उन्होंने भारत और श्रीलंका के बीच हुए शान्ति समझौते को श्रीलंका की अलगााववादी समस्या तथा क्षेत्र में स्थायित्व लाने के लिए बड़ा लाभदायक बताया। उनका यह भी कथन था कि सार्क की सफलता सदस्य राज्यों की इस योग्यता पर निर्भर करती है कि वे किस तरह द्विपक्षीय मामलों को हल करते है। उनका यह कहना भी था कि हमारी आन्तरिक समस्यायें कभी-कभी पड़ोसी देशों को भी प्रभावित करती हैं। भारत, श्रीलंका समझौते ने यह दिखा दिया है कि

आपसी सलाह से कैसे झगड़ों को निपटाया जा सकता है।[1]

इसके अलावा श्रीलंका के राष्ट्रपति ने कहा कि सार्क को पहले चलना सीखना चाहिए और बाद में दौड़ने का प्रयास करना चाहिए। उन्होंने कहा कि आतंकवाद के विरुद्ध एक सामान्य नीति अपनाने में हो रहे विलम्ब से उनकी चिन्ता बढ़ रही है, और हम आज आतंकवाद की परिभाषा करने में परेशाान हैं। उनका कहना था कि जो कोई भी एक दूसरे के विरुद्ध आतंकवाद को सहारा दे, उसको न तो सुरक्षा प्रदान की जाय, और न उससे मित्रता ही की जाय।[2] उन्होंने क्षेत्र के देशों के बीच व्यापार बढ़ाने पर जोर दिया। साथ ही उन्होंने इस बात को व्यंगात्मक बताया कि सदस्य राज्यों में सम्पूर्ण व्यापार का 5 प्रतिशत ही व्यापार सदस्य राज्यों के बीच होता है, इससे अधिक नहीं।[3]

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री जुनेजो ने परमाणु अस्त्रों के परीक्षण पर रोक लगाने सम्बन्धी एक क्षेत्रीय सहयोग पर बल दिया। उनका कहना था कि अणु अस्त्रों के निर्माण का इरादा क्षेत्र के किसी भी देश ने व्यक्त नहीं किया है, उन्होंने यह भी कहा कि सार्क सचिवालय को आसियान सचिवालय से सम्पर्क स्थापित करके आपसी क्षेत्रीय वाद-विवादों को सुलझाने के उसके अनुभवों से लाभ उठाया जा सकता है।[4]

भूटान नरेश ने भारत श्रीलंका के बीच हुए समझौते का स्वागत करते हुए राजीव गाँधी को धन्यवाद दिया कि उन्होंने अपने सभापतित्व में इस समझौते को सम्पन्न किया। इसके अलावा उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस में परमाणु अस्त्रों के बढ़ते हुए भण्डार पर चिन्ता व्यक्त करते हुए दोनों महाशक्तियों के बीच सार्वभौमिक स्तर पर निरस्त्रीकरण किये जाने पर जोर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि इस क्षेत्र को परमाणु अस्त्रों से मुक्त रखा जाय, ऐसा होने पर ही हम महाशक्तियों से परमाणु अस्त्रों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कह सकेंगे। अन्त में उन्होंने कहा कि

---

1. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1987, दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1887; दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1987.
2. दि टाईम्स, ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 3 नम्बर, 1987.
3. दि टाईम्स, ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 3 नम्बर, 1987.
4. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1987.

हमारी द्विपक्षीय समस्यायें दक्षिण एशिया के राजनीतिक वातावरण को प्रभावित करती है।[1]

मालद्वीव के राष्ट्रपति अब्दुल गयूम ने भारत और श्रीलंका के बीच राजीव गाँधी और जयवर्धने की साहस भरी राजनीतिक सूझबूझ की प्रशंसा की और सन्तोष व्यक्त किया कि दोनों ने पिछले चार वर्षों से चली आ रही अत्यन्त कठिन जातीय समस्या का एक समझौते द्वारा हल निकाल लिया। उन्होंने खाड़ी क्षेत्र में बढ़ते हुए तनाव पर तथा व्यापारिक जहाजों पर होने वाले आक्रमणों पर भी चिन्ता व्यक्त करते हुए उस समस्या के शीघ्र हल होने की आशा व्यक्त की।[2]

बांगलादेश के राष्ट्रपति जनरल इरशाद ने अपने एक प्रस्ताव में कहा कि हिमालय के पानी के साधनों के विकास योजना पर एक बहुपक्षीय समझौता होना चाहिए, जिससे जनता के दुखों का निवारण किया जा सके, क्योंकि दक्षिण एशिया के क्षेत्र में प्राय: प्राकृतिक विपदायें आती ही रहती हैं।[3]

नेपाल नरेश वीरेन्द्र विक्रम शाह देव ने सार्क देशों से अनुरोध किया कि वे इस बात का विश्वास दिलायें कि कोई भी आतंकवादियों को किसी प्रकार का सहारा नहीं देगा, और न क्षेत्र में छिपने के लिए शरण ही दी जायेगी। उन्होंने खेद व्यक्त करते हुए कहा कि क्षेत्र में घृणा कट्टरपन तथा आपसी संघर्ष ने समाज को विभाजित सा कर दिया है, जिसका प्रभाव कभी-कभी अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों पर भी पड़ता है। उन्होंने कार्यों को संगठित रूप में करने का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा कि थोड़ा-थोड़ा कार्य करने से अव्यवस्था फैलती है, साथ ही कार्य क्षेत्रों का प्रचुर मात्रा में बढ़ता हुआ स्वरूप भी समस्या पैदा करता है। अत: कार्य संगठित रूप में होना चाहिए। इसके अलावा उन्होंने बाढ़ की समस्या का समाधान करने के लिए सभी को मिलकर एक विस्तृत योजना तैयार करने का प्रस्ताव किया। उनका कहना था कि ढाका और बंगलौर की बैठकों में विचारों तथा

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1987; दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1887 .
2. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1987, दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1887.
3. वही.

सूचनाओं के आदान-प्रदान से क्षेत्र को लाभ के साथ-साथ सार्क की अच्छी प्रगति हुई है। उन्होंने यह भी बतलाया कि इसी बैठक के परिणामस्वरूप सभी देशों के विदेशमंत्री खाद्य सामग्री के सुरक्षित भण्डार से सम्बन्धित एक समझौते पर हस्ताक्षर करेंगे।[1] तथा सार्क का अन्तिम कार्य क्षेत्र में आतंकवाद को रोकना होगा। उन्होंने बाढ़ तथा अकाल की समस्या को हल करने का भी सुझाव दिया। उनका कथन था कि किसी स्वीकृत योजना के द्वारा समय-समय पर विकास के कार्यक्रम बनते रहना चाहिए, और बाद में उसे सदस्य राज्यों की राष्ट्रीय योजना में सम्मिलित कर दिया जाना चाहिए।[2]

भारत के प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने अपने भाषण में कहा कि ढाका में युगान्तरवादी घड़ी थी, बंगलौर के सम्बन्धों को प्रगाढ़ता मिली। अतः काठमाण्डू में हम पिछले अनुभवों से प्रज्वलित विश्वास लेकर एकत्र हुए हैं।[3]

प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए अधिकाधिक सहयोग एवं अन्तर्क्रियाओं पर बल देते हुए कहा कि, अब तक विकसित बहुपक्षीय सहयोग को एक परम्परा में बदला जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि हमने क्षेत्रीय सम्बन्धों की एक ऐसी संरचना की है जो अलगाववादी अड़चनों तथा बाधाओं को तोड़ रही है। उन्होंने कहा कि हमारा सहयोग मेल-मिलाप पर आधारित है, मतभेदों पर नहीं। सार्क के अन्दर मिलकर हमारे काम करने का अर्थ है—"प्रभुत्व सम्पन्न समान राज्यों काप्रजातंत्र।" हमारे बीच समान समझ तथा एकता के सिद्धान्त ने हमारे सहयोग को बरकरार रखा है, हमने जो कार्यक्रम सार्क के अन्दर बनाया है उसमें आर्थिक विकास से आगे भी कुछ और है। उनको कथन था कि हमें जनता को को विकास कार्यों के स्रोत तक पहुँचाना चाहिए, और क्षेत्रीय साधनों के उपयोग का लाभ सम्पूर्ण जनता के साथ जोड़ना चाहिए। उनका यह भी कथन था कि क्षेत्रीय समझौता एक सकारात्मक राजनीतिक विकास है, जिसमें हमारी क्षेत्रीय पहचान की समझ तथा भाग्य की साझेदारी तथा वैदेशिक नीतियों को जोड़ने वाली सामान्य दिशा

---

1. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1887.
2. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1987.
3. आज, वाराणसी, 3 नवम्बर, 1987.

विद्यमान है, जिसका प्रमुख आधर पर हम सभी देशों का निर्गुट आन्दोलन का सदस्य होना है।[1]

श्री गाँधी ने दक्षिण एशिया में अपना एक दक्षिण एशिय उत्सव कार्यक्रम का प्रस्ताव किया, जिसमें क्षेत्र की सभी कलाओं, हस्तकला, कविता, गीत, नृत्य, नाटक तथा परम्परावादी खेल-कूद आदि विभिन्नताओं से भरे कार्यों का प्रदर्शन एक स्थान पर किया जा सके, और पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ सके।[2]

श्री गाँधी ने कहा कि सार्क शिखर सम्मेलनों में औपचारिक विचार विमर्श अत्यधिक महत्व रखता है, जिसमें द्विपक्षीय मामलों पर विचारों का आदान-प्रदान आमने-सामने बैठकर सहयोगी वातावरण में किया जा सकता है। हमें सार्क के आन्तरिक कार्य क्षेत्र से बाहर निकल कर अनौपचारिक रूप में ही सही, अपनी समस्याओं पर बातचीत करना चाहिए जिससे हमारी क्षेत्रीय पहचान तथा समान भाग्य की साझेदारी की पहचान तो होती ही है, साथ ही इसका अनुकूल प्रभाव हमारी वैदेशिक नीतियों पर भी पड़ता है, प्रथम तो यह कि हम सभी निर्गुट आन्दोलनों के सदस्य होने से परस्पर सम्बन्धित हैं। हमारा सार्क संसार में हमारी पहचान बना रहा है, सामूहिक रूप में एक क्षेत्र के नाते तथा व्यक्तिगत रूप से एक स्वतंत्र देश के नाते। उन्होंने व्यापार, उद्योग, धन तथा वित्त सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन के पश्चात् उसके गुण-दोषों पर प्रकाश डालने के लिए एक अध्ययन समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव किया।[3]

श्री गांधी ने आतंकवाद तथा नशीली दवाओं के प्रयोग के रोक सम्बन्धी सुझाव पर सन्तोष व्यक्त करते हुए सार्क के खाद्य पदार्थों के समुचित भण्डारण करने के प्रस्ताव को एक महत्वपर्णू देन के रूप में स्वीकार किया।[4]

श्री गाँधी ने सार्क को विचारों का मेल बताया, जो दिलों को जोड़ता है, और जन-जन को मिलाता है। दक्षिण एशिया सहयोग हमारी सामूहिक प्रवृत्ति को धीर-धीरे सजग बना रहा है। उनका

---

1. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1987.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1987.
3. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1987; दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1987.
4. वही.

कथन था कि सार्क, कृषि, ग्रामीण विकास, परिवहन आदि जिन विभिन्न समस्याओं का सामना कर .रहा है, वे सभी वास्तविक हैं, और अर्थव्यवस्था के मुख्य विषय हैं। साथ ही उन्होंने कहा कि विकास और पर्यावरण का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, जो एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, यह विकृत होने पर राष्ट्रीय सीमाओं से आगे बढ़ जाता है, और राजनीतिक सीमाओं को प्रभावित भी करता है। हमारे सामूहिक विकास और पर्यावरण में सुधार के एकमात्र साधन हैं—हमारा क्षेत्रीय सहयोग। अत: उन्होंने क्षेत्र में रचनात्मक प्रभाव के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम को एक महोत्सव के रूप में चलाने पर जोर दिया।[1]

सातों राष्ट्राध्यक्षों ने सार्क की स्थापना से एक नये युग का प्रारम्भ बतलाया तथा उसे शान्ति, सामाजिक तथा आर्थिक विकास का स्रोत बताते हुए अपनी प्रतिज्ञाओं को दोहराया। उन्होंनें ढाका तथा बंगलौर शिखर सम्मेलन में किये गये संकल्पों एवं लिये गये निर्णयों को पुन: दोहराते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र तथा निर्गुट नीति के पालन के प्रति अपनी वचनबद्धता व्यक्त की, और प्रत्येक राज्य की प्रभुत्वपूर्ण समानता, अखण्डता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता शक्ति का प्रयोग न करना, किसी के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना तथा शान्तिपूर्वक सभी झगड़ों का निपटारा करने के प्रति अपने समर्थन को दोहराया। यही बातें भारतीय संसद में व्यक्त की जा चुकी थी।[2]

सम्मेलन के प्रारम्भिक विचार-विमर्श के बाद अर्थात् सम्मेलन के अन्तिम दिन काठमाण्डू घोषणा पत्र जारी किया गया, जिसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित विषयों पर निर्णय लिया गया—

सातों प्रधानों ने दक्षिणएशिया की जनता की भलाई एवं उसके जीवन स्तर को ऊंचा बनाने एवं अन्त:शक्ति को प्राप्त करने को सार्क का मौलिक उद्देश्य बताया और सम्पूर्ण क्षेत्र की गरीबी एवं निर्धनता आदि समान समस्याओं के प्रति जागरूकता दिखाई।

सभी राष्ट्राध्यक्षों ने विश्व शान्ति में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका को स्मरण करते हुए उस पर छाये संकट के बादलों पर चिन्ता व्यक्त की, तथा जून,1987 में युयांगयांग में हुई निर्गुट देशों की बेठक

---

1. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1987; दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1987; दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1987.
2. लोकसभा डिबेट्स, लोकसभा सेक्रेटिएट, नई दिल्ली, 25 नवम्बर, 1987, वाल्यूम 33, पृ० 131-132.

के कार्यों के प्रतिसन्तोष व्यक्त किया। साथ ही उन्होंने बिगड़ती हुई विश्व की अर्थव्यवस्था पर चिन्ता व्यक्त की, जिसका विपरीत प्रभाव दक्षिण एशिया के कम विकसित देशों पर विशेष रूप से पड़ रहा है। अतः विश्व अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के उद्देश्य से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आर्थिक प्रबन्ध पद्धति के सुधार पर बल दिया। राष्ट्राध्यक्षों का कथन था कि एक लम्बे समय से संरचनात्मक असंतुलन से विश्व की अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचा है, तथा चीजों के दामों में भी भारी गिरावट आई है, एवं निर्यात से होने वाला शुद्ध लाभ भी कम हो गया हे, जिससे विकासशील देशों द्वारा की जाने वाली ऋण की अदायगी में असन्तुलन आ गया है तथा व्यापार की शर्तें खराब होने के कारण भी उन्हें नुकसान पहुँचा है।[1] उन्होंने यह भी कहा कि संरक्षणवाद की नीति अपनाने से तथा व्यापार संघर्ष बढ़ जाने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कमजोर होता जा रहा है, जिससे विकासशील देशों के साथ भेद-भाव का व्यवहार किया जा रहा है। अतः इस असन्तुलन में सन्तुलन लाने तथा समन्वय स्थापित करने के लिए उत्तर दक्षिण की बातचीत आवश्यक है, जिससे निर्यात को बढ़ाकर चीजों के दामों में स्थायित्व लाया जा सके, पूँजी को नियमित किया जा सके, मुद्रा विनिमय में सुविधा हो सके और ऋण की अदायगी में राहत मिल सके। उन्होंने विकास से सम्बन्धित और वित्त व्यवस्था पर आधारित एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की मांग की, और गैट (GATT) के अन्तर्गत बहुपक्षीय व्यापार पद्धति को नये प्रयत्नों द्वारा उदार बनाने का विचार व्यक्त किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंकटाड-7 के परिणामों पर पुनर्विचार करते हुए आशा व्यक्त की कि यह अपने प्रभावकारी ढंग से एवं बढ़ती हुई भूमिका द्वारा समान एवं उचित अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करेगा, और सामंजस्य बनायेगा। साथ ही सातों राष्ट्राध्यक्षों ने बहुत कम विकसित देशों के साथ साधनों के उपयोग तथा संरचनात्मक परिवर्तन के लिए विशेष उपाय करने पर भी जोर दिया।[2]

सातों राष्ट्राध्यक्षों ने विश्व की महान शक्तियों के सैनिक अभ्यासों, आधिपत्य स्थापित करने, हस्तक्षेप करने, धमकियां देने, सैनिक बल का प्रयोग करने, दबाव डालने, क्षेत्र पर अधिकार कर लेने, आर्थिक नाकेबन्दी करने तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र के विपरीत कार्य करने आदि पर चिन्ता

---

1. दि हिन्दू मद्रास, 5 नवम्बर, 1987, दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 5 नवम्बर, 1987, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया,नई दिल्ली, 5 नवम्बर, 1987.
2. वही.

व्यक्त की। उनका कथन था कि ये सभी बातें अस्थायित्व पैदा करने वाली, विपरीत स्थित को जन्म देने वाली, तथा परस्पर सम्मान में बाधा पहुँचाने वाली हैं।

सभी राष्ट्राध्यक्षों ने बढ़ते हुए सैनिक खर्च को संसार के विकास की सबसे बड़ी बाधा बताया। इसके प्रमाण में उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ के उस सम्मेलन का स्मरण किया, जिसमें निरस्त्रीकरण और विकास दोनों को परस्पर जोड़ा गया है। उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका तथासोवियत संघ के बीच नाभिकीय अस्त्रों की कमी लाने के सम्बन्ध में हुए समझोते का स्वागत किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने जिनेवा (स्वीट्जरलैण्ड) सम्मेलन की माँग की, जिसमें निरस्त्रीकरण के लिए परमाणु अस्त्रों के परीक्षण पर तथा रासायनिक अस्त्रों पर रोक लगाने सम्बन्धी सन्धि की जाय। साथ ही उन्होंने यह घोषणा की कि वे परमाणु अस्त्रों की होड़ समाप्त करने के लिए तथा नाभिकीय अस्त्रों के परित्याग के लिए अपना प्रयत्न जारी रखेंगे।[1]

सभी राष्ट्राध्यक्षों ने बिगड़ते हुए पर्यावरण को रोकने एवं प्राकृतिक विपदाओं से बचने के लिए एक विस्तृत कार्यक्रम तैयार करने के उद्देश्य से एक अध्ययन समूह बनाने का निर्णय लिया और यह कार्य जनरल सेक्रेटरी को सौंपा गया। सभी प्रधानों ने क्षेत्र की घनी आबादी, प्राचीन संस्कृति, विभिन्न जातियों वाले क्षेत्र तथा अपार प्राकृतिक खनिज सम्पदा से भरपूर इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर सहयोग की सम्भावना व्यक्त की, और इसके लिए अपने व्यतिगत तथा सामूहिक प्रयासों के उपयोग का निश्चय किया। उन्होंने मन्त्रिपरिषद (काउन्सिल ऑफ मिनिस्टर्स) द्वारा सहमति प्राप्त कार्य क्षेत्रों पर किये जाने वाले व्यय में कम खर्च में किन्तु गुणवत्ता बनाये रखने पर जोर दिया। साथ ही उन्होंने आकस्मिक रूप से संकट का सामना करने के उद्देश्य से हुए एक दक्षिण एशिया खाद्य सामग्री भण्डारण के समझोते पर सन्तोष व्यक्त किया।[2] कुछ दिन बाद दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन का खाद्यान्न सुरक्षा भण्डार 11 अगस्त, 1988 से प्रभावी हो गया। सातों सदस्यों द्वारा सार्क खाद्य सुरक्षा भण्डार में 220900 टन का खाद्य भण्डारण किया जायेगा, जिसे आपातकाल के दौरान सदस्य देशों

---

1. दि हिन्दू मद्रास, 5 नवम्बर, 1987.
2. दि हिन्दू मद्रास, 5 नवम्बर, 1987, दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 5 नवम्बर, 1987.

द्वारा उपयोग में लाया जा सकेगा। इस भण्डारण में सदस्य देशों ने निम्नलिखित रूप में अपना-अपना अंशदान किये जाने की बात कही—बांग्लादेश, 21,100 टन, भूटान 180 टन, भारत, 153,200 टन, मालद्वीव 20 टन, नेपाल 3600 टन, श्रीलंका 2800 टन, पाकिस्तान 12,000 टन।[1]

उन्होंने काठमाण्डू में स्थापित हुए सार्क सचिवालय के लिए आवश्यक व्यवस्था एवं उसके उद्‌घाटन पर नेपाल नरेश के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की। उन्होंने शिक्षा संस्थाओं, अनुसंधान कर्ताओं, गैर सरकारी संगठनों तथा विभिन्न संस्थाओं के सहयोग को स्वीकार करते हुए उनकी भावी भूमिका के प्रति आशा व्यक्त की। उन्होंने मित्रता तथा सद्व्यवहार द्वारा एवं जनता में अन्तर्क्रिया कलापों द्वारा क्षेत्र में सामंजस्य स्थापित करने के प्रति विश्वास व्यक्त किया। साथ ही काठमाण्डू बैठक से हुए नये जोश तथा होने वाले लाभों की सम्भावना को व्यक्त करते हुए एक समान हित के लिए सद्‌भावनापूर्ण वातावरण के निर्माण का भी अनुभव किया, और इसके माध्यम से क्षेत्रीय जनता के गुणात्मक सुधार की भी आशा व्यक्त की।[2]

काठमाण्डू शिखर बैठक में उन प्रस्तावों का राजनीतिककरण करना अनिवार्य बना दिया जो ढाका तथा बंगलौर शिखर बैठक में किये गये थे। सार्क के निर्धारित उद्देश्यों को देखते हुए भी इसे चिन्ता का विषय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इससे राजनीतिक पहचान तेज होती है। दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) समूह में सभी सदस्य राज्य समान रूप से प्रभावशाली होते हुए भी सुरक्षात्मक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में समान भागीदार नहीं हैं। सार्क के घोषणा पत्र में द्विपक्षीय मामलों को मंच पर न उठाने जैसी सुरक्षात्मक धारायें विद्यमान हैं, इसलिए जब तक चेतावनी जैसे स्वर सुनाई पड़ जाते हैं, जैसे श्री लंका के राष्ट्रपति जयवर्धने द्वारा बंगलौर शिखर बैठक में यह कहना कि, सार्क लंगड़ा हो जायेगा, यदि बिना चलना सीखे, उसने दौड़ने की कोशिश की।[3] उनके कहने का अभिप्राय सार्क पर सन्तुलित दबाव यह बताकर डालना था कि "राजनीतिक सुरंग क्षेत्र में कदम रखना एक जोखिम" है। श्री गाँधी ने भी वही बात इस रूप में कही कि सार्क एक

---

1. दि टाइमस ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 12 अगस्त, 1988.
2. दि हिन्दू, मद्रास, 5 नवम्बर, 1987.
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया,नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1987.

राजनीतिक संघ नहीं है, जबकि बाहरी संसार में सार्क को एक राजनीतिक संस्था के रूप में ही देखा जा रहा है।[1]

काठमाण्डू में हुए शिखर सम्मेलन में आतंकवाद पर जो विचार हुआ, उसे अन्तर्राज्यीय समस्या के रूप में गहराई से समझा गया, और इसी भावना के कारण इस राजनीतिक मुद्दे पर सभी सदस्य राष्ट्र इतने दृढ़ मत रहे कि आतंकवाद को दबाने से सम्बन्धित प्रस्ताव पर हस्ताक्षर हुए बिना वे वहाँ से हट नहीं सके। ज्ञातव्य है कि इस प्रकार की दृढ़ता सार्क के मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास पर सहयोग के लिए दिखाई नहीं दी। लम्बे समय से, भारत में एक क्षेत्रीय मौसम विज्ञान केन्द्र तथा बांग्लादेश में कृषि सम्बन्धी सूचना केन्द्र के प्रस्तावित योजना को भी आगे नहीं बढ़ाया जा सका। यद्यपि व्यापार में कुछ सामान्य प्रगति हो सकी है, किन्तु खाद्य सामग्री को सुरक्षित रखने तथा उसके लिए एक बड़ा गोदाम बनाने के प्रश्न को मुश्किल से ही आर्थिक नीतियों में सामंजस्य स्थापित करने वाला कहा जा सकता है, क्योंकि अनाज भण्डार के लिए अंशदान उसका वितरण, माँग तथा आवश्यकता का निर्णय एवं पूर्ति आदि मसले राजनीतिक दृष्टिकोण पर ही निर्भर करते हैं।[2]

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री जुनेजो भारत को किसी सम्भावित शक्ति के द्वारा सन्तुलित करने के कूटनीतिक उद्देश्य से काठमाण्डू की बैठक में सम्मिलित हुए थे। उनकी यह चाल आसियान संगठन के साथ सार्क को सम्बन्धित करने में निहित थी, जबकि भारत आसियान के चरित्र व बनावट को देखते हुए तथा सिद्धान्त रूप में भी किसी बाहरी सहायता और प्रभाव के विरुद्ध रहा। भारत में वैसे भी आतंकवाद अथवा नशीली चीजों की हेरा-फेरी जैसे द्विपक्षीय राजनीतिक मसलों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया था।[3]

काठमाण्डू शिखर बैठक में सार्क की मजबूतियों तथा निर्बलताओं को स्पष्ट करते हुए अधिक सहयोग के कुछ रचनात्मक प्रस्तावों को सुझाया गया। पाकिस्तानी प्रधानमंत्री जुनेजो ने सार्क की आलोचना करते हुए कहा कि यह संगठन पहले के स्वीकृत सिद्धान्तों से हटकर कछ राजनीतिक

---

1. वहीं.
2. लोक सभा डिबेट्स, लोकसभा सिक्रेटिएट, नई दिल्ली, 24 नवम्बर, 1987, पृ० 83
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया,नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1987.

और सैनिक महत्व की समस्याओं की ओर बढ़ रहा है, किन्तु उनकी बात पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इतना ही नहीं भारत-श्रीलंका के बीच हुए शान्ति समझौते की प्रशंसा सार्क के सभी सदस्यों ने की।

काठमाण्डू की बैठक की एक विशेष बात रही—आतंकवाद के प्रस्तावों पर सदस्य प्रधानों के हस्ताक्षर, जिस पर भारत को छोड़ सभी सदस्य राष्ट्र पहले से तैयार थे, किन्तु भारत ने कैबिनेट की स्वीकृति न मिलने का कारण बताकर हस्ताक्षर करने के लिए कुछ और समय की माँग की, किन्तु यह पता नहीं लग सका कि कैबिनेट का आदेश उसे कायों नहीं मिल सका।[1] आतंकवाद का समझौता सभी राष्ट्राध्यक्षों के समक्ष विदेशमंत्रियों द्वारा हस्ताक्षरित होना था। इस समझौ में यह एक शर्त थी कि सदस्य राष्ट्र किसी फरारी या भागे हुए अथवा अपराधी व्यक्ति को प्रतयार्पित नहीं करा सकेंगे, यदि वह राज्य के हित में न हो। आतंकवाद का समझौता इस बैठक का एक अन्तिम कार्य था, किन्तु आतंकवाद के समझौते तथा उसको परिभापित करने की कठिनाई बनी ही रही। भारत के उस प्रस्ताव, जिसमें इसके विशेष अध्ययन के लिए समय की माँग की गयी थी, कुछ लोगों ने उसे लम्बित करने वाला कार्य बताया, किन्तु राजीव गांधी ने उसे झूठा साबित करने के उद्देश्य से तथा बीच में ही दखल देते हुए उसे एक समझौते का रूप दिया, फिर भी इसे कोई बड़ा कार्य नहीं माना गया, क्योंकि यह मसला कानून से सम्बन्धित था। साथ ही यह बहुत सीमित समझौता भी था, क्योंकि इसमें अपराधों को विस्तार से परिभाषित नही किया गया था। अत: आतंकवाद समझौते की उपलब्धि को बहुत बड़ी सफलता नहीं कहा जा सकता। आतंकवाद से ही सम्वन्धित उपर्युक्त तथ्य, बाद में भारतीय संसद के वाद-विवाद का प्रश्न बने।[2]

बैठक में यद्यपि आर्थिक विकास और व्यापार के सहयोग पर भी चर्चायें हुईं, किन्तु उस पर भी कोई विशेष महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं हो सकी। सदस्य राष्ट्र उत्तर के राज्यों तथा दक्षिण के राज्यों के साथ उचित व्यावहारिक सहयोग पर सहमत अवश्य रहे, किन्तु वे ऐसा कोई तर्क अथवा कल्पना नहीं कर सके, जो अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति पर भी कुछ भी दबाव डाल सके। अत: सभी ने

---

1. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 4 नवम्बर, 1987.
2. लोक सभा डिबेट्स, लोकसभा सिक्रेटिएट, नई दिल्ली, 24 नवम्बर, 1987, पृ० 83

व्यापार और उद्योग सम्बन्धी सम्भावनाओं का पता लगाने हेतु इस कार्य को अध्ययन समिति को सौंप दिये जाने का प्रस्ताव किया। वस्तुत: यह कार्य सदस्य राष्ट्राध्यक्षों की एक बहुत बड़ी असफलता और अयोग्यता कही जा सकती है। इसी प्रकार की एक दूसरी अयोग्यता अफगानिस्तान को सार्क का सदस्य न बना पाने में प्रतिबिम्बित होती है।

तृतीय शिखर (काठमाण्डू) से सार्क को बहुत कम ही लाभ हो सका। जबकि भारत को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। यदि कोइ आगे बढ़ा हुआ कदम कहा जाये तो 2 मिलियन टन खाद्य पदार्थ का संरक्षण करना था। फिर भी आपातकालीन क्षेत्रीय आवश्यकता, लेन-देन व्यवस्था आदि द्विपक्षीय मामलों को सदस्य राज्यों की इच्छा तथा समझौते के लिए पत्र व्यवहार पर छोड़ दिया गया, जो बहुत व्यावहारिक नहीं कहा जा सकता।

अफगानिस्तान की सदस्यता से सम्बन्धित भारत का यह प्रस्ताव कि उसे आठवें सदस्य के रूप में न रखकर एक प्रेक्षक या मेहमान के रूप में रहने की आज्ञा प्रदान की जाय, पाकिस्तान द्वारा इसलिए रद्द कर दिया गया क्योंकि वह काबुल के तत्कालीन शासन को स्वीकार नहीं करता था। एक प्रकार से भारत के इस प्रस्ताव को एक भद्दा प्रस्ताव कहा जा सकता है। अत: यह कहा जा सकता है कि शिखर की सफलता इस निर्णय पर अधिक होती है कि वे अपने प्रयासों को आर्थिक सहयोग, सांस्कृतिक कार्यों का आदान-प्रदान वीसा की धाराओं को यातायात की सुविधाओं के लिए आसान बनाने तक सीमित रखते। वस्तुत: इसमें भारत की कूटनीतिक कमी कही जा सकती है।[1]

यहाँ कहा जा सकता है कि सार्क का जन्म सन्देहवाद की स्थिति में हुआ था, फिर भी उसका सचिवालय उसे अत्यधिक गति प्रदान कर सकता था, यदि उसके कार्यक्रम क्षेत्रीय एकरूपता, पदार्थों का उचित प्रयोग एवं जनशक्ति के विकास आदि से विशेष सम्बन्धित होते। क्षेत्रीय संगठन की एक सबसे बड़ी निराशाजनक बात यह है कि क्षेत्र के दो बड़े देश भारत और पाकिस्तान अभी तक

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली 5 नवम्बर, 1987.

अपने आपसी व्यापार के विषय में कोइ बात आरम्भ नहीं कर सके हैं, अथवा क्षेत्र के विकास हेतु पूँजी निवेश पर भी कोई समझौता नहीं हो सका। 2 मिलियन टन वाले सुरक्षित खाद्य पदार्थों वाले समझौते को भी भारत की दृष्टि से प्रभावशाली नहीं कहा जा सकता क्योंकि भारत का सुरक्षित खाद्य भण्डार इससे हजार गुना अधिक है, और आपातकालीन परिस्थितियों में किसी क्षेत्र पर आई हुई विपदाओं का समाधान इसके द्वारा आसानी से किया जा सकता था, जिससे भारत का प्रभाव, सद्भावना, सहानुभूति तथ सहयोग आदि स्पष्ट रूप में समझा जा सकता था। किन्तु यहाँ भी उसकी कूटनीतिक कमजोरी दिखाई देती है।

पर्यावरण सम्बन्धी मामला भी एक ऐसा मामला है, जिस पर मिलकर काम करने से अच्छे परिणाम निकाले जा सकते हैं,किन्तु परिस्थिति विज्ञान के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारत में सरकारी उच्चाधिकारियों और राजनीतिज्ञों की मिली भगत से इसे काफी नुकसान पहुँच रहा है। अतः इस पर ठोस निर्णय के लिए भारत को कड़े कदम उठाने की आवश्यकता थी, जो सम्भव नहीं हो सका।[1]

काठमाण्डू शिखर बैठक की एक मुख्य देन आतंकवाद पर एक समझौते का होना था। यह आशा की जाती थी कि इसकी बारीकियों का अध्ययन करने के बाद यह कार्य पूरा हो जायेगा, किन्तु कानूनी दाँव पेचों के अध्ययन हेतु भारत सरकार को पुनः प्रत्यार्पण सम्बन्धी फौजदारी कानूनों की छानबीन करना आवश्यक था, जिसे कि उस समझौते के अनुरूप बनाया जा सके,

क्योंकि इस सम्बन्ध में अधिकारी तथा राजनीतिक स्तर पर किया गया कार्य समाप्त नहीं था। साथ ही आतंकवाद पर समझौते की शर्तें तत्काल स्वीकार करना भी सम्भव नहीं था, क्योंकि भारत सरकार इस सम्बन्ध में सारी कार्यवाही अपनी सीमाओं के अन्तर्गत करना चाहती थी।[2]

---

1. दि स्टेट्समैन, नई दिल्ली, 7 नवम्बर, 1987.
2. लोक सभा डिबेट्स, लोकसभा सिक्रेटिएट, नई दिल्ली, 2 दिसम्बर, 1987, वाल्यूम 33, पृ० 132.

निष्कर्ष बताते हैं कि आतंकवाद के समझौते सम्बन्धी समाधान एक कागजी घोषणापत्र मात्र बनकर रह गया, क्योंकि किसी आतंकवादी के विरुद्ध प्रत्यार्पण करने की व्यवस्था इसमें नहीं बनाई जा सकी थी। यह भी ज्ञातव्य है कि भारत और पाकिस्तान के बीच प्रत्यार्पण सम्बन्धी कोई सन्धि भी नहीं है, जबकि इस प्रकार की सन्धि केवल भारत और नेपाल के बीच अवश्य है। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवादी समझौते पर भारत ने भी हस्ताक्षर किया था, किन्तु काठमाण्डू शिखर सम्मेलन में वह इसका अनुसमर्थन नहीं कर सका, यदि ऐसा होता तो भारत को अपने प्रत्यार्पण कानूनों तथा क्रिमिनल प्रोसीजर कोड में भी संशोधन करना पड़ता। इसके साथ ही यह भी एक बहुत बड़ी समस्या थी कि इस समझौते से यह निर्णय कर पाना सम्भव नहीं हो सका कि किस कार्यवाही को आतंकवादी कार्यवाही माना जाय और किसे नहीं। उदाहरण के लिए सिक्ख आतंकवादी आसानी के साथ पाकिस्तान में शरण पा जाते हैं, और पाकिस्तान उन्हें सहायता और प्रशिक्षण भी देता है। ऐसी परिस्थितियों में जब तक कि कोई आधारभूत कानूनों के आधार पर कोई प्रस्ताव सामने नहीं आ पाता, तब तक उक्त समझौते का कोई अर्थ नहीं है।

''दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) की सफलता के लिए अनेक महत्वपूर्ण आधार कहे जा सकते हैं, उनमें महाशक्तियों द्वारा परमाणु अस्त्रों पर रोक लगाने के लिए एक सन्धि करने पर जोर दिया जाता रहा है, किन्तु यह कार्य तब अधिक सार्थक होगा, जबकि सार्क के सदस्य राष्ट्र अपने सैनिक व्यय में इतनी कमी कर दें जो आवश्यक व्यय के अन्तर्गत रखी जा सके, और तब सार्क का प्रभाव महाशक्तियों पर डाला जा सकता है।

सार्क के भावी विकास के सम्बन्ध में एक प्रश्न सामने आता है कि क्या यह क्षेत्र अपने राजनीतिक तथा द्विपक्षीय झगड़ों से मुक्ति पा सकेगा। यद्यपि यह इन समस्याओं की अनदेखी करके इस भ्रम को दूर करने का प्रयास कर रहा है, यह मान कर कि गैर राजनीतिक मामलों में समुचित विकास हो रहा है उसका यह भी सूचना है कि आर्थिक समस्याओं के हल की सफलता से राजनीतिक समस्याओं को सुझलाने में कुछ सुविधा अवश्य मिलेगी। इसका अभिप्राय यह है कि इसका आर्थिक सहयोग राजनीतिक संघर्षों से दूर होने पर निर्भर करता है। वस्तुतः सार्क संगठन की यह सोच लाभदायक नहीं कही जा सकती।

उपर्युक्त विवेचन से सार्क के सदस्य राष्ट्रों के बीच अव्यवस्थित राजनीतिक सम्बन्धों पर पूरा प्रकाश पड़ता है। यह तथ्य इस स्थिति में देखा जा सकता है कि एक ओर तो सार्क दक्षिण एशिया के व्यतित्व के विकास में अभिरुचि के साथ लाभकारी सहयोग बढ़ाने की आशा करता है, दूसरी ओर आन्तरिक राजनीतिक शक्ति का खेल अपनी लम्बी परछाई उपर्युक्त आशा पर डाल कर उसे धूमिल सा बना देती है। अतः जब तक सदस्य राज्यों के बीच मित्रता पूर्ण एवं सद्भावना से युक्त राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो जाते, तब तक सार्क के विकास कार्यक्रम को रोक देना उचित होगा, जिससे कि सार्क के विभाजित होने की स्थिति पैदा न हो सके। चूँकि सदस्य राष्ट्रों में व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रीय स्तर पर अहम् भावना अधिक दिखाई देती है, जिसे सार्क के विकास में एक रुकावट कहा जा सकता है। फिर भी समान प्रभुसत्ता, समानता एवं स्वतंत्रता आदि का सिद्धान्त उन्हें बाँधने के लिए पर्याप्त दिखाई देता है। अब तक सार्क के विकास का जो स्वरूप सामने आया है, उससे स्पष्ट पता लगता है कि अभी उसे सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में बहुत कुछ करना शेष है, जो इसके आकार और प्रभाव को निश्चित कर सकेगा।

चतुर्थ शिखर सम्मेलन, इस्लामाबाद, 1988

इस्लामाबाद शिखर सम्मेलन पर दृष्टि डालने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि पिछले शिखर सम्मेलनों की सामान्य उपलब्धियाँ क्या रहीं, और इस समय क्षेत्र की कैसी परिस्थितियाँ थीं, जो इस्लामाबाद बैठक को प्रभावित कर सकती थीं।

सर्वप्रथम यह विशेष महत्व की बात है कि इस समय पाकिस्तान में प्रजातंत्र वापस आ चुका था, अफगानिस्तान का युद्ध समाप्ति के निकट था, भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों में भी सुधार दिखाई पड़ रहा था, श्रीलंका की समस्या ग्रस्त आन्तरिक संघर्षपूर्ण परिस्थितियाँ समाप्ति के निकट थीं। मालदीव भारत के सहयोग से एक खूनी षड्यंत्र से बचाया जा चुका था, वह षड्यंत्र जो भाड़े के विदेशी आतंकवादियों द्वारा रचाया गया था तथा भारत और बांग्लादेश के सम्बन्ध भी सामान्य बनते जा रहे थे। महाशक्तियों के तनाव में भी कमी आ रही थी, अतः यह कहा जा सकता है कि इस्लामाबाद के शिखर सम्मेलन की सफलता के लिए चारों ओर का वातावरण लगभग अनुकूल बन गया था।

यह ज्ञातव्य है कि चतुर्थ शिखर बैठक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार श्रीलंका में होनी थी।[1] किन्तु श्रीलंका द्वारा अपनी आन्तरिक परिस्थितियों के कारण अचानक असमर्थता व्यक्त कर देने पर पाकिस्तान इस बैठक को अपने यहाँ कराने के लिए तत्काल सहमत हो गया।

पिछली शिखर बैठकों की उपलब्धियों को यदि संक्षेप से देखा जाय तो उसका स्वरूप इस प्रकार सामने आता है—बांग्लादेश द्वारा सार्क निर्माण की जो पहल की गयी थी, उसके फलस्वरूप ढाका शिखर बैठक में मुख्य रूप से दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के उद्देश्यों, सिद्धान्तों तथा कार्य क्षेत्रों का निर्धारण एवं उनके तौर-तरीकों से सम्बन्धित निर्णयों के साथ एक अच्छा वातावरण तैयार कर लिया गया था।

दूसरी शिखर बैठक बंगलौर, (भारत) में हुई। जिसमें पांच विशेष कार्य क्षेत्रों को सम्मिलित करने का प्रस्ताव किया गया था, जिसमें बच्चों एवं महिलाओं के विकास, शिक्षा तथा अधिकारों की सुरक्षा के साथ प्रसारण कार्यक्रम, शैक्षिक कार्यक्रम, पर्यटन, युवा कार्यक्रम, प्रलेखन कार्यक्रम तथा आतंकवाद एवं नशीले पदार्थों का निराकरण आदि सम्मिलित थे, अर्थात् सार्क को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से यह बैठक अत्यन्त सफल कही जा सकती है।

काठमाण्डू शिखर बैठक में सामान्य उपलब्धियों के रूप में बिगड़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक पर्यावरण पर चिन्ता, क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाने पर विचार, सार्क सचिवालय की स्थापना तथा सुरक्षित खाद्य भण्डार की व्यवस्था आदि को देखा जा सकता है।

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) का चतुर्थ शिखर सम्मेलन 29-31 दिसम्बर, 1988 को इस्लामाबाद (पाकिस्तान) में हुआ। इस बैठक के पूर्व 28 दिसम्बर, 1988 को विदेश मंत्रियों द्वारा एक प्रस्ताव का प्रारूप तैयार कर लिया था, जिसे राष्ट्राध्यक्षों के समक्ष शिखर सम्मेलन में स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता था।

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 3 नवम्बर, 1987.

इस्लामाबाद का यह शिखर सम्मेलन वहाँ के एक पर्यटन स्थल 'मरगाला पहाड़ियों' में सम्पन्न हुआ। शिखर सम्मेलन की अध्यक्षता पाकिस्तान की प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो ने की। सातों राष्ट्राध्यक्षों द्वारा अपने पूर्व संकल्पों को दोहराने के साथ ही अन्य सहयोग के कार्यों पर भी अपना विचार व्यक्त किया गया।

शिखर सम्मेलन की सभापति प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो ने पुराने प्रस्तावों को ही दोहराते हुए कहा कि मादक द्रव्यों के खतरों तथा तस्करी को रोकने का प्रयास होना चाहिए, जो कि नवयुवकों को बर्बाद करने के साथ समाज और क्षेत्र के विकास को भी नष्ट कर रहा है।[1] यह मनुष्य मात्र के विरुद्ध एक ऐसा अपराध है जिसकी कोई राष्ट्रीय सीमा नहीं है, और दक्षिण एशिया का सम्पूर्ण क्षेत्र इसका व्यापार केन्द्र बनता जा रहा है।

बेनजीर भुट्टो ने सार्क देशों पर आर्थिक कठिनाइयों का कारण पूरे विश्व के बिगड़ते हुए आर्थिक पर्यावरण को बताया। उन्होंने कहा कि स्वतंत्र अर्थव्यवस्था तथा स्वतंत्र व्यापार के लिए यह सामान्य विश्वास है कि औद्योगिक देशों ने अपने आर्थिक क्षेत्रों की रक्षा के लिए विकासशील देशों के विरुद्ध सीमा शुल्क तथा बिना शुल्क के प्रतिबन्ध की दीवार खड़ी कर रखी है। उन्होने विख्यात अर्थशास्त्री जॉन गाल ब्रेथ का उद्धरण देते हुए बताया कि दक्षिण एशिया क्षेत्र के देशों को पश्चिमी देशों के समान आर्थिक उन्नति तक पहुँचने में सौ वर्ष का समय चाहिए, क्योंकि इस क्षेत्र में किया जाने वाला सम्पूर्ण विकास जनसंख्या वृद्धि के कारण बेकार हो जाता है तथा पश्चिमी देशों के बराबर पहुँचने का उनका स्वप्न उड़ जाता है।[2]

बेनजीर भुट्टो का उक्त कथन जनसंख्या वृद्धि के रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है कि इस क्षेत्र की जनसंख्या की बढ़त दर 2.2 प्रतिशत से लेकर 3.1 प्रतिशत तक है। यही कारण है कि बांग्लादेश में 86 प्रतिशत, भारत में 40 प्रतिशत तथा पाकिस्तान में 32 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। परिणामस्वरूप सार्क देशों के प्रति व्यक्ति की वार्षिक आय 270

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 30 दिसम्बर, 1988.
2. मुहम्मद रियाज सार्क (सार्क) सम्मिट, पाकिस्तान एण्ड गल्फ इकोनॉमिस्ट, कराची, जनवरी 14-20, 1989, नं० 2, पृ० 19.

अमेरिकी डॉलर्स प्रति वर्ष है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में 17,480 डॉलर्स प्रति वर्ष की स्वतंत्रता के चार दशक बीत जाने पर भी क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सामाजिक क्षेत्रों की स्थिति निराशापूर्ण बनी हुई है।[1] इसके अतिरिक्त बेनजीर भुट्टो ने अपने भाषण में सैनिक खर्चों में कटौती का मुद्दा उठाकर भारतीय प्रधानमंत्री की प्रस्तावित योजना में एक और कड़ी जोड़ दी। उनका यह कहना था कि इस क्षेत्र के कुछ सीमाओं पर आमने-सामने सेनाओं को तैनात रखने के लिए रक्षा पर अत्यधिक खर्च कर रहे हैं।[2]

पाकिस्तान के राष्ट्रपति गुलाम मोहम्मद इशहाक ने कहा कि हमें इस क्षेत्र में लम्बे समय से चले आ रहे नकारात्मक मामलों, चुनौतियों, अन्धविश्वासों, अनावश्यक रीति-रिवाजों तथा परस्पर शंका और अविश्वास पैदा करने वाली परिस्थितियों को उखाड़ कर फेक देना चाहिए, और उनसे ऊपर उठकर सहयोग के मार्ग को अपनाना चाहिए। उनके अनुसार सार्क की स्थापना से यह सिद्ध हो चुका है कि इस क्षेत्र की जनता में मिलकर काम करने की सामूहिक इच्छा है। उनके अनुसार इस समय विश्व की महाशक्तियाँ भी अपनी-अपनी भिड़न्त को सहयोग में बदलकर एक नये अध्याय की रचना में व्यस्त हैं। अत: सार्क के लिए भी यह अच्छा अवसर है कि वह विश्व शान्ति के लिए अपनी उचित भूमिका का निर्वाह कर सके।[3]

पाकिस्तान के खालिद हुसैन ने शिखर बैठक के पूर्व कार्य समिति के सभापति के रूप में पत्रकारों को सूचित किया कि कार्यक्रम निर्माता समिति ने क्षेत्रीय तपेदिक केन्द्र नेपाल में, मलेरिया तथा मादक द्रव्य उन्मूलन केन्द्र पाकिस्तान में, डाक विभाग तथा विकास केन्द्र श्रीलंका में खोलने का निश्चय किया गया। उन्होंने यह भी बताया कि कला तथा हस्त उद्योग गैलरी से सम्बन्धित कतिपय क्षेत्रों पर बाद में विचार होगा। उन्होंने यह भी बताया कि कार्यक्रमों में 50 प्रतिशत कार्यो की छटनी कर दी गयी है, जिससे कि चुने हुए कार्यक्षेत्रों पर सभी देश प्रभावशाली ढंग से मिलकर कार्य कर सकें। यह भी बताया गया कि अगले वर्ष अर्थात् 1989 में भारत में लम्बे राष्ट्रीय मार्गों तथा पुलों के

---

1. वही.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 30 दिसम्बर, 1988.
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 31 दिसम्बर, 1988.

निर्माण के लिए एक इन्जीनियरिग शिक्षण संस्थान की व्यवस्था की जायेगी। इसी प्रकार कृषि सम्बन्धी कार्य के लिए गेहूँ, मक्का, वन्य विभाग तथा पानी की समस्या पर वैज्ञानिकों द्वारा एक बैठक में विचार किया जायेगा। अन्य कार्यों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि अगले वर्ष ही नेपाल में खेलकूद सम्बन्धी सार्क मैराथन दौड़ का आयोजन होगा। इसी प्रकार ज्ञानवर्धन के लिए पत्र लेखन कला प्रतियोगिता तथा परिवार, स्वास्थ्य एवं परम्परावादी औषधियों पर एक परिसंवाद गोष्ठी का आयोजन किया जायेगा। साथ ही पाकिस्तान में नशीले पदार्थों को रोकने से सम्बन्धित तथा ग्रामीण विकास एवं प्राकृतिक साधनों के उपयोग पर एक बैठक होगी एवं बांग्लादेश में एक संगीत सम्मेलन का भी आयोजन किया जायेगा।[1] इसके साथ ही कार्यक्रम समिति में आडोविजुअल के आदान-प्रदान में आर्थिक तकनीकी, कृषि, मादक द्रव्यों की हेराफेरी एवं उत्पादन की सम्भावनाओं से सम्बन्धित कार्यों पर गोष्ठियों के आयोजन के बारे में भी बताया गया।

अपने भाषण में श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए मंत्रिमण्डलीय स्तर की बैठक में महिलाओं के विकास के सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता बतलाई। उनका कथन था कि स्थायी समिति को सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ाने तथा उसके साधनों की खोज करने का प्रयास करना चाहिए। राष्ट्रपति ने यह भी प्रस्ताव रखा कि अगली बैठक कोलम्बो में आयोजित की जाय। इसके अलावा उन्होंने मालद्वीप में भाड़े के आतंकवादियों द्वारा की गयी कार्यवाही को प्रारूप में जोड़ देने का सुझाव दिया, जिसे मान लिया गया, श्रीलंका के इस प्रस्ताव के पीछे जो तथ्य निहित था वह यह था कि काठमाण्डू शिखर बैठक में उसने भारत और श्रीलंका के बीच हुए समझौते को घोषणा-पत्र में सम्मिलित किये जाने की बात की थी, किन्तु पाकिस्तान के विरोध पर वह सम्भव न हो सका। अपने इस पूर्व कटु अनुभव के आधार पर श्रीलंका ने चतुराई पूर्ण नीति से अन्य सदस्यों को इस शिखर बैठक में पहले ही मिला लिया था, जिसके कारण मालद्वीव प्रसंग को सम्मिलित किया जा सका।[2]

---

1. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 26 दिसम्बर, 1988.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 31 दिसम्बर, 1988.

मालद्वीव के राष्ट्रपति अब्दुल गयूम ने अपने देश पर आये हुए संकट को भारत द्वारा दी गयी अपनी सैनिक सहायता से तत्काल दूर कर देने से प्रभावित होकर भारत के इस सराहनीय कार्य की अत्यधिक प्रशंसा की। यद्यपि श्री राजीव गाँधी ने इस प्रसंग को उठाना चाहा था, किन्तु पाकिस्तान इस कार्य में बिल्कुल मौन रहा।[1]

मालद्वीव की उस घटना पर एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि मुस्लिम देश होने के कारण भी उसने एक दूसरे मुस्लिम देश से सहायता न लेकर भारत से सहायता की माँग की। जिसे भारत ने तुरन्त स्वीकार करके सैनिक कार्यवाही द्वारा विद्राहियों को गिरफ्तार कर लिया। मालद्वीव द्वारा पाकिस्तान से सहायता न मांगने का कारण उसकी कूटनीतिक आशंका कही जा सकती है, अर्थात् वह अफगानिस्तान, बांग्लादेश तथा काश्मीर की समस्याओं के प्रति पाकिस्तान के तथा कथित अनैतिक, अराजनीतिक एवं अनुचित हस्तक्षेप के रवैयों को अच्छी तरह समझता था, अतः पाकिस्तान से सहायता लेना उसके लिए कभी हितकर न होता, क्योंकि पाकिस्तान अपनी दी गई सहायता का बदला किसी राजनीतिक स्वार्थ पूर्ति के रूप में मालद्वीव से अवश्य लेता, जबकि भारत की सहायता पूरी तरह निःस्वार्थ थी।

अपने भाषण में नेपाल नरेश वीरेन्द्र विक्रम शाह देव ने अपने पूर्व विचारों को दोहराने का अवसर प्राप्त करके जल-समस्या, द्विपक्षीय, एवं बहुपक्षीय समस्या पर पुनः ध्यान देने की बात कही, जिससे कि क्षेत्र के विकास में क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ाया जा सके तथा सदस्य देशों के बीच एक ऐसी कार्य योजना बनाने का प्रस्ताव सम्मेलन में रखा, जिससे कि किसी भी सदस्य देश में उग्रवादियों या भाड़े के सैनिकों द्वारा सत्ता हथियाने के प्रयासों से सफलतापूर्वक निपटा जा सके।[2]

बांग्लादेश के राष्ट्रपति जनरल इरशाद ने अपने भाषण में कहा कि इस क्षेत्र में गिरते हुए पर्यावरण तथा आपदाओं की स्थिति से निपटने एवं मानव संसाधन के विकास में सार्थक सहयोग की कार्य योजना पर सदस्य देशों को बल देना चाहिए।[3]

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 31 दिसम्बर, 1988.
2. दि रीजनिंग नेपाल, 31 दिसम्बर, 1988.
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 30 दिसम्बर, 1988.

भूटान नरेश जिग्में सिग्में वांग्चुक ने इस क्षेत्र को परमाणु अस्त्रों से रहित बनाने की अपनी इच्छा पर बल दिया, और इस सम्बन्ध में अच्छा वातावरण बनाने तथा सार्थक व्यवहार अपनाने पर भी जोर दिया गया, जिससे कि क्षेत्र के महत्वपूर्ण मसलों का समाधान किया जा सके।[1]

जहाँ तक इस्लामाबाद सम्मेलन में भारतीय नेतृत्व का प्रश्न है, उसमें प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने अपने भाषण में दक्षिण एशिया सम्बन्धी सांस्कृतिक उत्सव के आयोजन का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। श्री गाँधी ने यह भी कहा कि भारत दक्षिण एशिया सांस्कृतिक उत्सव अपने यहाँ करना चाहता है। इस प्रस्ताव को भी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया गया। साथ ही उन्होंने सहयोग के क्षेत्र में शिक्षा को सम्मिलित करने के लिए अध्ययन हेतु एक तकनीकी समिति द्वारा अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का विचार रखा।[2]

श्री गाँधी ने उद्घाटन समारोह में दक्षिण एशियाई सहयोग के लिए गरीबी के विरुद्ध संघर्ष, व्यापार और आर्थिक सहयोग में वृद्धि, सूचनाओं के निर्बाध आदान-प्रदान तथा सदस्य देशों के बीच बिना रोक-टोक, आवागमन की अपनी योजना प्रस्तुत की। उन्होंने भारत और पाकिस्तान के बीच मैत्री और सहयोग की नई सम्भावनाओं के प्रति अपनी प्रसन्नता भी व्यक्त की। उन्होने अफगानिस्तान समस्या, भारत-श्रीलंका समझौता, फिलीस्तीनी समस्या, मालद्वीव में घटित घटना तथा चीन की अपनी यात्रा की चर्चा करते हुए सार्क क्षेत्र में अपने सम्बन्धों को विकसित करने पर जोर दिया। उन्होनें क्षेत्रीय सहयोग का मुख्य आधार आर्थिक सहयोग बताया। उनका कहना था कि भारत बड़ा देश होने के कारण दूसरों के हितों में बाधक न होकर साधक ही होना चाहता है। उन्होनें वर्ष 1989 को दक्षेस की जनता का वर्ष मनाने का प्रस्ताव किया। विदेश राज्यमंत्री के० नटवर सिंह ने श्री गांधी की बड़ाईं करते हुए कहा कि वे भारत और पाकिस्तान के द्विपक्षीय सम्बन्धों के सम्पूर्ण आधार को बदल देने के लिए बहुत ही साहसिक कदम उठाने को तत्पर है। साथ ही यह भी कहा कि दोनों देशों के बीच गतिरोध को समाप्त करने के लिए यह अभूतपूर्व मौका है, क्योंकि पिछले 43 वर्षों में

---

1. वही.
2. वही.

पहली बार सही मायने में गतिरोध समाप्त करने का मौका हाथ लगा है।[1] श्री गाँधी ने अपने पारस्परिक सम्बन्धों को बढ़ाने, सुधार करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर भी विचार विमर्श किया। साथ ही उन्होंने बालिकाओं एवं महिलाओं के प्रति होने वाले भेदभाव को समाप्त करने पर भी जोर दिया।

इस शिखर सम्मेलन की एक विशेष उपलब्धि के रूप में भारत और पाकिस्तान के बीच हुए तीन समझौतों को विशेष महत्वपूर्ण समझा जा सकता है—

1. एक दूसरे के परमाणु ठिकानों पर हमला न करना।

2. दोहराकर समाप्त करने सम्बन्धी समझौता।

3. तीन वर्षीय सांस्कृतिक समझौता, जिसके आधार पर एक दूसरे के देश में सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना की जायेगी, जिसका उद्देश्य कला, संस्कृति, पुरातत्व, शिक्षा, संचार माध्यमों तथा खेल-कूद के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाना एवं सुविधायें उपलब्ध करना होगा।[2]

राजीव गाँधी के उपर्युक्त विचारों एवं भारत-पाक समझौतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन" का जो चतुर्थ शिखर सम्मेलन इस्लामाबाद में हुआ, कुल मिलाकर उसकी सफलता का रहस्य है राजीव गाँधी और बेनजीर भुट्टो के बीच होने वाली वार्तालाप की सफलता। यदि पाकिस्तान और भारत के रिश्ते इस सम्मेलन से नहीं संभलते, तो यह सम्मेलन शायद उतना सफल सिद्ध नहीं होता। इस सम्मेलन में पाकिस्तान की ओर से ऐसा वातावरण प्रदर्शित किया गया, जिसका सीधा अर्थ यह है कि इस राष्ट्र का युवा नेतृत्व भारत के साथ अपने सम्बन्ध सुधारना चाहता है।

इस्लामाबाद शिखर सम्मेलन के अन्तिम दिन घोषणा पत्र जारी किया गया, जिसकी कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 30 दिसम्बर, 1988.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1 जनवरी, 1989.

1. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक विचार करने के साथ ही परस्पर क्षेत्रीय सहयोग के मसलों पर विचार-विमर्श करना।

2. दक्षिण एशिया के क्षेत्र को युद्ध मुक्त क्षेत्र बनाना, तथा सैनिक खर्चो में कटौती करना।

3. विकसित देशों से संरक्षणवाद को समाप्त करने और विकासशील देशों में से विकसित देशों में जाते धन को रोकने के उपाय का अनुरोध किया गया।

4. व्यापार उत्पादन और उन सेवा क्षेत्रों का पता लगाया जाय जिसमें तत्काल सहयोग किया जा सकताहै।

5. सदस्य राष्ट्रों द्वारा स्वयं वरीयता क्रम में अपनी योजनायें बनाना तथा उन्हें सम्मिलित रूप में एक क्षेत्रीय योजना के रूप में रखना और उसे सार्क 2000 की संज्ञा देना, और उसे लक्ष्य बनाकर पूरा करना।

6. मानव साधनों का विकास करना जो सार्क के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो।

7. 1989 वर्ष को बाल वर्ष तथा मादक द्रव्यों के विरोध के रूप में मनाना।

8. सन् 1990 को बालकों के वर्ष, विशेष रूप से बालिकाओं का वर्ष के रूप में मनाये जाने का निर्णय लिया जायेगा।

9. भारत तथा पाकिस्तान के बीच तीन द्विपक्षीय समझौते सम्पन्न।

10. आर्थिक योजना के विकास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया।

11. आतंकवाद तथा मादक द्रव्यों के निराकरण सम्बन्धी संकल्प।[1]

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त सहयोग के अन्य विभिन्न क्षेत्रों पर भी विचार विमर्श हुआ, जिसे कतिपय नेताओं के वक्तव्यों में देखा जा सकता है। जैसे—शिखर सम्मेलन में कुछ परिवर्तनों

---

1. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 1 जनवरी, 1989; दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1 जनवरी, 1989; दि हिन्दू, मद्रास, 1 जनवरी, 1989; आगा एम० घोष, इकोनामिक्स डाइमह्मन्शन ऑफ सार्क, पाकिस्तान ऐण्ड गल्फ इकोनामिस्ट, कराची, जनवरी, 14-20, 1989, नं० 2, पृ० 23.

द्वारा आर्थिक क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने का प्रयास भी किया गया, और समन्वय समिति को यह कार्य सौंप दिया गया एवं इसे जल्दी करने के लिए निर्देश दिया गया। यद्यपि भारत तथा कुछ अन्य देश इस प्रस्ताव को पहले ही रख चुके थे, किन्तु भारत के बड़े आकार एवं सुदृढ़ आर्थिक स्थिति से छोटे सदस्य देश कुछ सशंकित थे कि वह उन पर अपना प्रभुत्व जमा सकता है, किन्तु भारत के प्रधानमंत्री द्वारा यह पहले ही आश्वासन दिया जा चुका था कि वह अपने सदस्य साथियों के हितों की कभी उपेक्षा नहीं करेगा।[1]

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) का चतुर्थ शिखर सम्मेलन पाकिस्तान की बदली हुई परिस्थियितों को देखते हुए कुछ रचनात्मक तथा सकारात्मक कहा जा सकता है, किन्तु पाकिस्तान की बदली हुई प्रशासन व्यवस्था में, शिखर में लिये गये निर्णय अपना स्थायित्व कब तक बनाये रखेंगे, यह प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो के शासन में बने रहने की स्थिति पर निर्भर करता है।[2] फिर भी यदि इस शिखर सम्मेलन की उपलब्धियों पर दृष्टि डाली जाय तो यह कहा जा सकता है कि भारत तथा पाकिस्तान दो विरोधी विचार वाले देशों का एक लम्बे समय बाद एक मंच पर एकत्रित होना महत्वपूर्ण है।

इस बैठक में प्राकृतिक विपदाओं के कारणों, उनके परिणामों से बचने के उपाय, पर्यावरण की सुरक्षा आदि के लिए एक क्षेत्रीय योजना का निर्माण, जन-जीवन के स्तर को उठाना तथा पूर्व निर्धारित 14 विशेष कार्य क्षेत्रों में विकास करना आदि प्रमुख थे।[3] इसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि ये दोनों देश आपस में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लें, तो सार्क के विकास के लिए अत्यधिक उपयेगी होगा। इस बैठक में सभी देशों में परस्पर सहयोग के लिए एक राजनीतिक इच्छा विद्यमान थी, और एकात्मकता के साथ वे सार्क के व्यक्तित्व का विकास करना चाहते थे, एवं अपनी सम्पूर्ण शक्ति से क्षेत्र की गरीबी, बीमारी, निरक्षरता तथा अज्ञानता आदि से छुटकारापाने के इच्छुक थे। इस इच्छा की विशेष पुष्टि प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो के उस कथन में देखने को मिलती है, जिसमें

---

1. दि नेशनल हेराल्ड, नई दिल्ली 8 जनवरी, 1989.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 31 दिसम्बर, 1988.
3. मोहम्मद रियाज, सार्क (सार्क) सम्मिट, पाकिस्तान एण्ड गल्फ इकोनॉमिस्ट, कराची, जनवरी, 14-20, 1989, नं० 2, पृ० 18.

उन्होंने दक्षिण एशिया क्षेत्र को संसार का सम्पन्न एवं विकासपूर्ण केन्द्र माना। इसके अतिरिक्त राजीव गाँधी ने सार्क को जनता के आन्दोलन के रूप में बदलने पर जोर दिया, और कहा कि भारत कभी भी दूसरे की कीमत पर अपना लाभ उठाने का प्रयास नहीं करेगा। श्री गाँधी के इस कथन का सभी सदस्य देशों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। इस आधार पर कहा जा सकता है कि यह सम्मेलन सार्थक सिद्ध हुआ।

पंचम शिखर सम्मेलन, माले, 1990

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) का पंचम शिखर सम्मेलन 21-23 नवम्बर, 1990 तक माले (मालद्वीव में सम्पन्न हुआ। इस शिखर सम्मेलन की एक विशेषता यह थी कि इसमें दो राष्ट्रपति अब्दुल गयूम (मालद्वीव) और जनरल इरशाद (बांग्लादेश), एक राष्ट्राध्यक्ष किंग जिगू सिग्में वांगचुक (भूटान) तथा चार प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर (भारत), नवाज शरीफ (पाकिस्तान), के० पी० भट्टाराई (नेपाल) तथा डी० बी० विजय तुंग (श्रीलंका) सम्मिलित हुए, जो स्वयं में एक नवीन व्यवस्था थी।[1] सम्मेलन के दो दिन पूर्व विदेश मन्त्रियों की बैठक हुई, जिसमें शिखर बैठक में रखे जाने वाले प्रस्ताव तैयार किये गये। प्रधानमन्त्री चन्द्रशेखर ने पहले दिन ही पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ से अपनी औपचारिक वार्ता में यह पूरी तरह स्पष्ट कर दिया कि भारत अपनी पूर्व निर्धारित नीति पर चलता रहेगा और पड़ोसियों के साथ सम्बन्ध सुधार तथा कटुता कम करने के लिए प्रयास करता रहेगा।[2]

दो दिन पूर्व हुई मन्त्रिपरिषद (काउन्सिल ऑफ मिनिस्टर्स) की बैठक में पाकिस्तान के विदेशमन्त्री याकूब खाँ ने यह प्रस्ताव रखा कि सार्क की व्यवस्था में क्षेत्रीय राजनीतिक समस्याओं पर भी विचार कियाा जाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि सार्क देशों के बीच राजनीतिक और आर्थिक मामले बहुत स्पष्ट नहीं है। श्रीलंका के विदेशमन्त्री हेराल्ड हेरल ने कहा कि सार्क की प्रगति बहुत धीमी है, फिर भी सहयोग के कुछ क्षेत्रों में सन्तोषजनक कार्य हो रहा है। वस्तुतः सार्क संगठन में साहस और उत्साह की स्पष्ट कमी है।[3]

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 21 नवम्बर, 1990.
2. वही.
3. वही.

नेपाल के प्रधानमन्त्री के0 पी0 भट्टराई ने बतायाा कि सार्क की सम्पूर्ण गतिविधियों पर सिंहावलोकन की आवश्यकता हैऔर अल्पकालिक कार्यक्रमों, जैसे-सेमिनार्स, वर्कशौप्स, ट्रेनिंग प्रोग्रम आदि पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, जिससे कि उन्हें दीर्धक़ालीन योजनाओं के साथ समन्वित किया जा सके और सार्क सहयोग को सार्थक बनाया जा सके। बांग्लादेश के विदेशमन्त्री ने भी इसी तरह के विचार व्यक्त किये।[1]

इस प्रकार विदेशमन्त्रियों और मन्त्रिपरिषद की बैठकों के पश्चात् शिखर सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। शिखर सम्मेलन में विभिन्न राष्ट्राध्यक्षों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये—

पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ, जो दो वर्ष से सार्क की अध्यक्षता कर रहे थे, ने कहा कि सार्क संगठन को बड़ी सावधानी से पोषित किया जाना चाहिए और शक्तिशाली बनाया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक पद्धति से धनी और निर्धन देशों के बीच बराबर अन्तर बढ़ाता जा रहा है, जिससे भविष्य में इन देशों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा, जिसमें नकारात्मक आर्थिक उफान, सीमा शुल्क जैसी अन्य बाधाएँ हो सकती हैं। अत: दक्षिण एशिया के देशों को अपनी स्वयं की योग्यता और साधनों पर निर्भर रहना चाहिए। इस सन्दर्भ में दक्षिण-दक्षिण सहयोग (South-South Cooperation) और विशेषकर क्षेत्रीय सहयोग का सामान्य आर्थिक समस्याओं के समाधान में विशेष महत्व है।[2] उन्होंने कहा कि यह पश्चाताप की बात है कि दक्षिण एशिया क्षेत्र में सुधार की नई लहर दिखाई दे नहीं रही है और पारस्परिक मतभेदों को दूर करने के लिए आवश्यक उपाय खोजने बाकी हैं, एवं राजनीतिक तथा सुरक्षा सम्बन्धी वातावरण को विश्वसनीय बनाना भी आवश्यक है। उन्होंने यह भी कहा कि पाकिस्तान यह महसूस करता है कि सार्क के देश पारस्परिक तनाव को बरदास्त नहीं कर सकते हैं, और न ही सुरक्षा के भारी बजट को झेल सकते हैं। सार्क तब तक अपनी पूरी शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता जब तक सदस्य देशों के बीच मतभेद और झगड़े पारस्परिक समानता और न्याय के आधार पर शान्तिपूर्वक दूर नहीं हो जाते और

---

1. वही.
2. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 22 नवम्बर, 1990; दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 22 नवम्बर, 1990; दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 22 नवम्बर, 1990.

सन्देह का वातावरण मिथ्या नहीं जाता। यदि ऐसा नहीं होता है तो क्षेत्र में कटुता एवं अशान्ति बढ़ सकती है और सार्क संगठन अपनी गतिशीलता को खो सकता है। नवाज शरीफ ने पाकिस्तान के अपने पुराने प्रस्ताव पर पुनः बल देते हुए कहा कि सार्क देशों को एक प्रतिबन्धित समझौते के द्वारा आणवीय हथियारों को त्यागने की घोषणा करना चाहिए। साथ ही उन्होंने सार्क मंच पर द्विपक्षीय मामलों के विचार विमर्श हेतु अपना प्रस्ताव रखा।[1]

नेपाल के प्रधानमंत्री कृष्ण प्रसाद भट्टाराई ने भारत के प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर के उस प्रस्ताव को दोहराया, जिसमें बताया गया था कि सार्क को जनता की आधारभूत समस्याओं को दूर करना चाहिए और इसे सक्रिय रूप दिया जाना चाहिए। भट्टाराई ने विश्व को प्रभावित करने वाले आर्थिक परिवर्तनों तथा अन्य समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए क्षेत्र के विकसित देशों के मध्य सहयोग बढ़ाने पर भी बल दिया।[2]

बांग्लादेश के राष्ट्रपति एच० एम० इरशाद ने कहा कि विश्व की महाशक्तियों को विभिन्न राष्ट्रों के मध्य राष्ट्रीय तनाव बढ़ाने का लाइसेंस नहीं दिया जाना चाहिए और आर्थिक सुधारों में निर्धन राष्ट्रों को दूर नहीं रखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्होंने द्विपक्षीय, राजनीतिक एवं अन्य मुद्दों को मंच पर उठाने के लिए सार्क घोषणा-पत्र के पुनः आकलन करने का भी आवाहन किया।[3]

सम्मेलन में मालद्वीप के राष्ट्रपति मि० गयूम ने द्विपक्षीय मुद्दों को सार्क सम्मेलन में उठाये जाने के प्रश्न पर कहा कि इस सम्बन्ध में केवल सम्मेलनों के अवसर पर ही अनौपचारिक बैठकों की व्यवस्था हो सकती है, लेकिन माले घोषणा-पत्र में इस विषय पर कोई निर्णय नहीं लिया गया।

सम्मेलन के अध्यक्ष अब्दुल गयूम ने सार्क प्रस्तावित क्षेत्रीय कोष के लिए क्षेत्र के बाहर के देशों से सहायता करने के सम्बन्ध में बताया कि हमें संसाधन जुटाने के लिए पहले क्षेत्रीय स्तर पर ही प्रयास करना है। अतः किसी बाहरी सहायता के बारे में अभी निर्णय लिया जाना बाकी है।[4]

---

1. वही.
2. वही.
3. वही.
4. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 22 नवम्बर, 1990.

भारतीय प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने इस शिखर सम्मेलन में अपने वक्तव्य में कहा कि सदस्य देशों को इस क्षेत्र की जनता के मन में उठ रही समस्याओं पर विचार-विमर्श करना चाहिए। अपने प्रथम उद्‌घाटन भाषण में श्री चन्द्रशेखर ने सदस्य देशों से आर्थिक सहयोग बढ़ाने की अपील करते हुए कहा कि विश्व के विभिन्न भागों के कुछ देश आर्थिक आधार पर एकत्र होने का प्रयास कर रहे हैं। अत: सार्क सदस्यों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। श्री चन्द्रशेखर ने अन्तर्राष्ट्रीय मंच से अपने प्रथम भाषण में इस बात पर खेद व्यक्त किया कि दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के गठन के पांच वर्ष बाद भी सदस्य देशों की जनता का जीवन विशेष लाभान्वित नहीं हो सका है। उन्होंने कहा कि इसका लाभ जनता को तभी मिलेगा जब सदस्य देश वस्तुओं के उत्पादन और उनके आदान-प्रदान में सहयोग करेंगे। अपनी बात स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि उनका अभिप्राय व्यापार, उद्योग, ऊर्जा, मुद्रा तथा वित्त के क्षेत्रों में सहयोग से है।[1]

भारतीय प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने कहा कि सार्क के देशों पर व्यापार के घाटे और अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों का दबाव बराबर बढ़ता जा रहा है। अत: सदस्य देशों में क्षेत्रीय सहयोग अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि क्षेत्रीय सहयोग के लिए यह एक मौलिक आधार है। उन्होंने यह भी कहा कि सार्क की बैठक केवल औपचारिक अभ्यास अथवा कूटनीतिक विचारों पर आधारित नहीं होनी चाहिए, बल्कि सदस्य देशों के मध्य निरन्तर विचार-विमर्श होते रहना आवश्यक है, और क्षेत्र के आर्थिक पर्यावरण में सुधार अपरिहार्य है।[2]

प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने स्पष्ट किया कि विश्व की लगभग 46 प्रतिशत निर्धन जनता दक्षिण एशिया में निवास करती है और उसे कठिन समस्याओं दरिद्रता, अशिक्षा तथा बीमारियों का सामना करना पड़ता है। सार्क सहयोग की प्रकृति मध्यस्तरीय है। यही कारण है कि 1980 से 1987 के मध्य सार्क देशों का निर्यात और आयात विश्व व्यापार में प्रतिशत की दृष्टि से कम हो गया है। उन्होंने सदस्य देशों का ध्यान विश्व में हो रहे आर्थिक परिवर्तन की ओर आकर्षित करते हुए कहा कि इस

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 22 नवम्बर, 1990; दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 22 नवम्बर, 1990.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 22 नवम्बर, 1990.

दिशा में यूरोपियन कम्यूनिटी (ई० सी०) की बढ़ती हुई एकता की ओर हमें देखना चाहिए। अपने प्रस्ताव में श्री चन्द्रशेखर ने कहा कि सार्क देशों को उच्च तकनीकि क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाना चाहिए। इस दिशा में जैव विज्ञान तथा जर्म-प्लाज्म बैंक के क्षेत्र में विशेष रूप से काम किया जा सकता है। उन्होंने क्षेत्रीय योजनाओं के लिए एक कोष स्थापित करने का भी सुझाव दिया।[1]

सम्मेलन के दूसरे दिन भारतीय प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन, (सार्क) के सदस्य देशों के राष्ट्राध्यक्षों को बताया कि भारत और पाकिस्तान के पारस्परिक तनाव को कम करने के लिए उनके विदेश सचिवों की तीसरी बैठक इस्लामाबाद में होगी। श्रीचन्द्रशेखर ने श्री नवाज शरीफ के साथ अपनी दो घण्टों की अनौपचारिक वार्ता के बाद बताया कि वह वार्ता से पूर्ण सन्तुष्ट हैं और कहा कि दोनों देश अच्छी मित्रता बढ़ाने में रुचि रखते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि दोनों देश इस बात पर सहमत हुए हैं कि दोनों मिलकर अपनी समस्याओं का समाधान करेंगे, क्योंकि इन दोनों की बहुत सी समस्यायें एक समान हैं। प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने यह भी बताया कि श्रीलंका की अपनी समस्यायें हैं, फिर भी यदि वह भारतीय सहायता लेना चाहता है तो भारत अवश्य सहयोग करेगा।[2] श्री चन्द्रशेखर ने अपने दूसरे दौर में बांग्लादेश के राष्ट्रपति एच० एम० इरशाद के साथ नदी के पानी की समस्या तथा चकमा शरणार्थियों की समस्या पर खुलकर बात की, और आशा व्यक्त की कि दोनों देशों की यह समस्या शीघ्र ही हल हो जायेगी। उन्होंने अपने एक तात्कालिक प्रस्ताव में कहा कि हमें सम्मेलनों पर विशेष जोर न देकर आधारभूत समस्याओं के समाधान पर बल देना चाहिए। उनके इस प्रस्ताव का स्वागत किया गया।[3]

अन्ततः सार्क के सदस्य देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर के दो प्रस्तावों को सम्मिलित करते हुए माले घोषणा-पत्र को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। भारत के ये दोनों प्रस्ताव निम्नलिखित हैं—

1. क्षेत्रीय योजनाओं के लिए फण्ड निर्धारित करना।

---

1. वही.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 23 नवम्बर, 1990.
3. वही.

2. जैनेटिक संरक्षण और जर्म-प्लाज्म बैंक की स्थापना तथा विशेषज्ञों का आदान-प्रदान।[1]

प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने समापन समारोह में यह कहा कि सार्क संगठन अपनी शैशवावस्था से निकल चुका है। अतः हमें अब ऐसे क्षेत्रों में सहयोग करना उचित होगा जो जनता की भलाई में सहायक हों। उन्होंने सार्क के पाँचवें सम्मेलन को एक नये अध्याय की शुरुआत बताया। उन्होंने कहा कि 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक हम अपनी गतिविधियों को इस प्रकार नियोजित करें कि 21वीं शताब्दी में प्रवेश के पूर्व हम निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें। उन्होंने कहा कि यह प्रसन्नता की बात है कि इस सम्मेलन में आथिक बायोटेक्नॉलॉजी और पर्यावरण सम्बन्धी क्षेत्रों में सहयोग की मजबूत नींव रख दी गयी है। उन्होंने क्षेत्रीय परियोजनाओं की पहचान के लिए एक कोष की स्थापना के प्रस्ताव की भी प्रशंसा की, और कहा कि यह सामूहिक कोष क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग में अत्यधिक सहायक होगा। प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ से द्विपक्षीय मामलों पर विचार-विमर्श किया और क्षेत्र में बढ़ते आतंकवाद के मसले पर तथा परस्पर सहयोग के नये आयाम के द्वार खोलने पर विशेष रूप से चर्चा की। श्री चन्द्रशेखर ने नवाज शरीफ से पंजाब तथा जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान द्वारा आतंकवादियों को समर्थन देने की नीति पर भी चर्चा की। उन्होंने कहा कि हम शान्ति और सद्भाव को समान स्तर पर चाहते हैं किन्तु अपनी सम्प्रभुता और अखण्डता के मुद्दे पर किसी धौंस में आने वाले नहीं है।[2]

सार्क सदस्य देशों के प्रधान इस बात पर भी एकमत हो गये कि कुटीर उद्योगों में सभी को मिलकर जोखिम भरे कदम उठाना चाहिए। पुनः सार्क के सेक्रेटरी जनरल के० के० भार्गव ने बताया कि सार्क के सदस्यों ने उन्हें बालकल्याण तथा बाल संरक्षण के क्षेत्र में नई सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए विशेषज्ञों की बैठक बुलाने हेतु अधिकृत किया है। सार्क सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि नशीली दवाइयों तथा मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले दूषित पदार्थों के एक समझौते पर भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, मालद्वीव और भूटान के विदेशमंत्रियों तथा नेपाल के वित्तमंत्री के हस्ताक्षर होंगे।[3]

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 24 नवम्बर, 1990; दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 24 नवम्बर, 1990.
2. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 23 नवम्बर, 1990.
3. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 23 नवम्बर, 1990; दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 23 नवम्बर, 1990.

सार्क शिखर सम्मेलन के तीसरे दिन माले घोषणा-पत्र में जिन-जिन पक्षों पर ध्यान दिया गया, वे बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। विश्व शान्ति को ध्यान में रखते हुए सार्क सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि कुवैत से इराकी फौजें तुरन्त वापस हों। गयूम ने बताया कि इस सम्बन्ध में प्रथम कदम ईराकी फौजों की वापसी हो[1] क्योंकि खाड़ी युद्ध ने सार्क देशों की आर्थिक स्थिति को बुरी तरह प्रभावित किया है। उन्होंने इस सम्बन्ध में कठिनाइयों से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहायता का आवाहन किया। माले शिखर सम्मेलन के घोषणा-पत्र में जो अन्य महत्वपूर्ण विषय थे, वे इस प्रकार थे—

1. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक पक्ष पर मंत्रिपरिषद् (काउंसिल ऑफ मिनिस्टर्स) की बैठक बुलायी जाय, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रवेश के लिए तथा वर्ष 1992 में विकास के लिए वातावरण तैयार किया जाय।

2. क्षेत्र में सामूहिक सहयोग बढ़ाने के लिए कुटीर उद्योग तथा हस्तशिल्प के विकास में संयुक्त जोखिम भरे कार्य अपनाये जायें, और सम्बन्धित योजनाओं के लिए क्षेत्रीय कोष कायम किया जाय।

3. सार्क कोष की स्थापना के सम्बन्ध में स्थायी समिति को अपनी संस्तुतियों तथा प्रस्ताव देने केलिए निर्देश दिया गया, जिससे कि क्षेत्रीय संसाधनों को जुटाने तथा सामूहिक एवं व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता को बढ़ावा मिल सके।

4. शिखर सम्मेलन में भारत के उस प्रस्ताव को भी स्वीकार कर लिया गया, जिसमें विकासशील देशों के लिए दीर्घकालीन खाद्य संरक्षण हेतु जैव प्रौद्योगिकीय को महत्व दिया जाय तथा जर्म प्लाज्म बैंक के संरक्षण हेतु विशेषज्ञों का आदान प्रदान किया जाय। इस सम्बन्ध में भारत प्रशिक्षण सुविधा देने की पहल का विशेष स्वागत किया गया।

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 24 नवम्बर, 1990.

5. सार्क सम्मेलन में नशीली दवाइयों की तस्करी तथा उनके उपयोग के नियंत्रण पर लिये गये निर्णयों पर विदेश मंत्रियों द्वारा हस्ताक्षर किये गये।

6. सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि सार्क देशों के मध्य बिना वीसा के आवागमन की सुविधा दी जाए, जिससे पर्यटन को बढ़ावा मिले और लोगों के बीच सम्पर्क बढ़ सके। यह सुविधा सुप्रीम कोर्ट के जजों, राष्ट्रीय संसदों के सदस्यों, शैक्षिक संस्थाओं के अध्यक्षों तथा उनके बच्चों को भी दी जाय।

7. सम्मेलन में उत्पादन तथा व्यापारिक अध्ययन को शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने का निर्णय लिया गया तथा 1991 की प्रथम आधी अवधि में सदस्य देशों के बीच विशेषज्ञों द्वारा औद्योगिक यात्रायें सम्पन्न की जायें।

8. श्री अब्दुल गयूम तथा जनरल इरशाद को सार्क क्रिया-कलापों के प्रभावशाली क्रियान्वयन और समन्वय के सम्बन्ध में संस्तुतियाँ देने का कार्य सौंपा गया।

9. मानव संसाधन विकास तथा क्षय रोग नियंत्रण सम्बन्धी मौलिक जानकारी के संकलन से सम्बन्धित तीन केन्द्रों को खोलने का निश्चय किया गया। इसके अन्तर्गत मानव संसाधन विकास केन्द्र इस्लामाबाद में, क्षेत्रीय क्षय रोग केन्द्र काठमाण्डू में तथा क्षेत्रीय दस्तावेज केन्द्र नई दिल्ली में खोले जायेंगे, जबकि सार्क का क्षेत्रीय कृषि सूचनाकेन्द्र ढाका में पहले से ही कार्यरत है।

10. सभी सार्क सदस्य वर्ष 1991 को आवास वर्ष,1992 को पर्यावरण वर्ष तथा वर्ष 1993 को विकलांग निवारण वर्ष के रूप में मानने पर सहमत हुए।

11. शताब्दी के अन्तिम दशक को बालिका दशक मनाने और उनके विरुद्ध भेदभाव को समाप्त करने के लिए एक अभियान चलाने का निर्णय लिया गया।

12. सदस्य देशों ने आर्थिक क्षेत्र में आपसी सहयोग मजबूत करने के लिए संयुक्त उद्यम स्थापित करने तथा क्षेत्रीय परियोजनाओं हेतु सामूहिक कोष स्थापित करने का भी फैसला किया।[1]

---

1. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली 24 नवम्बर, 1990; दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 24 नवम्बर, 1990; दि पैट्रियाट नई दिल्ली, 24 नवम्बर, 1990.

यह पहला अवसर था, जबकि दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) की बैठक निर्धारित सिद्धान्त से हटकर दूसरे वर्ष हुई। सिद्धान्ततः सार्क संगठन की शिखर बैठक प्रतिवर्ष होनी चाहिए। ज्ञातव्य है कि 1989 की शिखर बैठक श्रीलंका में आयोजित होनी थी, जो उसकी आन्तरिक समस्याओं के कारण सम्भव नहीं हो सकी और उसने 1990 की शिखर बैठक अपने यहाँ करने का प्रस्ताव रखा। जबकि 1990 की शिखर बैठक सिद्धान्ततः मालद्वीव में निश्चित थी, जो 21, 22, 23 नवम्बर, 1990 को हुई।[1]

सार्क संगठन अपने छह वर्ष के बाद जीवन में सम्भावित प्रगति नहीं कर सका, क्योंकि सदस्य देशों के विचारों में अपेक्षित समन्वय स्थापित नहीं हो सका और न ही क्षेत्रीय निर्धन जनता को अपेक्षिक लाभ पहुँचाया जा सका।[2] पाकिस्तान तथा भारत के मध्य काश्मीर सम्बन्धी समस्या बनी रही। बांग्लादेश के राष्ट्रपति इरशाद को अपने शासन काल में असम्भावित समस्याओं का सामना करना पड़ा। श्रीलंका के राष्ट्रपति प्रेमदासा भी लिट्टे समस्या में उलझे रहें। यहाँ तक की भूटान जैसे छोटे देश में भी नेपाली जातीय समस्या से अशान्ति बनी रही। नेपाल में भी लोकतांत्रिक शासन पद्धति ने अपने सन्दर्भ में प्रतिनिधित्व का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। अन्ततः नेपाल के प्रधानमंत्री भट्टाराई ही सम्मेलन में सम्मिलित हुए। सदस्य देशों के बीच केवल मालद्वीव ही ऐसा देश था, जहाँ कोई उलझाने वाली आन्तरिक समस्यायें नहीं थी, अतः राजनीतिक दृष्टि से सार्क की शिखर बैठक यहीं होने का अच्छा वातावरण था।[3]

यदि विश्व की राजनीति पर दृष्टि डाली जाय तो यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि क्षेत्रीयता के सम्बन्ध में सारे विश्व में प्रगति हो रही है, जबकि दक्षिण एशिया के देशों को इस बात की कोई चिन्ता नहीं दिखाई देती। समीक्षक विशेषज्ञ भवानी सेन गुप्ता का मत है कि 1992 तक पश्चिमी यूरोप एक यूनिट के रूप में उभर कर सामने आ जायेगा और उनका स्वरूप एक परिवार के रूप में दिखाई देगा।[4] यही अवसर है कि जबकि दक्षिण एशिया को पश्चिमी यूरोप की इस स्थिति से सबक लेना चाहिए।

---

1. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली 24 नवम्बर, 1990.
2. वही.
3. वही.
4. वहीं.

जहाँ तक माले शिखर सम्मेलन का प्रश्न है, इसके निर्णयों से कुछ अनुकूल सम्भावनायें सामने दिखाई देती हैं, जो इस क्षेत्र में आथिक सहयोग बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय परियोजनाओं हेतु सामूहिक कोष के गठन के समझौते में दृष्टिगोचर होता है। इसके घोपणा-पत्र में कुछ ऐसे तत्व दिखाई देते हैं जो सार्क संगठन की प्रगति के सूचक हैं। घोषणा-पत्र के अनुसार शिखर सम्मेलन में खाड़ी युद्ध पर चिन्ता व्यक्त करते हुए उसे दक्षिण एशियाई देशों की आर्थिक प्रगति को बुरी तरह प्रभावित करने वाला समझा गया और समस्याओं से उबरने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहायता के आवाहन के साथ सदस्य देशों को आपस में मिलकर समस्या के सुलझाने पर बल दिया गया।[1]

भारत की ओर से प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर द्वारा रखे गये क्षेत्रीय परियोजनाओं के संचालन हेतु एक क्षेत्रीय कोष स्थापित करने का सुझाव विशेष महत्व रखता है, जिसका उद्देश्य क्षेत्रीय परियोजनाओं के विकास तथा उनकी पहचान से था। इसके साथ ही जैव प्रौद्योगिकीय लम्बी अवधि के लिए खाद्य पदार्थों का संरक्षण तथा जैनेटिक कन्जरवेशन और जर्म प्लाज्म बैंक की स्थापना के प्रस्ताव की शिखर बैठक द्वारा स्वीकृति भी एक अच्छी उपलब्धि मानी जा सकती है। भारत द्वारा एतदर्थ प्रशिक्षण की सुविधा देने के प्रस्ताव का स्वागत किया गया। एक बड़ी उपलब्धि यह मानी जा सकती है कि ग्रुप-15 द्वारा दिये गये सुझाव के अनुसार सार्क देशों को जैनेटिक बैंक की स्थापना में भाग लेना चाहिए।

शिखर सम्मेलन में नसीली दवाओं के प्रयोग एवं तस्करी तथा आतंकवाद की रोकथाम के लिए किये गये पुन: प्रयास सुधार के सूचक कहे जा सकते हैं।

क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने के लिए संगठन के प्रतिनिधियों एवं अन्य महत्वपूर्ण सदस्यों को बिना वीजा के सदस्य देशों की यात्रा करने की सुविधा देना भी एक सहयोगात्मक कदम माना जायेगा।

सम्मेलन में व्यापारिक अध्ययन, उत्पादन आदि पर भी ध्यान दिया गया। साथ ही औद्योगिक संस्थाओं के साथ पारस्परिक सहयोग की स्थापना का भी स्वागत किया गया। भारत का प्रतिनिधित्व इस दृष्टि से महत्व रखता है कि प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर द्वारा रखे गये विचारों का अनुमोदन देशों ने

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 24 नवम्बर, 1990.

किया, अतः कहा जा सकता है कि सार्क के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमें व्यावसायिक तरीके अपनाने की आवश्यकता है।

पाँचवें शिखर सम्मेलन में जो भी निर्णय लिये गये उनके सम्बन्ध में भारत के दृष्टिकोण को समझ लेना आवश्यक है। ज्ञातव्य है कि भारत के प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने आर्थिक सहयोग के क्षेत्र में अपनी पहल करते हुए प्रस्ताव रखा था। सम्मेलन के पश्चात् 3-4 जुलाई, 1991 को माले में हुई विदेशमंत्रियों की बैठक में भारत के विदेशमंत्री माधव सिह सोलंकी ने दक्षिण एशिया क्षत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के देशों से यह अपील की कि व्यापारिक अवरोधों को समाप्त करके सकारात्मक प्रोत्साहन उपायों द्वारा पारस्परिक आर्थिक सहयोग को ठोस रूप दिया जाए। उन्होंने स्पष्ट किया कि समूचे उपमहाद्वीप के बाजारों में पहुँचने का अवसर मिलने से तथा छोटे बाजारों की सीमाओं से बाहर आने और बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्था का लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। सदस्य देशों को क्षेत्रीय मुक्त व्यापार की योजना का लाभ तभी मिल सकेगा, जबकि क्षेत्र के सभी देशों के बीच लाभों को बराबरी से बाँटने का दृष्टिकोण अपनाया जायेगा। उन्होंने सार्क संगठन को एक पूर्ण क्षेत्रीय समुदाय में बदलने की दिशा में अध्ययन करने पर भी बल दिया।[1]

भारतीय विदेशमंत्री ने प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तावित क्षेत्रीय कोष की स्थापना के लिए विदेशी सहायता लेने के सम्बन्ध में भारत के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए बताया कि ये कदम खतरों से भरा हुआ होगा। इससे हमारी क्षेत्रीय प्राथमिकताओं में बाधा पहुँचेगी, और क्षेत्र के ही संसाधनों द्वारा विकास करने का सार्क का मुख्य उद्देश्य प्रभावित होगा, योजनाओं के क्रियान्वयन में विलम्ब होगा तथा कार्य करने की स्वतंत्रता में कटौती के रूप में सार्क को भारी कीमत चुकानी होगी।

श्री सोलंकी ने कहा कि सार्क के सदस्य देशों को चाहिए कि वे अन्तः क्षेत्रीय व्यापार, पूँजी निवेश, संयुक्त उत्पादन सम्बन्धी कार्यों को बढ़ाकर अपनी अर्थव्यवस्था तथा सामूहिक आत्मनिर्भरता को सुदृढ़ बनाये, जिससे कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बढ़ती हुई प्रतियोगिता का सामना किया जा सके। उन्होंने स्पष्ट किया कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण क्षेत्र के विकास के लिए निरन्तर प्रतिकूल

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 5 जुलाई, 1991.

होता जा रहा है, क्योंकि विकसित देश विकासशील देशों से होने वाले निर्यात के विरुद्ध संरक्षण वादी उपायों का प्रयोग पहले से अधिक कर रहे हैं। भारत द्वारा रखे गये आर्थिक सहयोग के प्रस्ताव के सम्बन्ध में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया जाना सहयोग की दिशा में एक ठोस कदम माना जायेगा। यह समिति अल्प तथा दीर्घकालीन आर्थिक सहयोग के क्षेत्रों का पता लगाने सम्बन्धी अध्ययन करेगी।[1]

भारत के विदेश सचिव मुचकुन्द दुबे ने यह स्पष्ट किया कि तकनीकी समिति तथा आर्थिक सहयोग की उच्चस्तरीय समिति ऐसे प्राथमिकताओं वाले क्षेत्रों का पता लगायेगी, जिनका उपयोग अल्प तथा दीर्घकाल के लिए किया जा सके। उन्होंने यह भी बतलाया कि राष्ट्रीय अध्ययनों में क्षेत्रीय अध्ययन का प्रारूप तैयार करने के लिए भारत के सुप्रसिद्ध श्री अनिल अग्रवाल को सार्क के महासचिव का सलाहकार नियुक्त किया गया है।[2]

विदेशमंत्रियों की बैठक में एक महत्वपूर्ण कदम यह उठाया गया कि व्यापार, उत्पादन तथा सेवाओं से सम्बन्धित स्थायी समिति की रिपोर्ट को स्वीकृति प्रदान की गई। दूसरा प्रमुख निर्णय यह लिया गया कि क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने के उद्देश्य से पर्यटन सम्बन्धी एक तकनीकी समिति का गठन किया गया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि तकनीकी समिति तथा आर्थिक सहयोग सम्बन्धी एक तकनीकी समिति का गठन किया गया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि तकनीकी समिति तथा आर्थिक सहयोग सम्बन्धी उच्चस्तरीय समिति प्राथमिकता के आधार पर ऐसे क्षेत्रों का निर्धारण करेगी, जिनका कार्यान्वयन अल्प अवधि तथा दीर्घ अवधि के आधार पर किया जा सके।[3]

माले शिखर सम्मेलन सम्बन्धी उपर्युक्त स्पष्टीकरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत का दृष्टिकोण क्षेत्रीय विकास एवं सहयोग के लिए कितना महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है, जो सार्क के विकास एवं उसके अन्तर्राष्ट्रीय महत्व को बढ़ाने के उद्देश्य से लाभदायक कहा जा सकता है।

---

1. वही.
2. वही.
3. वही.

षष्ठम् शिखर सम्मेलन, कोलम्बो, 1991

''दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ'' (सार्क) का छठा शिखर सम्मेलन 21 दिसम्बर, 1991 को श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में हुआ। पहले यह शिखर सम्मेलन नवम्बर, 1991 में होने वाला था, परन्तु भूटान नरेश के न आ पाने के कारण उसे स्थगित करना पड़ा था।[1] इसके अध्यक्ष का पद श्रीलंका के राष्ट्रपति प्रेमदास ने सम्हाला।

कोलम्बो का शिखर सम्मेलन ऐसा सम्मेलन था जो कि सिर्फ एक ही दिन का था, जबकि पिछले सम्मेलन सामान्यत: तीन दिन तक चलते थे। नवम्बर के प्रथम सप्ताह में जब यह सम्मेलन स्थगित हो गया था तो आशंकाओं तथा सन्देहों का माहौल बन गया था। सार्क के गठन पर प्रश्नचिन्ह लगाना शुरू हो गया था तथा यह कहा जाने लगा था कि इसके सदस्यों को जब एक जगह विशेष पर इकट्ठा होने में ही कठिनाई है, तो इसका परिणामोन्मुख होना और भी सम्भव है।[2] परन्तु 21 दिसम्बर को शुरू हुए सम्मेलन में पहले इन्हीं आशंकाओं को दूर किया गया।

इस सम्मेलन में लिये गये महत्वपूर्ण निर्णयों की विवेचना से पूर्व 1990 में घटित विश्व की महत्वपूर्ण घटनाओं का विश्लेषण आवश्यक है क्योंकि दक्षिण एशिया पर इन घटनाओं का प्रभाव अवश्य पड़ता है। 1990 में साम्यवाद का पतन हुआ तथा गोर्ब्याच्योफ की गलास्तनोस्त और पेरस्त्रोइका नीतियों ने सिर्फ रूस का ही विखण्डन नहीं किया, बल्कि हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया, बुलगारिया, पूर्वी जर्मनी, पोलैण्ड में भी साम्यवाद का पतन हुआ तथा इन देशों ने समाजवादी तथा पूँजीवादी व्यवस्था को अपनाया। इसी वर्ष जर्मनी का एकीकरण हुआ, संकट भी उभरा, अफ्रीका में नेल्सन मण्डेला की 27 वर्षो बाद रिहाई भी 1990 में ही हुई।

इन घटनाओं ने पूरी दुनिया में समीरण बदल दिये तथा आर्थिक भविष्य को अनिश्चित बनाया।[3] ऐसी स्थिति में सार्क के सामने प्रभावशाली भूमिका यही बचती है कि इसके सदस्य देश

---

1. दि हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 21 दिसम्बर, 1991.
2. नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली 21 दिसम्बर, 1991 दि हिन्दू, मद्रास 21 दिसम्बर, 1991.
3. हिन्दूस्तान, नई दिल्ली 23 दिसम्बर, 1991.

आपसी सहयोग को मजबूत कर अपने को सम्भावित शोषण से बचायें तथा साथ ही अपनी आन्तरिक शक्ति को भी बढ़ावें।[1]

कोलम्बों में सातों देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने बड़े ही सहयोग तथा सौहार्दपूर्ण माहौल में अपने विचार व्यक्त किये तथा आपसी समझबूझ से कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिये। कोलम्बो, सार्क सम्मेलन इस अर्थ में सफल कहा जायेगा कि विग्रह की आशंकाओं के बावजूद सहयोग की भावना ज्यादा दिखाई पड़ी। सम्मेलन कई दृष्टियों से सार्थक रहा। आपसी सहयोग के आर्थिक-सामाजिक आयामों पर खुलकर बहस हुई और कई महत्वपूर्ण निर्णय इन संदर्भों में लिये गये।

कोलम्बो शिखर सम्मेलन में सभी सदस्य देशों ने आर्थिक सहयोग बढ़ाने, नशीले पदार्थों व तस्करी एवं आतंकवाद को रोकने का संकल्प दोहराया। साथ ही पर्यावरण, संरक्षण, गरीबी उन्मूलन, शत-प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा, जीवन-स्तर ऊँचा करने, बच्चों के कल्याण तथा प्राथमिक शिक्षा की दिशा में एक एकीकत रणनीति के तहत काम करने का आवाहन किया। बैठक के अन्त में सभी सात सार्क के सदस्य देशों के शासनाध्यक्षों एवं राष्ट्राध्यक्षों ने कोलम्बो घोषणा को पारित कर दिया जिसके मुख्य बिन्दु निम्न हैं—

1. घोषणा-पत्र में व्यापार के क्षेत्र में खुलापन और सार्क प्राथमिकता व्यापार व्यवस्था की बात कही गयी तथा इसके लिए सामूहिक आर्थिक सुरक्षा व्यवस्था का आहवान किया गया। व्यापार को उदार बनाने के लिए एक अन्तर्सरकारी दल का गठन किया गया।

2. दक्षिण एशिया गरीबी उन्मूलन आयोग की स्थापना का संकल्प किया गया। यह आयोग विभिन्न देशों के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का अध्ययन करेगा।

3. घोषणा-पत्र में इस क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने पर जोर दिया गया। इसमें सदस्य देशों की विशेषज्ञता तथा तकनीकी जानकारियों का प्रयोग कर 2000 ई० तक पूरी प्राथमिक शिक्षा हासिल करने का लक्ष्य रखा गया।

---

1. वही.

4. पर्यावरण संरक्षण और नशीली पदार्थों की तस्करी को रोकने की दिशा में एकीकृत रणनीति के बढ़ाने का भी निर्णय लिया गया।

5. इस क्षेत्र में बढ़ते आतंकवाद पर चिन्ता व्यक्त की गयी और इसे रोकने के लिए सार्क क्षेत्रीय सहमझौते के सभी दायित्वों का प्रभावी ढंग से निर्वाह करने का आहवान किया गया।

6. संगठन की विशेष उपलब्धि एशियाई सन्दर्भों मेंबाल विकास की एक कार्य योजना तैयार करने तथा इस शताब्दी के समूचे दशक को सार्क बालिका दशक के रूप में मनाने की घोषणा रही।

7. घोषणा-पत्र में सदस्य देशें ने 2000 ई० तक के लिए आश्रय की दिशा में काम करने का भी निर्णय लिया गया।

8. सातों सदस्यों ने निरस्त्रीकरण की सामान्य प्रवृत्तियों का स्वागत किया और आशा व्यक्त की गयी कि इस तरह की प्रवृत्तियाँ सैन्य शक्तियों को विश्व के अन्य क्षेत्रों में संयम बरतने को प्रेरित करेगी।

9. घोषणा-पत्र में मानव अधिकारों की रक्षा की प्रवृत्तियों का स्वागत करते हुए यह विचार व्यक्त किया गया कि मानव अधिकारों को केवल संकीर्ण और विशुद्ध राजनीतिक दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना चाहिए। इसमें कहा गया कि एक ओर नागरिक और राजनीतिक अधिकारों तथा दूसरी ओर आर्थिक और सामाजिक अधिकारों में अन्योनाश्रित सम्बन्ध है तथा यह भी उतने ही महत्वपूर्ण है।''

10. घोषणा-पत्र में एशिया समेत दुनिया के विभिन्न भागों में लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गयी लोकप्रिय सरकारों की स्थापना की प्रवृत्ति का स्वागत किया गया।

11. घोषणा-पत्र में मानव अधिकारों के सम्बन्ध में सभी देशों द्वारा स्थायित्व की परिस्थितियों में अपने नागरिकों के विकास द्वारा मानव अधिकारों की उनकी संपूर्णता में गारंटी देने की आवश्यकता को रेखांकित किया गया।[1]

---

1. हिन्दुस्तान, नई दिली 22 दिसम्बर,1991, नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली 22 दिसम्बर, 1991, दि हिन्दू मद्रास, 22 दिसम्बर,1991, मेनस्ट्रीम नई दिल्ली, जनवरी, 1992.

एक दिवसीय कोलम्बो शिखर सम्मेलन इस अर्थ में सफल कहा जायेगा कि विग्रह की आशंका के बावजूद सहयोग की भावना अधिक दिखाई पड़ी। चूँकि नवम्बर के प्रथम सप्ताह में होने वाली बैठक स्थगित हो गयी थी, इसलिए स्वाभाविक आशंका थी कि सहयोगपूर्ण वातावरण कोलम्बो में नहीं बन पायेगा। आशंका का दूसरा कारण यह भी था कि दो दिन तक चलने वाला सम्मेलन एक दिन में समाप्त हो गया, परन्तु, एक दिन में जो कुछ हुआ उसे देखते हुए लगता है कि भाग लेने वाले देश इस बैठक को सफल और सार्थक बनाना चाहते थे, इसलिए काम की बातें ज्यादा हुई।

इस सम्मेलन में पाकिस्तान ने अपनी पुरानी बातों को ही दोहराया, लेकिन भारतीय प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने सार्क की वास्तविक उपयोगिता को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया। नरसिंह राव ने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का वास्तविक नक्शा पेश करते हुए सुझाव दिया कि सार्क देश अपनी सामूहिक, आर्थिक सुरक्षा प्रणाली विकसित करें। पी० वी० नरसिंहराव ने निम्न बातों की ओर ध्यान दिलाया—विकसित देश आज क्षेत्रीय आधार पर संगठित हो रहे हैं। पश्चिमी यूरोप के देशों ने आर्थिक सुरक्षा को मजबूत करने और आर्थिक हितों को एक सूत्र में बांध कर अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए समान मुद्रा के प्रचलन पर सहमति कायम की है। दक्षेस देश यदि वास्तव में एक जुटता का प्रदर्शन करने में सफल रहे तो चाहे यूरोपीय संघ हो या जापान या अमेरिका या चीन, सभी इसके मजबूत सहयोग की दिशा में पहल करेंगे।[1] राव का यह संकेत यथार्थपरक है कि आज विश्व के अधिक समृद्ध होने की जो सम्भावना दिखाई दे रही है कि वह कल विपरीत भी हो सकती है।

श्रीलंका के सार्क देशों के व्यापार और वाणिज्य के संदर्भ में 1997 तक प्राथमिकता के आधार पर एक व्यवस्था (South Asian Preferential Trade Arrangement-SAPTA) के निर्माण के प्रस्ताव पर बाकी सभी राष्ट्रों ने गहन विचार विमर्श किया।[2] श्रीलंका ने आतंकवाद से निपटने के लिए सामूहिक रूप से कदम उठाने का व्यावहारिक सुझाव दिया। आपसी सहयोग बढ़ाने का सबसे विश्वसनीय आधार इसी से तैयार हो सकता है।[3]

---

1. हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 23 दिसम्बर, 1991, नव भारत टाइम्स, नई दिली 23 दिसम्बर, 1991.
2. हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 23 दिसम्बर, 1991, नव भारत टाइम्स, नई दिली 23 दिसम्बर, 1991.
3. वही.

विकसित देशों ने इधर एक नये फार्मूले के तहत विदेशी कर्ज अथवा सहायता को मानवाधिकारों से जोड़ना चाहा है। भारत के प्रधानमंत्री ने जी-15 सम्मेलन में राजनीति का विरोध किया था। यहाँ भी उन्होंने अपने विरोध को दोहराया तथा सार्क सदस्यों ने इस मत को सर्वसम्मत समर्थन दिया।[1] इसके अलावा सार्क नेताओं ने पर्यावरण संरक्षण के लिए एकीकृत दृष्टिकोण अपनाने पर जोर दिया। पर्यावरण के सन्दर्भ में सैद्धान्तिक पहलुओं के बजाय व्यावहारिक पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने का आहवान किया। यह भी कहा गया कि पश्चिमी देशों की पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी नीतियाँ विकासशील देशों के हित में नहीं हैं।[2] यदि इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो सार्क का एकीकृत दृष्टिकोण विकसित देशों को अपने कड़े रुख को बदलने के लिए प्रेरित करेगा।

विज्ञान प्रौद्योगिकी के आदान प्रदान से वायुमण्डलीय परिवर्तन के बारे में सूचना, जैव प्रौद्योगिकी, वानिकी ऊर्जा आदि क्षेत्रों में सार्क देशों के लोगों का जीवन-स्तर ऊंचा उठाने के लिए काफी मदद मिलेगी। इससे इस क्षेत्र में ग्रामीणों के स्वास्थ्य तथा पेयजल समस्याओं का भी निराकरण हो सकेगा। बैठक में यह संकेत मिला है कि अनुसंधान और विकास कार्यों को बढ़ावा देने और नये ऊर्जा स्रोतों खासकर सौर ऊर्जा के इस्तेमाल को बढ़ाने के लिए सार्क कटिबद्ध है। इस सम्मेलन की और महत्वपूर्ण उपलब्धि रही गरीबी उन्मूलन तथा प्राथमिक शिक्षा की दिशा में व्यापक रूपरेखा तैयार करना। इस क्षेत्र में 6 से 14 वर्ष तक के आयु के सभी बच्चों को 2000 ई० तक पूरी प्राथमिक शिक्षा देने का लक्ष्य रखा गया है। गरीबी उन्मूलन तथा प्राथमिक शिक्षा का सम्बन्ध मानव संसाधन विकास को व्यापकता प्रदान करेगी।

सप्तम् शिखर सम्मेलन, ढाका, 1993

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) का सातवां शिखर सम्मेलन बांग्लादेश की राजधानी ढाका में 10-11 अप्रैल, 1993 को सम्पन्न हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता बांग्लादेश की प्रधानमंत्री बेगम खालिदा जिया ने किया।

---

1. वही.
2. वही.

इस ढाका सम्मेलन से पहले इसे दो बार स्थगित किया जा चुका था और इसके भविष्य को लेकर शंकाएँ व्यक्त की जाने लगी थीं। पहली बार 12-13 दिसम्बर को, भारत की अयोध्या घटना तथा दूसरी बार 14-15 जनवरी को भारतीय प्रधानमंत्री नरसिहाराव की सुरक्षा व्यवस्था के कारण।[1] ऐसा नहीं था कि यह संगठन पहली बार स्थगन के संकट से गुजरा हो। इसके पहले 1989 में भी इसे स्थगित किया जा चुका था। तब यह शिखर सम्मेलन कोलम्बो में आयोजित होने वाला था, किन्तु श्रीलंका के राष्ट्रपति आर० प्रेमदास ने इस संगठन को श्रीलंका में भारतीय शान्ति सेना की उपस्थिति से जोड़कर सम्पन्न होने में सफल बाधा खड़ी कर दी थी।[2] विकल्प के रूप में मालदीव को इसकी मेजबानी करनी पड़ी। 1991 का कोलम्बो सम्मेलन भी एक बार स्थगित होने के बाद ही सम्पन्न हो सका था। यद्यपि स्थगित होने का सरल कारण था भूटान के नरेश जिग्मे सिग्मे वांगचुक का अपनी घरेलू परिस्थितियों के कारण सम्मेलन में शामिल न हो पाना।[3]

इस तरह इस संगठन के झण्डे तले एकत्रित राष्ट्राध्यक्षों ने ढाका में सातवीं बार शिखर सम्मेलन किया। सार्क राष्ट्रों के सातों नेताओं ने ढाका शिखर सम्मेलन में दक्षिण एशिया में आर्थिक सहयोग के नये युग का आहवान करते हुए सद्स्य राष्ट्रों के बीच एक महाबाजार का निर्माण करने और क्षेत्र के स्वतंत्र व्यक्तित्व को उभरने का संकल्प किया। ढाका में शुरू हुए सार्क के सातवें शिखर सम्मेलन में भाग ले रहे इसके सातों सदस्य राष्ट्रों ने भौगोलिक एवं राजनीतिक बाधाओं को दर किनार करके ऐसा माहौल पैदा करने की अपील की जिसमें इस क्षेत्र के लगभग एक अरब लोगों की जिन्दगी में रोशनी पैदा हो सके, उनकी गरीबी दूर हो सके और वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें।[4]

ढाका घोषणा पत्र की प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं—

1. दक्षिण एशियाई अधिमान्य व्यापार समझौता (साप्टा) पर हस्ताक्षर, जिसके तहत् अन्तरक्षेत्रीय व्यापार के लिए सहायता एवं सहयोग को विशेप प्राथमिकता दी जायेगी।

---

1. नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 10 अप्रैल, 1993.
2. जनसत्ता, नई दिल्ली, 19 जून, 1989.
3. हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 21 दिसम्बर,1991.
4. राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 11 अप्रैल, 1993.

2. आतंकवाद से निबटने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर सक्षम विधायन के निर्माण और कार्यान्वयन को प्राथमिकता तथा आतंकवाद के सफल दमन के लिए पारस्परिक सहयोग में बढ़ोत्तरी तथा एक समन्वित कार्ययोजना की शुरुआत।

3. मादक द्रव्यों की तस्करी तथा इसके प्रभाव को रोकने के लिए नियंत्रण।

4. दक्षिण एशिया विकास फण्ड (एस० ए० डी० एफ०) पर सहमति तथा इसके अन्तर्गत तदर्थ आधार पर अन्तर्राज्यीय समूह (आई० जी० जी०) की स्थापना।

5. दक्षिण एशिया क्षेत्र के पर्यावरण की रक्षा के लिए राष्ट्रीय क्षेत्रीय द्वीपक्षीय तथा गोलार्धीय योजना की शुरआत।

6. ग्रीन हाउस प्रभाव तथा सार्वत्रिक तापन को रोकने के लिए पारस्परिक सहयोग।

7. जनसंख्या विस्फोट को रोकने के लिए जनसंख्या नीति को लागू करना।

8. स्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में उचित निवेश की घोषणा।

9. आवास समस्या को सुलझाने के प्रति निर्णय।

10. शिशु रक्षा एवं विकास को उच्चतम प्राथमिकता तथा इस विषय पर तैयार कोलम्बो घोषणा-पत्र की स्वीकृति।[1]

यह सम्मेलन अपने पूर्व के सम्मेलनों से कुछ भिन्न था, क्योंकि इस सम्मेलन के घोषणा-पत्र के मसविदे पर असहमति का स्वर पूर्व के सम्मेलनों से कुछ अधिक था। यह असहमति का स्वर मूलतः दक्षिण एशियाई अधिमान्य व्यापार समझौते (साप्टा) से सम्बन्धित था। 'साप्टा' सार्क देशों के बीच पारस्परिक व्यापार को बढ़ावा देने का समझौता है। इसके तहत अन्तरक्षेत्रीय व्यापार के विस्तार के लिए तकनीकी सहायता एवं सहयोग के लिए विशेष प्राथमिकता दी गयी है। इससे सम्बद्ध अल्पविकसित राष्ट्रों में औद्योगिक एवं कोष परियोजनाओं की सम्भावनाओं की तलाश, तैयारी तथा

---

1. राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 11-12 अप्रैल, 1993, नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 11-12 अप्रैल, 1993.

स्थापना का प्रावधान है जो सम्भवत: सहकारी आधार पर वित्त व्यवस्था करने और बदले में तैयार माल खरीदने की व्यवस्था से जुड़ी होगी। इस सन्धि के अनुसार अल्पविकसित देश अन्य राष्ट्रों में अपने नियति का विस्तार करने के लिए उत्पादन का आधार पा सकेंगे। यद्यपि साप्टा पर सन्धि तो हो गयी, परन्तु इसकी समय सीमा को लेकर सदस्य राष्ट्रों में मतभेद था। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ चाह रहे थे कि जब रियायती माल व वस्तुओं की पहचान कर ली जाय तो इस पर सन्धि की जाय, किन्तु श्रीलंका के राष्ट्रपति प्रेमदास ने इसका विरोध करते हुए यह जोर दिया कि इस सन्धि पर हस्ताक्षर इसी ढाका सम्मेलन में ही हो जाय, जिससे अन्तरक्षेत्रीय व्यापारिक सहयोग शीघ्रता से शुरू किया जा सके।[1] उल्लेखनीय है कि यह साप्टा प्रस्ताव उन्होंने ही रखा था।

पारस्परिक टकराव को टालने के लिए बीच का रास्ता स्वीकार किया गया। पहला समय काल दिसम्बर, 1993 निश्चित किया गया। यह द्विपक्षीय व्यापारिक सम्बन्धों के लिए किया गया। दूसरा बहुपक्षीय सम्बन्धों के लिए 1995 की समय सीमा तय की गयी। द्विपक्षीय स्तर पर प्रत्येक सदस्य राष्ट्र एक दूसरे को उन उत्पादों की सूची भेजेगा, जिसे वह रियायती तटकर योजना के अन्तर्गत निर्यात करना चाहता है। दूसरा देश उक्त उत्पाद से सम्बन्धित अपने देश की वर्तमान नियमावली से पहले देश को परिचित करायेगा। यह आदान प्रदान सार्क सचिवालय को भी भेजा जायेगा, जिसे अन्य सदस्य राष्ट्र दो देशों के बीच होने वाले व्यापारिक गतिविधियों से वाकिफ हो सकें। जिन उत्पादों की रियायती दरें निश्चित हो चुकी हैं, वे अन्य देशों को भी उपलब्ध होंगी। यह सब कुछ दिसम्बर, 1993 तक पूरा हो जाना है। इस द्विपक्षीय सम्बन्धों के बाद बहुपक्षीय सम्बन्धों पर समझौता होगा जो 1995 तक पूरा होगा। इस बीच प्रत्येक देश को पारस्परिक व्यापारिक अनुसूचियों से सन्तुष्ट होना होगा और यदि ऐसा होता है तो यह समझौता 1995 में प्रभावी हो जायेगा।

इस शिखर सम्मेलन में घोषणा पत्र का दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु आतंकवाद था। कमोवेश इस महाद्वीप के सभी देश किसी न किसी रूप में आतंकवाद से ग्रस्त हैं। भारत और श्रीलंका तो आतंकवाद की पीड़ा को बहुत शिद्दत से झेल रहे हैं। अत: आवश्यक था कि आतंकवाद को

---

1. दि हिन्दू, मद्रास, 12 अप्रैल, 1993, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 12 अप्रैल, 1993, मेन स्ट्रीम नई दिल्ली, मई, 1993.

नियंत्रित करने के लिए ये सारे देश एक सुर में किसी निर्णय पर पहुँचते। सभी राष्ट्राध्यक्षों ने इस बात की भी आवश्यकता महसूस की कि आतंकवाद से निपटने के लिए सभी राष्ट्रों को पारस्परिक सहयोग के आधार पर किसी कार्य योजना की शुरूआत करनी चाहिए।[1]

वास्तव में, आतंकवाद भी सार्क सम्मेलनों का एक शाश्वत् मुद्दा बन गया है। वर्ष में एक बार सभी सदस्य राष्ट्र एकत्रित होकर आतंकवाद से निपटने की कसम तो खा लेते हैं और फिर आतंकवाद उनकी कार्यसूची से लुप्त सा हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो आतंकवाद से निबटने के लिए सर्वप्रथम निर्णय 1997 में काठमाण्डू के तृतीय शिखर सम्मेलन में लिया गया था, जो इतने सालों के बाद भी आज तक क्रियान्वित न हो सका। यही नहीं आतंकवाद पर प्रतिबन्ध लगाने की बात कौन कहे, आज ये सदस्य राष्ट्र राज्य-प्रयोजित आतंकवाद को बढ़ावा देने में लिप्त हैं।

ढाका घोषणा पत्र का तीसरा महत्वपूर्ण बिन्दु मादक द्रव्यों की तस्करी से सम्बन्धित था। बढ़ते हुए मादक द्रव्य और उसके प्रभाव की चिन्ता का सहज उल्लेख इस घोषणा-पत्र में दिखाई पड़ता है, किन्तु इसको रोकने के लिए क्या कुछ किया जाना चाहिए, इसका उल्लेख कहीं नहीं दिखाई पड़ता। इसकी रोक के लिए आवश्यक है एक निश्चित प्रतिबद्ध कार्य योजना।[2] पर्यावरण क्षति ने हर स्तर पर राष्ट्रीय द्विपक्षीय, क्षेत्रीय गोलार्धीय पर्यावरण की रक्षा तथा पर्यावरण क्षरणशीलता की रोकथाम के लिए अपनी प्रतिबद्धता प्रकट की। सभी सदस्य राष्ट्र इस मुद्दे पर किसी प्रभावी भूमिका के लिए सहमत थे।[3]

ढाका घोषणा-पत्र में सभी राष्ट्रों द्वारा जनसंख्या नीति को लागू करने तथा अपने सांस्कृतिक मूल्यों तथा परम्पराओं की रक्षा करते हुए जनसंख्या विस्फेट को रोकने पर भी बल दिया। जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम के लिए सार्क नेताओं ने नेपाल द्वारा अक्टूबर या नवम्बर 1993 में महिला व परिवार स्वास्थ्य पर मन्त्री स्तर की बैठक बुलाने के प्रस्ताव का भी स्वागत किया गया।[4] 16-18

---

1. वही.
2. उपरिलिखित.
3. वही.
4. उपिरिलिखित.

सितम्बर, 1992 को कोलम्बो में बच्चों पर एक सम्मेलन (SAARC Conference on children) आयोजित किया गया था। जिसमें बच्चों के स्वास्थ्य, मृत्यु दर में कमी, बेहतर शिक्षा लैंगिक समानता (लड़का, लड़की को समान मानना) इत्यादि पर बजटीय प्रावधान के लिए तैयार करने का निर्णय कोलम्बो में ही लिया गया था। इस ढाका घोषणा-पत्र में इसे स्वीकार कर लिया गया।[1]

इसके अतिरिक्त ढाका सम्मेलन की जो विशेष उपलब्धि थी, वह दक्षिण एशियाई विकास फण्ड (एस० ए० डी० एफ०) को स्वीकृति प्रदान करना तथा इसके 'अन्तर्राज्यीय समूह' (आई० जी० जी०) की स्थापना करना था।[2] किन्तु भले ही सदस्य राष्ट्र इस तरह के किसी भी आर्थिक मंच का निर्माण कर लिये हों, समुचित रूप से इसका प्रभावी होना संभव नहीं लगता। इस समय तो बिल्कुल भी नहीं जब पूरा विश्व आर्थिक मंदी की दौर से गुजर रहा हो और सार्क देश भी इस आर्थिक मन्दी से अछूते न हों।

इस तरह ढाका सम्मेलन अपने चार्टर के अनुकूल सामाजिक आर्थिक, मुद्दों पर ही केन्द्रित रहा और इसका सम्पूर्ण विचार-विमर्श गरीबी उन्मूलन प्राथमिक व्यापार, आर्थिक वृद्धि, जनसंख्या नियंत्रण, मृत्युदर, जन्मदर आदि शब्दों के आसपास ही घूमता रहा, किन्तु राजनीति की दुष्ट प्रेत छाया ही पूरे सम्मेलन के दौरान राजनयिकों को आक्रान्त किये रही।

अष्टम् शिखर सम्मेलन, नई दिल्ली, 1995

''दक्षिण एशियाई सहयोग संघ'' (सार्क) का आठवाँ शिखर सम्लेन 2 मई से 4 मई, 1995 को भारत की राजधानी नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ। भारतीय प्रधानमंत्री ने दक्षेस के इस सम्मेलन की मेजबानी की। इस सम्मेलन में एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि की वकालत की गयी, जिसके द्वारा परमाणु शस्त्रों के प्रयोग अथवा प्रयोग की धमकी को समाप्त किया जा सके। इसके अलावा दक्षेस के इस सम्मेलन में सभी सदस्य देशों ने आतंकवाद पर चिन्ता प्रकट करते हुए इसके विरुद्ध आवाज उठाई।[3]

---

1. वही.
2. वही.
3. हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 3 मई, 1995.

सम्मेलन के बाद सर्वसम्मति से जारी दिल्ली घोषणा पत्र में कहा गया कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जहाँ रासायनिक तथा जैविक शस्त्रों की समाप्ति पर तो समझौता कर लिया गया है परन्तु परमाणु शस्त्रों की समाप्ति से सम्बन्धित ऐसा कोई कदम आज तक नहीं उठाया गया है। अत: परमाणु नि: शस्त्रीकरणकी माँग का इस सम्मेलन द्वारा समर्थन किया गया।[1]

सार्क द्वारा स्वीकृत आतंकवाद पर क्षेत्रीय समझौते को लागू करने के लिए सदस्य देशों ने उचित एवं अनिवार्य कानून निर्माण किये जाने का आवाहन किया। सदस्य देशों ने 2002 तक गरीबी को समाप्त किये जाने तथा 20वीं शताब्दी के अन्त तक निरक्षरता को समाप्त किये जाने पर बल दिया। शिखर सम्मेलन में सभी सदस्य देशों ने इस प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी और यह माना गया कि 1995 के वर्ष को गरीबी समाप्ति का सार्क वर्ष (SAARC Year of Poverty Eradication) के रूप में मनाया जाये।

सार्क के इस आठवें शिखर सम्मेलन से पूर्व 20 अपैल, 1995 को विदेश मंत्रियों का सम्मेलन हुआ था जिसमें SAPTA समझौते को लागू करके सार्क को अपनी आर्थिक भूमिका निभाने के योग्य बनाना था।

आठवें सार्क शिखर सम्मेलन के पश्चात् सार्क सदस्य देशों के सांसदों तथा स्पीकरों का एक सम्मेलन जुलाई, 1995 में सम्पन्न हुआ। इसमें यह प्रस्ताव रखा गया कि सार्क सदस्य देशों के बीच विद्यमान द्विपक्षीय झगड़ों को सुलझाने के लिए एक तन्त्र की स्थापना की जानी चाहिए परन्तु कालान्तर में इस प्रस्ताव पर कोई कार्यवाही नहीं की गयी।

सार्क देशों के सातवें शिखर सम्मेलन के दौरान किये गये SAPTA समझौते को, सभी सार्क सदस्य देशों ने दिसम्बर, 1995 तक स्वीकृति प्रदान कर दी।[2] तथा कानून रूप से यह समझौता 7 दिसम्बर, 1995 को लागू हो गया। सार्क देशों ने 226 वस्तुओं पर शुल्क घटाकर आपसी व्यापार करने का निर्णय लिया। इनमें से भारत ने 106, बांग्लादेश ने 12, मालदीव ने 17, नेपाल ने 14, पाकिस्तान ने

---

1. नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 5 मई, 1995.
2. हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 3 मई, 1995.

नवम् शिखर सम्मेलन, माले, 1997

"दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ" (सार्क) का नौवां शिखर सम्मेलन मई, 1997 में मालदीव की राजधानी माले में सम्पन्न हुआ। इस शिखर सम्मेलन में सार्क के सभी सातों सदस्य देशों के राज्य सरकार के प्रधानों ने भाग लिया। सम्मेलन में सदस्य देशों ने भारत द्वारा प्रस्तावित यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया कि सन् 2001 तक इस क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र बना दिया जाना चाहिए,[1] अनौपचारिक राजनीतिक विचार विमर्श को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जिससे तनाव कम हो सके तथा आतंकवाद और नशीले पदार्थों की तस्करी के विरुद्ध ठोस कदम उठाये जाने चाहिए।

नवें शिखर सम्मेलन के बाद जारी 12 पृष्ठों की माले घोषणा पत्र में सार्क देशों ने यह स्वीकार किया कि सभी व्यापारिक प्रतिबन्धों तथा संरचनात्मक रुकावटों की समाप्ति सन् 2005 की अपेक्षा सन् 2001 तक ही कर ली जानी चाहिए। भारतीय प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल का यह मत कि सार्क को अन्ततः एक आर्थिक समुदाय में परिवर्तित कर लिया जाना चाहिए, भी सकारात्मक सुझाव माना गया।

सभी सार्क सदस्य देशों ने यह सर्वसम्मति से माना कि अनौपचारिक विचार-विमर्श के द्वारा परस्पर विश्वास निर्माण हेतु आवश्यक कदम उठाये जा सकते हैं और इस तरह एक अच्छे पड़ोसी की धारणा को व्यावहारिक स्वरूप दिया जा सकता है जो कि परिवर्तित विश्व माहौल में आवश्यक भी है।

नौवें शिखर सम्मेलन के दौरान भारत और पाकिस्तान के प्रधानमँत्रियों द्वारा किये गये परस्पर विचार विमर्श की सभी सार्क सदस्य देशों द्वारा प्रशंसा की गयी।

इस सम्मेलन में सार्क सदस्य देशों ने यह भी स्वीकार किया था कि आतँकवाद तथा नशीली दवाओं तथा पदार्थों को रोकने के लिए सार्क क्षेत्रीय समझौते को जितनी जल्दी हो सके एक कानूनी जामा पहनाना चाहिए।

---

1. नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली, 15 मई, 1997.

इस सम्मेलन में साप्टा की प्रगति पर भी विचार विमर्श किया गया क्योंकि विगत तीन वर्षों में 6000 में से मात्र 2000 वस्तुओं के सम्बन्ध में ही परस्पर सुविधाएँ देने का निर्णय सदस्य देश ले पाये थे। अतः यह आवश्यकता महसूस की गयी कि इस प्रक्रिया को शीघ्रता पूर्वक पूर्ण किया जाना चाहिए तथा 2001 तक साफ्टा की स्थापना की जानी चाहिए।[1]

सम्मेलन में सार्क की सम्पूर्ण कार्यवाही की समुचित समीक्षा करने हेतु विशेषज्ञों का एक दल गठित किये जाने की माँग की गयी जिससे आगामी सम्भावित तथा दीर्घकालीन विकास की योजना निर्मित की जा सके। सन् 2002 तक दक्षिण एशिया में गरीबी को समाप्त किये जाने के उद्देश्य को पूर्ण करने पर भी सदस्य देशों ने बल दिया। सदस्य देशें के वित्त मंत्रियों को निर्देशित किया गया कि वे इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु की जा रही कार्यवाही को तीव्रता प्रदान करे तथा इसके लिए समय-समय पर बैठकों का आयोजन करें।

नौवें शिखर सम्मेलन के समाप्त होने पर यह आशा की गई कि दक्षिण एशिया का आर्थिक एकीकरण किया जायेगा और सन् 2001 तक साफ्टा की स्थापना कर ली जायेगी। भारत ने इस सम्मेलन में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया भारत ने सार्क सहयोग को दृढ़ बनाने के लिए और पाकिस्तान के साथ वार्ता की प्रक्रिया को दृढ़ता प्रदान करने में सक्रिय भूमिका निभाई। इस शिखर सम्मेलन में आर्थिक सहयोग के विकास के साथ-साथ सदस्य देशों में अनौपचारिक राजनीतिक विचार विमर्श के उद्देश्य को स्वीकृति प्राप्त हुई जिसे परस्पर विश्वास निर्माण की एक प्रक्रिया मानी गयी। यही नहीं इस स्वीकृति ने सार्क सहयोग एवं मित्रता के क्षेत्र को और विस्तृत आयाम प्रदान किया। इस शिखर सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षापरिषद् की स्थायी सदस्यता के लिए आवश्यक मापदण्ड के प्रश्नों पर भी विचार विमर्श हुआ और सार्क सदस्यों ने अपने-अपने द्विपक्षीय सम्बन्धों का विश्लेषण किया। सार्क देशों ने सार्क संगठन को विश्व स्तर पर उचित और आवश्यक महत्ता प्रदान करने के लिए अनिवार्य प्रक्रियाओं पर भी सहमति जतायी।

---

1. हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 17 मई, 1997

उपर्युक्त सार्क सदस्य देशों की आपसी सहमतियों की दृष्टि से सार्क का माले शिखर सम्मेलन आपसी सहमतियों की दृष्टि से सफल रहा परन्तु घोषणाओं तथा मौखिक और अनौपचारिक निर्णयों को व्यावहारत: लागू करने की समस्या ने सार्क सहयोग के उद्देश्य को सीमित बनाए रखा और आज भी ऐसी ही स्थिति दृष्टिगत है।

दशम् शिखर सम्मेलन, कोलम्बो, 1998

''दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ'' (SAARC) का दसवां शिखर सम्मेलन जुलाई, 1998 में श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो में सम्पन्न हुआ। यद्यपि यह सम्मेलन भारत और पाकिस्तान द्वारा मई, 1998 में किये गये परमाणु परीक्षणों से उत्पन्न तनापवपूर्ण माहौल में हुआ किन्तु फिर भी सार्क सदस्य देशों ने दक्षिण एशिया के आर्थिक विकास क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण, विकास के लिए सहयोग साप्टा से साफ्टा की ओर प्रगति आदि महत्वपूर्ण समझौतों से सम्बन्धित वार्ताएँ कीं। शिखर सम्मेलन के बाद एक सांझी घोषणा के अन्तर्गत यह कहा गया कि सभी परमाणु शस्त्र सम्पन्न देशों को प्रभावी नि:शस्त्रीकरण की दिशा में अग्रसर रहना चाहिए तथा दक्षिण एशिया की सहमति को एक पृथक् रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। सम्मेलन में इस मत की आलोचना की गयी कि नि: शस्त्रीकरण के प्रति प्रतिबद्धता निभाते हुए भी प्रमुख परमाणु सम्पन्न देश परमाणु शस्त्रों के भारी भण्डार बनाए हुए थे।[1] NPT तथा CTBT की संधियों से न तो परमाणु प्रसार अवरुद्ध हुआ और न ही परमाणु नि:शस्त्रीकरण की ओर कोई प्रगति ही मिली थी। यह भी कहा गया कि परमाणु अप्रसार सम्बन्धी उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु पूर्ण विश्वस्तरीय परमाणु नि:शस्त्रीकरण ही आवश्यक उपकरण साबित हो सकता है।

शिखर सम्मेलन के अन्तिम दिन प्रकाशित प्रमुख व्यक्यितों के समूह (Group of Eminent Persons) के द्वारा तैयार रिपोर्ट में कहा गया कि सार्क सहयोग अभी सीमित दायरे में ही है जिसका कारण संभवत: राजनीतिक इच्छाओं का न्यून होना है। परिणामस्वरूप सार्क अभी तक क्षेत्रीय व्यापक सहयोग का उच्च स्तर प्राप्त करने में असमर्थ सिद्ध होती रही है। सार्क सदस्य देशों द्वारा किये गये निर्णय व्यवहार में अभी लागू नहीं हुए हैं।

---

1. राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 3 अगस्त, 1998.

31 जुलाई, 1998 में प्रकाशित कोलम्बो घोषणापत्र में क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग को विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इसके अतिरिक्त यह घोषणा की गयी कि सर्वाधिक कम विकसित तथा आवश्यक विकास करने में असमर्थ राज्यों के हितों की सुरक्षा के लिए आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिए। एक आर्थिक प्रोग्राम की रूपरेखा चित्रित करने का प्रयास किया गया जिसमें निम्न बातें शामिल थीं[1]—

(i) WTO से सम्बन्धित सार्क की स्थिति को समतुल्य बनाना।

(ii) सार्क सदस्य देशों में उपक्षेत्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देना।

(iii) SAPTA पर वार्ता की अगली प्रक्रियाको गतिशील बनाना।

(iv) जिन वस्तुओं पर सक्रिय व्यापार हो रहा था उन पर शुल्कों में भारी कमी की नीति की यथास्थिति बनाये रखना।

(v) शुल्क में कमी के अन्तर्गत सार्क वस्तुओं से सम्बन्धित भेदभावपूर्ण व्यवहारों तथा गैर शुल्कीय प्रतिबन्धों को समाप्त करना।

(vi) व्यापार के मुक्त क्षेत्र की स्थापना हेतु एक निश्चित समय सीमा निर्धारण करने वाली संधि की रूपरेखा तैयार करना।

इसके अतिरिक्त यह भी घोषित किया गया कि दक्षिण एशिया की शान्ति, सुरक्षा तथा स्थिरता विश्व सुरक्षा वातावरण के सन्दर्भ में परखा जाना चाहिए।

कोलम्बो शिखर सम्मेलन में भारत तथा पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों की एक वार्ता भी हुई परन्तु कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता हासिल न हो सकी। दोनों देशों ने द्विपक्षीय वार्तालाप की प्रक्रिया को जारी रखने का निर्णय तो लिया किन्तु कश्मीर के प्रश्न पर दोनों देशों ने अपनी-अपनी स्थिति बनाये रखी और उसकी पुनरावृत्ति की।

---

1. दि टाईम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1 अगस्त, 1998.

सार्क के इस सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि विशेषज्ञों की एक ऐसी समिति का गठन किया जाय जो व्यापार के मुक्त क्षेत्र की स्थापना के लिए एक व्यापक संधि का मसविदा तैयार करेगी तथा यह आशा भी व्यक्त की गयी कि सन् 2001 तक साफ्टा की स्थापना कर ली जायेगी।

भारत ने इस शिखर सम्मेलन में सक्रिय भूमिका निभाते हुए अगस्त, 1998 को लगभग 200 वस्तुओं के सम्बन्ध में आयात प्रतिबन्धों को प्राथमिकता के आधार पर समाप्त कर दिया तथा सार्क सदस्य देशों के लिए भारतीय बाजारों में पहुँच को सरल बना दिया।

ग्यारहवाँ शिखर सम्मेलन, काठमांडू, 2002

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) का ग्यारहवाँ शिखर सम्मेलन 5-6 जनवरी, 2002 को नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में सम्पन्न हुआ। इस शिखर सम्मेलन के अन्तर्गत आतंकवादियों को मिल रही वित्तीय मदद रोकने, आतंकवादियों को हथियारों की सप्लाई को बंद करने, शरण दिये जाने के दर्जे का दुरुपयोग नहीं होने देने और व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवादी नेटवर्क से निपटने के लिए सदस्य देशों में कानून बनाने के लिए सदस्य देशों से त्वरित कदम उठाने का आवाहन किया गया है।[1]

सार्क के सभी सदस्य देशों के नेताओं से गहन विचार विमर्श के पश्चात् तैयार इस दस्तावेज में उनसे कहा गया है कि वे आतंकवाद से निपटने के लिए क्षेत्रीय आतंकवाद के समाप्ति की घोषणा को सशक्त बनाएं क्योंकि सभी रूपों में आतंकवाद के बहुत व्यापक आयाम हैं। विश्व में बढ़ते आतंकवाद और भारत पाकिस्तान तनाव के मध्य आतंकवाद के खिलाफ टक्कर लेने, आर्थिक सहयोग बढ़ाने और गरीबी दूर करने के संकल्प के साथ यह सम्मेलन समाप्त हुआ।

काठमाण्डू घोषणा पत्र में सार्क सदस्य देशों के प्रमुखों ने हर प्रकार के आतंकवाद को समाप्त करने के लिए सम्मिलित रूप से मिलजुल कर प्रयास करने की घोषणा की।

---

1. राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 7 जनवरी, 2002.

इस सम्मेलन में भारत को आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में वृहद् राजनयिक सफलता मिली।[1]

सार्क सम्मेलन के काठमाण्डू घोषणापत्र में आतंकवाद से निपटने के लिए क्षेत्र के सभी देशों से आहवान किया गया कि वे आतकवाद को प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई समर्थन न प्रदान करें, इसके लिए अपनी भूमि का प्रयोग भी न होने दें तथा आतंकवादियों को हथियार व वित्तीय सहायता या आश्रय दिये जाने पर प्रतिबन्ध लगायें।

काठमाण्डू के इस सार्क शिखर सम्मेलन में भारत-पाक एजेण्डा हावी रहा। पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ की दोस्ती का हाथ मिलाने की कूटनीति के बावजूद दोनों देशों के मध्य शिथिलता ही जाहिर हुई। भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि पाकिस्तान को अपनी कथनी और करनी में अन्तर समझते हुए भारत के खिलाफ सीमा पार से आतंकवादी गतिविधियाँ सम्पूर्ण रूप से रोकनी होगी।

सम्मेलन में सार्क सदस्य देशों द्वारा आतंकवाद से निपटने में आपसी सहयोग बढ़ाने तथा 1987 को दक्षेश आतंकवाद उन्लन संधि को सशोधित कर अधिक कारगर बनाने का फैसला किया गया। जिससे इस क्षेत्र में आतंकवादी गतिविधियों से प्रभावी तरीके से निपटा जा सके।

सम्मेलन समाप्त होने से पूर्व पास किये गये काठमांडू घोषणापत्र में गरीबी उन्मूलन तथा सार्क देशों के मध्य आर्थिक सहयोग बढ़ाने को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए इस वर्ष के अंत तक दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र (सापटा) संधि को अन्तिम रूप दिये जाने का निर्णय लिया गया है।[2]

सार्क का 12वाँ शिखर सम्मेलन जनवरी, 2003 में पाकिस्तान में होना प्रस्तावित है। भारत पाकिस्तान के मध्य सम्बन्धों में विद्यमान वैमनस्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः यह सम्मेलन प्रस्तावित तिथि पर न हो। परन्तु आशा यही की जा रही है कि द्विपक्षीय सम्बन्धों में

---

1. नवभारत टाइम्स, 9 जनवरी, 2002
2. राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 11 जनवरी, 2002.

.विद्यमान मुद्दों को परे रखकर सार्क के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह सम्मेलन निर्धारित तिथि पर ही आयाजित हों

इस प्रकार सार्क शिखर सम्मेलन तमाम अनिश्चितताओं के बावजूद अपनी सत्रह वर्ष की आयु पूरी कर चुका है। इन सम्मेलनों के विस्तृत अवलोकन से यह बात निश्चित ही लगती है कि सार्क धीरे-धीरे किन्तु एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर है। एक समय तो ऐसा लगने लगा था कि सार्क बिखर जायेगा, परन्तु सदस्य राष्ट्रों के नेताओं की सूझबूझ के कारण सम्मेलन आयोजित होना निश्चित होता रहा हैं इस पर राजनीतिक मंच पर काफी से परिवर्तन हुए हैं जैसे—पाकिस्तान, बांग्लादेश में नेतृत्व परिवर्तन। नये नेतृत्व से यह आशा बंधी है कि सहयोग का और अच्छा वातावरण बन सकेगा।

अध्याय 5

दक्षिण एशिया में भारत की विशेष भूमिका

सार्क के सदस्य राष्ट्रों मे भारत सबसे बड़ा देश है। अत: स्वाभाविक है कि वह दक्षिण एशिया क्षेत्र में अपने वर्चस्व का अनुभव करे किन्तु भारतीय संस्कृति दूसरों पर दबाव डालने की न होकर प्राचीन काल से ही सहयोग और पारिवारिक भावना वाली रही है। गुट निरपेक्ष देशों का एक महत्वपूर्ण सदस्य होने के कारण भारत ने सार्क की स्थापना में अपनी विशेष रुचि दिखाई। अत: भारत की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। यही नहीं सार्क के सुचारू रूप मे कार्य करने तथा सफलताओं एवं असफलताओं में भी भारत की अति महत्वपूर्ण भागीदारी रही है। भारत की दक्षिण एशियाई क्षेत्र में तुलनात्मक स्थिति भी सबसे भिन्न है। इस क्षेत्र में भारत की जनसंख्या (77%) क्षेत्रफल (73%) व आर्थिक उत्पादन (75%) आदि में विशेष स्थिति होने के साथ-साथ भारत ही एक ऐसा देश है जिसके इस क्षेत्र के सभी देशों (मालद्वीव को छोड़कर) मे सीमाएँ मिलती हैं। इस स्थिति से क्षेत्रीय सहयोग से सम्बन्धित तीन महत्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं। प्रथम, समस्त देशों द्वारा भारत के साथ विवाद पूर्ण सम्बन्धों की अधिक सम्भावनाएँ व्याप्त हैं जबकि उनके आपसी मतभेदों की सम्भावनाएँ अत्यन्त कम है। द्वितीय, भारत को एक समस्या वाला राष्ट्र मानने के समान कारण से ये सभी देश भारत के विरोध में एकत्र हो सकते हैं। तृतीय भारत इन देशों में होने वाले किसी भी प्रकार के सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तनों से अछूता नहीं रह सकता।[1] अत: इन्हीं कारणों से भारत व सार्क के मध्य सम्बन्ध का होना स्वाभाविक नही बल्कि अनिवार्य है।

जहाँ तक दक्षेस की स्थापना के लिए जब बांग्लादेश द्वारा प्रयास किया गया तो भारत ही वह देश था, जिसने अपनी सूझबूझ द्वारा इसको क्रमिक रूप से विकसित होने का सुझाव दिया। यद्यपि पाकिस्तान ने इस प्रस्ताव को सन्देहात्मक दृष्टि से देखा और तत्काल ऐसे सहयोग की उपयोगिता के विचार को टालने का प्रयास किया था। बांग्लादेश का प्रस्ताव प्रारम्भ में ही एक शिखर बैठक के

1 रमेश ठाकुर दी पालिटिक्स एण्ड ईकोनॉमिक्स ऑव इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, दिल्ली, 1994 पृ० 178.

पक्ष मं हल करवाना तथा जब तक यह स्थिति न आये तब तक दक्षिण-दक्षिण सहयोग को बढ़ाना आदि।[1] भारतीय विदेश नीति के ये सभी पहलू दक्षिण एशिया के राज्यों के मध्य सहयोग, विकास, आत्मनिर्भरता, प्रभुसत्ता, स्वतंत्रता एवं समानता विकसित करने में सहायक साबित हुए। इन्हीं तत्वों के कारण दक्षिण एशिया के देशों के मध्य आर्थिक सहयोग रूपी इस संगठन का जन्म हुआ।

भारत को अपने पड़ोसी देशों के प्रति दृष्टिकोण भी सार्क की स्थापना में एक प्रमुख सहयोगी तत्व रहा है। भारत की पड़ोसी देशों के प्रति विदेश नीति 1954 में प्रतिपादित पंचशील पर आधारित है। उसी प्रकार के तत्वों की स्वीकृति 'सार्क' चार्टर की प्रस्तावना में मिलती है जिसमें कहा गया है कि यह संगठन प्रमुख रूप से राज्यों द्वारा परस्पर समान, प्रभुसत्ता, क्षेत्रीय अखण्डता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, शक्ति का प्रयोग न करना, राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने तथा विवादों को शान्तिपूर्वक हल करने के सिद्धान्त पर कार्य करेगा।[2] अत: स्पष्ट है कि लगभग यही सब सिद्धान्त भारत की पड़ोसी देशों के प्रति प्रतिपादित पंचशील नीति में निहित है। अत: इस प्रकार की समानता के कारण भारत और इन देशों के सहयोग से संगठन की स्थापना हो सकी।

इन सहयोगात्मक तत्वों के होने के बावजूद भारत व इन देशों के बीच आपसी विश्वास का अभाव था। इसका प्रमुख कारण इन देशों की तुलना में भारत का आकार, उत्पादन क्षमता, सैनिक क्षमता, अर्थव्यवस्था आदि का अत्यधिक बड़ा होना था। परिणामत: इन देशों को भारत से हमेशा सुरक्षा के भय के साथ साथ किसी भी संगठन में भारत को शमिल करने से उसके वर्चस्व में वृद्धि हो जाने का भय भी बना रहता था।[3] अत: भारत द्वारा की गयी किसी भी पहल को ये सशंकित दृष्टि से देखते थे। इसलिए इस सहयोग प्रक्रिया में भारत ने अग्रिम पंक्ति के स्थान पर पिछली पंक्ति में रहकर इन गतिविधियों को पनपने दिया जिससे इन देशों के मस्तिष्क में किसी प्रकार का भारत के विषय में पूर्वाग्रह हो तो वह समाप्त हो जाए। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं था कि उनकी पहल का पक्ष न

---

1. आर० एस० यादव, "ट्रेडज इन दॉ स्टडी ऑव इंडियाज फॉरेन पालिसी" इन्टरनेशनल स्टडीज, वाल्यूम 30, अंक 1, जनवरी-मार्च, 1993, पृ० 62.
2. सतीश कुमार, संपादक, ईयरबुक ऑन इंडियाज फारेन पालिसी, 1985-86, नई दिल्ली, 1988, पृ० 9.
3. श्रीधर के० खत्री, ए डिकेड ऑव साउथ एशिया रिजनलिज्म, रिट्रोस्पेक्ट एण्ड प्रोसपेक्टस, कन्टमप्रेरी, साऊथ एशिया वाल्यूम-1 अंक 1, 1992, पृ० 1.

लिया गया हो। इसके विपरीत उनकी पहल को सक्षम आकार देने के लिए समस्त उत्तरदायित्वों का निर्वहन किया।

1945-91 तक शीतयुद्ध काल के दौरान ही नहीं बल्कि शीत युद्धोत्तर काल (1991 के बाद) में घटे घटनाक्रमों के अनुरूप भारत ने अपनी नीतियों में परिवर्तन के आधार पर इस संगठन को सार्थक ही नहीं रखा बल्कि सुदृढ़ बनाने में मदद की। निम्नांकित परिवर्तनों के आधार पर भारत ने सार्क को कार्यरत रहने में मदद दी—

(i) शीतयुद्धोत्तर काल में राज्यों में प्रजातांत्रिकरण की प्रक्रियाओं को बल मिला। पूर्वी यूरोप व पूर्व सोवियत संघ के विघटन व उसके परिणामस्वरूप उभरे नवीन देशों ने प्रजातांत्रिक पद्धति को अपनाया। दक्षिण एशिया के संदर्भ में भारत व श्रीलंका के अलावा अन्य अधिकतर देशों में गैर प्रजातांत्रिक सरकारें कार्यरत थीं। लेकिन, शीतयुद्धोत्तर काल में जब इन देशों में प्रजातांत्रिक प्रक्रियाएँ प्रारम्भ हुईं (विशेषकर, नेपाल बांग्लादेश, एवं पाकिस्तान) तो भारत द्वारा उनका स्वागत किया गया। क्योंकि भारत का दृष्टिकोण यह है कि प्रजातांत्रिक सरकारों के साथ विवादों को सहजता के साथ हल करने में मदद मिलती है इसके अतिरिक्त वर्तमान विश्व परिवर्तन के संदर्भ में भी ये सारे इकट्ठे होकर सशक्त भूमिका निभा पायेंगे।

(ii) शीतयुद्धोत्तर काल में राजनैतिक तत्वों का स्थान आर्थिक तत्वों ने ग्रहण कर लिया। इस आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया में अधिकांश देशों में विश्वकरण एवं आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी इसके अन्तर्गत राज्यों के अधीन मुक्त व्यापार व्यवस्था को बल मिला। भारत द्वारा इसी दृष्टिकोण से 1991 से इस क्षेत्र में सर्वप्रथम आर्थिक सुधारों के माध्यम से उदारीकरण की प्रक्रिया को अग्रसर किया गया। अत: दक्षिण एशिया के शेष देशों के लिए भारत ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया। भारत व अन्य देशों की इन्हीं नीतियों के परिणामस्वरूप 1993 में साफ्टा के माध्यम से इस क्षेत्र के देशों ने अपनी अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने का कार्यक्रम चलाया। जिससे अन्तत: यह क्षेत्र भी विश्व की परिवर्तन की प्रक्रिया में नहीं पिछड़ जाए। यद्यपि इन आर्थिक सुधारों व आन्तरिक रियायती व्यापार की सफलता के परिणाम आने शेष हैं, तथापि इतना अवश्य है कि सार्क भी विश्व प्रक्रिया से पृथक् नही रह सकता। अत: उसकी इस पहल से वह भी आजकल चल रहे आर्थिक बदलाव से लाभान्वित हो सकता है।

शीतयुद्धोत्तर काल में सोवियत संघ का विघटन हो जाने के बाद एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति सामने आई, वह यह थी कि विश्व शक्तियों के स्थान पर क्षेत्रीय शक्तियों के महत्व में वृद्धि होना। इस सन्दर्भ में विश्व के कई भागों में नवीन क्षेत्रीय संगठनों का उद्भव हुआ या स्थापित संगठनों का महत्व बढ़ गया। इसके फलस्वरूप उत्तरी अमेरिका में नाफ्टा, यूरोप में यूरोपीय संघ, दक्षिण पूर्व एशिया में आशियान आदि संगठनों का महत्व बढ़ गया। अतः दक्षिण एशिया में भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसलिए 1993 से इस क्षेत्र में भी साफ्टा का गठन हुआ जिसके माध्यम से इस क्षेत्र में रियायती बाजार स्थापित करके इन देशों को समृद्धिशाली एवं आत्मनिर्भर बनाना है। इस व्यवस्था में भारत ने पहल न करके, छोटे राष्ट्र की पहल पर अमल किया। इससे इन देशों में भारत के प्रति आशंकाओं को समर्थन नहीं मिला। इसके अलावा, भारत ने कई ऐसी नीतियाँ नहीं स्वीकारी जिससे किसी प्रकार की गलत धारणाओं को बढ़ावा मिले। आज भारत इसको सफल बनाने के लिए सब संभव प्रयत्न कर रहा है तथा इन देशों में विश्वास जगाकर इस प्रयत्न की सफलता के लिए प्रयासरत है।

इस प्रकार शीतयुद्धकालीन तथा उत्तर शीतयुद्ध कालीन समय में भारत निरन्तर सार्क के गठन तथा उसे सुदृढ़ बनाने में कार्यरत रहा है। अतः भारत व सार्क के मध्य मधुर सम्बन्धों की संभावनाओंको नकारा नहीं जा सकता ।

सार्क के गठन के साथ-साथ भारतीय विदेश नीति क्षेत्रिय सहयोग कें विकास हेतु अत्यन्त अनुकू ल रही है । भारत द्वारा अपनी 'दक्षिण एशियाई' नीतियों को जिस प्रकार बनाया गया उससे सार्क देशों के बीच सहयोगात्मक सम्बन्धों को बढावा मिलता है। भारतीय विदेशनीति का सर्वाधिक प्रमुख पहलू दक्षिण एशियाई क्षेत्र में शान्ति व सुरक्षा को स्थापित करना रहा है। प्रारम्भ से ही भारतीय प्रयत्न यह रहा है कि इस क्षेत्र को शीतयुद्ध की राजनीति से पृथक रखा जाये। जिससे वाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप को नियंत्रित किया जा सके इसके अलावा भारत इस क्षेत्र में किसी भी प्रकार से सैन्य संगठनों का विकास नहीं होने देना चाहता। बल्कि वह चाहता है कि दक्षिण एशियाई क्षेत्रों के बीच विवादों को द्विपक्षीय स्तर पर शान्तिपूर्ण तरीकों सें हल किया जाय। भारत की पंचशील नीति व शिमला समझौता इस बात का परिचायक है। कई बार भारत द्वारा वाह्य हस्तक्षेप को रोकने के लिए सैनिक शक्ति का प्रयोग भी किया गया है जिसके लिए इस क्षेत्र में काफी गलतफहमियां भी हुई है।

उदाहरण के लिए भारत द्वारा श्रीलंका में शान्ति सेना का भेजना अधिक सूझबूझ की नीति का परिचायक नहीं कहा जा सकता है। दूसरी तरफ मालद्वीव में सैन्य सत्ता पलटने की कार्यवाही को अनुचित नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह वहाँ की सरकार के निमन्त्रण पर किया गया। यद्यपि श्रीलंका सरकार ने भी विदेशी सहयोग मांग पर (विशेषकर अमेरिका व इजराइल से) इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। परन्तु भारतीय उतावलापन भी उतना ही अपरिपक्व एवं अदूरदर्शितापूर्ण साबित हुआ। परन्तु इन सब के बावजूद भारत का दृष्टिकोण कभी भी उपनिवेशवादी या वर्चस्व स्थापित करने वाला नहीं रहा है। इसके विपरीत भारत ने सार्क के माध्यम से भी क्षेत्रीय सुरक्षा को बनाये रखने पर जोर दिया है। इसका प्रमाण भारतीय प्रधानमंत्री स्व० राजीव गांधी के सार्क की स्थापना भाषण के अन्तर्गत मिलता है जिसमें उन्होंने अपेक्षा की थी कि सार्क को दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सुरक्षा के एक दृष्टिकोण के रूप में विकसित होना चाहिए।[1]

क्षेत्रीय स्तर पर सहयोग विकसित करने के लिए भारत ने यथासंभव प्रयास किये हैं। 'सार्क' के 12 क्षेत्रों में एकीकृत कार्यक्रमों की गतिविधियों में भारत ने सार्थक सहायता प्रदत्त की है। भारत समस्त क्षेत्रों में व्यापक पैमाने पर सहयोग में संलग्न है। इसके अलावा, भारत ने 1986 के सार्क के बंगलौर शिखर सम्मेलन में पांच मुख्य विचार रखे जो सहयोग के उद्‌भव में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुए।[2] उक्त मुख्य विचार निम्नांकित कार्यों से सम्बन्धित थे—सार्क संचार साधनों का आदान प्रदान (सेव), पर्यटन सहयोग के साथ-साथ सीमित मुद्रा आदान-प्रदान, सार्क दस्तावेज केन्द्र, सार्क वजीफा एवं पीठ की स्थापना एवं सार्क युवा ऐच्छिक कार्यक्रम।[3] दक्षिण एशिया में इन कार्यक्रमों के माध्यम से अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी देखी गयी है। भारत ने इस दिशा में अग्रिम भूमिका निभाते हुए वैज्ञानिक दस्तावेज सम्बन्धित केन्द्र की नई दिल्ली में स्थापना करके वैज्ञानिक आंकड़ों के आदान-प्रदान में सहयोग देने का वायदा पूरा किया है। इसी भाँति भारत इन देशों के साथ अन्य क्षेत्रों में भी अपने

---

1. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 1 दिसम्बर, 1985.
2. सतीश कुमार, संपादक, ईयरबुक ऑन इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, 1985-86, नई दिल्ली, 1988, पृ० 301-305.
3. श्रीधर के० खत्री, ए डिकेड ऑव साऊथ एशियन रिजनलिज्म, रिट्रोस्पेक्ट एण्ड प्रोस्पेक्टस कन्टमप्रेरी साऊथ एशिया, वाल्यूम 1, अंक 1, 1992,पृ० 16.

संसाधनों का सम्मिलित रूप से मिलकर लाभ उठाने के पक्ष में है तथा अनुसन्धान की अनेक महत्वपूर्ण जानकारियों को इन देशों के साथ बांटने के लिए राजी है।

क्षेत्रीय राजनीतिक विवादों को भी भारत द्वारा ईमानदारी से हल करने का प्रयास किया जाता रहा है। भारत ने अपने पड़ोसी देशों के साथ विवादास्पद मुद्दों को निष्कपट भाव से और शान्तिपूर्वक सुलझाने हेतु महत्वपूर्ण प्रयत्न किये हैं। श्रीलंका में शरणार्थियों की समस्या हो, या बांग्लादेश की तीन बीघा व गंगाजल बंटवारे की बात हो, भारत द्वारा प्रायः नम्र अथवा उदार नीति अपनाते हुए पड़ोसी देशों को रियायतें दी गयी हैं। जिससे उन समस्याओं का सन्तुटिदायक हल निकाला जा सके। इसके अलावा भारतीय राजनेताओं ने द्विपक्षीय राजनीतिक मुद्दों को भी सार्क के माध्यम से निष्ठापूर्वक हल करने पर बल दिया है। उदारहरणस्वरूप, माले में हुए सार्क के पांचवें शिखर सम्मेलन में बोलते हुए भारत का नेतृत्व कर रहे प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने कहा कि सार्क द्वारा अपनाया गया निम्न स्तरीय तथा दिन प्रतिदिन के सहयोग का इस क्षेत्र की साधारण जनता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है अत: सार्क की उक्ति सफलता के लिए हमें राजनयिक औपचारिकताओं से आगे बढ़ना होगा तथा दक्षिण एशियाई क्षेत्र के लोगों की समस्याओं को हलकरने का सीधा प्रयत्न करना होगा। भारत के इस सुझाव का बाद में नेपाल के प्रधानमंत्री द्वारा भी पक्ष लिया गया।

दक्षिण एशिया में भारत की भूमिका का आकलन करने का महत्वपूर्ण बिन्दु भारत व सार्क सदस्य देशों के बीच द्विपक्षीय सम्बन्धों की स्थिति है। भारत का इन देशों के साथ द्वि-पक्षीय सम्बनधों के आधार पर सार्क की सफलता हेतु प्रयत्न को आंका जा सकता है। बांग्लादेश के साथ भारत ने आर्थिक सम्बन्धों के सुधार का भरसक प्रयास किया है। उदाहरण के लिए 25 अगस्त 1991 को भारत और बांग्लादेश के मध्य दो आर्थिक समझौते सम्पन्न हुए एक समझौते के अनुसार दोनों देशों के मध्य दोहरी कर व्यवस्था को हटाया गया। दूसरे समझौते के अनुसार भारत में बांग्लादेश को 300 मिलियन रुपये का धन ऋण प्रदान किया।

1971 में बांग्लादेश को आजाद कराने में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका रही किन्तु 1975 में सैन्य सत्ता पलटने की कार्यवाही व मुजीबुर्र रहमान की हत्या के पश्चात् इन दोनों देशों के मध्य विद्यमान मित्रता का दौर समाप्त हो गया। इसके बाद 1996 में शेख हसीना के सत्ता में आने तक

अधिकांशतः समय भारत विरोधी दृष्टिकोण का रहा। इसका प्रमुख कारण तीन बीघा समस्या, शरणार्थी समस्या व फरक्का बांध व गंगा के पानी को लेकर उत्पन्न विवाद रहे हैं। तीन बीघा विवाद भारत व पाकिस्तान के विभाजन से सम्बन्धित था जिसे इन्दिरा गाँधी-मुजीबुर्र रहमान के मध्य हुए विचार विमर्श के बाद समझौते द्वारा हल कर लिया गया। इसके अधीन भारत द्वारा बांग्लादेश को डाहाग्राम व अंग्रापोता क्षेत्र को बांग्लादेश से जोड़ने के लिए उसे 180 × 85 मीटर का क्षेत्र दे दिया गया। इस समझौते को भारत के सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी तथा भारतीय जनता पार्टी ने भी बहुत विरोध किया। परन्तु अन्ततः 1990 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात् यह समझौता 26 जून, 1992 को कार्यान्वित कर दिया गया। इस प्रकार इस मुद्दे का अन्त हो गया। दोनों देशों के बीच एक अन्य विवादास्पद मुद्दा शरणार्थियों की समस्या है। 1950 व 1960 के दशक में हिन्दू बांग्लादेश से पलायन करके भारत ही नहीं आए अपितु 1971 के बाद आर्थिक लाभ अर्जित करने का कारण भी अधिक मात्रा में इन लोगों का रुख भारत देश की ओर उन्मुख हुआ। दोनों देशों के मध्य सीमा सुनिश्चित होने के कारण इस समस्या ने अधिक गम्भीर रूप धारण कर लिया। भारतीय सरकार के अनुसार 1991 में 1लाख शरणार्थी केवल दिल्ली में तथा 5 लाख 87 हजार पश्चिमी बंगाल में थे। आसाम व त्रिपुरा की सरकार के विरोध स्वरूप यह समस्या और जटिलतम हो गयी। यद्यपि दोनों देशों के मध्य 3400 किलोमीटर की सीमा रेखा पर कांटेदार तार लगाने का काम अप्रैल, 1984 में प्रारम्भ हो गया था परन्तु पूर्ण नहीं हुआ है। इसी वर्ष 26,000 शरणार्थी वापस भेज दिये गये परन्तु समस्या का निदान नहीं हुआ जो कि अभी भी विद्यमान है। भारत और बांग्लादेश के मध्य एक अन्य विवाद पानी के बंटवारे को लेकर रहा है। यह विवाद गंगानदी पर भारत द्वारा फरक्का बांध बनाने से उत्पन्न हुआ, जिसके लिए भारत का मत है कि यह बांध कलकत्ता के बन्दरगाह को बचाने की दृष्टि से बनाया गया है। 1977 में पानी के बंटवारे के सम्बन्ध में एक वर्षीय संधि दोनों देशों के मध्य सम्पन्न हुई तथा जिसका संशोधित रूप 1982 से 1988 तक लागू रहा। परन्तु उसके बाद बांग्लादेश द्वारा इसके लिए विरोध प्रकट किया गया। दिसम्बर, 1996 में बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना वाजिद की भारतीय यात्रा के समय एक नवीन समझौते के आधार पर इस विवाद को अन्ततः सुलझा लेया गया। अतः उपयुर्क्त भारत-बांग्लादेश के मध्य सम्बन्धों में उतार-चढ़ाव के बावजूद भी आज सम्बन्ध मित्रतापूर्ण है।

भारत और श्रीलंका के मध्य सम्बन्ध भी उतार चढ़ाव से परिपूर्ण रहे हैं। दोनों देशों के मध्य विवाद का मुख्य मुद्दा तमिल लोगों को लेकर रहा है। भारत और श्रीलंका के बीच इस समस्या का अन्त 1954 के कोटलेवाला समझौता, 1964 में श्रीमाओ-शास्त्री समझौता तथा 1974 के भारत-श्रीलंका संयुक्त विज्ञापती के बाद भी समस्या का अन्त नहीं हुआ। श्रीलंका में एक लम्बे अन्तराल तक निवासी रहे तमिलों पर साम्प्रदायिक अत्याचारों के कारण 1982 में तमिल राज्य के स्वतंत्र टाइगरों (एल० टी० टी० ई०) द्वारा भी स्वायत्तता व स्वशासन हेतु संघर्ष छिड़ गया। तमिलों के बड़ी संख्या में नरसंहार से 1983 में लगभग 1 लाख 50 हजार तमिलों ने भारत में प्रवेश किया। भारत और श्रीलंका के मध्य इससे सम्बन्धित कोई निर्णय न होने के कारण मुद्‌दा और जटिल होता गया। इसी दौरान भारत ने 1987 में श्रीलंकाई सरकार की इच्छा न होते हुए भी भारतीय शान्ति सेना श्रीलंका भेज दी जिसे 1990 में बिना सफलता के ही वापस लौटाना पड़ा। इसी बीच एल० टी० टी० ई० के उग्रवादियों द्वारा भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या कर दी गयी। वस्तुत: वर्ममान में दोनों देशों में नवीन सरकार के गठन से तनाव में कुछ कमी अवश्य आई है परन्तु इस जटिल समस्या का समाधान निकट भविष्य में भी संभव नहीं दिखता। यद्यपि भारत और श्रीलंका के बीच कतिपय आर्थिक सांस्कृतिक तथा आपसी आदान-प्रदान के क्षेत्रों में प्रगति हुई है।

भारत और नेपाल के सम्बन्ध 1950 की द्विपक्षीय संधि पर आधारित है। 1965 की एक अन्य संधि के अतर्गत वहाँ की सेना की भर्ती का समस्त उत्तरदायित्व भारत पर ही आ गया। भारत में जनता पार्टी के शासन काल में (1977-78) दोनों देशों के मध्य एक व्यापार की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए, जिसे 1983 में भी नवीनीकरण प्रदान किया गया। 1989 में व्यापार एवं आवागमन के मार्गों को लेकर दोनों देशों के मध्य विवाद छिड़ गया जिसे कालान्तर में हल कर लिया गया। कालान्तर में 1991 में दोनों देशों के मध्य हुए आर्थिक, राजनेताओं की सद्‌भावना यात्राओं, शारदा नदी पर बांध बनाने सम्बन्धित समझौते तथा नेपाल के राजा व रानी की 1993 में भारतीय यात्राओं से दोनों देशों के सम्बन्धों में काफी सुधार आए। वर्तमान में महाकाली नदी पर किये गये समझौते के कारण दोनों देशों के सम्बन्धों में और घनिष्ठता आई।

भारत-भूटान के सम्बन्ध दोनों देशों के मध्य हुई 1949 की संधि पर आधारित है। भारत और भूटान के बीच किसी विशेष विवाद का उदय नहीं हुआ है बल्कि दोनों के सम्बन्ध विशेष मित्रता व

घनिष्ठता वाले रहे हैं। भूटान के विकास के लिए भारत ने काफी मात्रा में ऋण व आर्थिक सहयोग भूटान को प्रदान किया है। वर्तमान संदर्भ में भी दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि भूटान की छठीं पंचवर्षीय योजना (1987-92) के कुल 9-5 बिलियन रुपये में से 3 बिलियन रुपया भारत द्वारा दिया गया था।

भारत व मालद्वीव के मध्य सम्न्ध अत्यन्त मधुर रहे हैं जो विवादों के घेरे से काफी दूर है। भारत द्वारा मालद्वीव में चिकित्सा पर्यटन तथा अन्य कई क्षेत्रों में विकास के लिए महत्वपूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान किया गया है। कुछ वर्ष पहले हुए सैन्य सत्ता पलटने की कार्यवाही के दौरान भी त्वरित सहायता करके भारत ने मालद्वीव के साथ अपने राजनैतिक एवं सांसारिक सम्बन्धों को घनिष्ठता प्रदान किया है।

दो पड़ोसी देशों के बीच विवादास्पद सम्बन्धों की लम्बी श्रृंखला वाले उदाहरणों में भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दोनों के बीच ऐतिहासिक समानता, सांस्कृतिक एकरूपता भौगोलिक सामीप्य, आर्थिक अन्त:निर्भरता के बावजूद मित्रता के बजाय दूर के पड़ोसियों वाले सम्बन्ध बने रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद से आज तक इनके सम्बन्ध, स्पर्धा, एवं युद्ध के दायरे से बाहर नहीं निकले हैं। इनके सम्बन्ध संघर्ष से शान्ति, फिर संघर्ष फिर शान्ति की तरफ तो अग्रसर हुए हैं परन्तु मित्रता व सहयोग से परे रहे हैं।[1] भारत पाकिस्तान सम्बन्धों में महत्वपूर्ण अवरोधक तत्व कश्मीर विवाद, परमाणु शस्त्र, पाकिस्तान की हथियारों की खरीद, आतंकवाद को संरक्षण आदि रहे हैं। शीतयुद्धोत्तर काल में तनाव शैथिल्य के दौर में ,जरा भी इन दोनों देशों के सम्बन्धों को प्रभावित नहीं किया जा सका। पाकिस्तान में प्रजातंत्र एवं सैनिक सत्ता की क्रमिक प्रक्रियाओं ने इन दोनों देशों के सम्बन्धों में और अवरोध पैदा किया है। महाशक्तियों के अप्रत्यक्ष समर्थन द्वारा पाकिस्तान प्राय: भारत विरोधी दृष्टिकोण अपनाता रहा है इसके अलावा अपनी नीतियों में अड़ियल रवैया अपनाया हुआ है। यही कारण है कि उसी के पहल पर भारत के साथ तीन चार बार युद्ध भी हो चुका है और परास्त भी हो चुका है। यदि कभी उसने दबाव में आकर सहयोगात्मक रुख अपनाया भी है तो उसमें

---

1. सुरेन्द्र चोपड़ा, ''पाकिस्तान : कॉनफिलक्ट एण्ड कॉपरेशन, सतीश कुमार सम्पादक ईयर बुक आन इण्डियॉज फॉरेन पालिसी, 1983-84, नई दिल्ली, 1986, पृ० 61.

भी किंचित शंका विद्यमान रही है। पाकिस्तान द्विपक्षीय मुद्दों को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर उछाल कर उसका हल चाहता है जो कि उचित नहीं है। जबकि दूसरी तरफ भारत का पाकिस्तान के प्रति व्यवहार प्रायः सहयोगात्मक ही रहा है। भारत का कहना है कि द्विपक्षीय मुद्दे आपसी विचार-विमर्श के द्वारा सुलझाये जायें इसमें किसी तीसरे देश का हस्तक्षेप कतई न हो। उदाहरण के लिए कश्मीर विवाद, भारत यह चाहता है कि यदि पाकिस्तान आन्तकवाद को संरक्षण देना बन्द कर दे तथा सीमापार घुसपैठियों को रोक ले तो वह आमने-सामने वार्ता को तैयार है। अतः भविष्य में भारत और पाकिस्तान के राजनैतिक सम्बन्धों में सुधार तथा आर्थिक सहयोग पर ही काफी हद तक सार्क की या विशेषकर नवीन रियायती आर्थिक व्यवस्था की सफलता निर्भर करेगी।

भारत के पड़ोसी देशों के साथ द्वि-पक्षीय सम्बन्धों में सुधार के लिए कतिपय बाह्य तत्वों के अन्तर्गत शीतयुद्ध का अन्त होने के कारण भारत व अन्य दक्षिण एशियाई देशों के मध्य सम्बन्धों में सुधार हुआ है क्योंकि (1) भारत अब दक्षिण एशिया में अपने सम्बन्धों को क्षेत्रीय संदर्भ में स्थापित कर सकता है न कि विश्व राजनीति के संदर्भ में, (2) शीतयुद्ध का अन्त होने से भारत अपनी सुरक्षा का खतरा मोल लिये बगैर कम खर्चीली विदेश नीति का निर्वहन कर सकता है, तथा (3) अमेरिका-पाकिस्तान सामरिक सम्बन्धों में कमी तथा भारत-चीन सम्बन्धों में सुधार से भारत अब अपने सम्बन्धों में सैनिक क्षमता के स्थान पर राजनयिक क्षमता पर निर्भर कर सकता है।

आन्तरिक तत्वों के अन्तर्गत, भारत द्वारा शीतयुद्धोत्तर युग में पड़ोसी देशों के साथ अपनाये गये विश्वसनीयता स्थापित करने वाले तत्वों पर जोर देने से अधिक निकटता से सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम हो गया है। भारत-पाकिस्तान के सम्बन्धों के संदर्भ में दोनों देशों के मध्य परमाणु ठिकानों पर युद्ध नहीं करना, सैन्य अभ्यास की कार्यवाही की सम्पूर्ण सूचना देना, निशाने बाजी के स्थानों से सम्बन्धित सूचनाओं का एक दूसरे को विनिमय, सैनिक कमाण्डरों के बीच संचार व्यवस्था का विकास करना, समानान्तर सीमा की देख-रेख करना, सैनिक विमानों द्वारा एक दूसरे के वायुमण्डल का अतिक्रमण न करना, सैन्य प्रतिनिधियों का आदान-प्रदान आदि ऐसे विश्वसनीयता विकसित करने वाले तत्वों का समावेश करके मित्रतापूर्वक सम्बन्धों को विकसित करने का प्रयत्न किया गया। श्रीलंका के साथ सम्बन्धों को लेकर शान्ति सेना की वापसी तथा शरणार्थियों के मुद्दों पर तीव्र दृष्टिकोण न अपनाकर सम्बन्धों को सामान्य करने के प्रयत्न किये गये हैं। नेपाल के साथ भी सीमा

व्यापार सन्धि के नवीनीकरण तथा अन्य आर्थिक समझौतों द्वारा सम्बन्ध अच्छे बना लिये हैं। बांग्लादेश के साथ भी नदी जल विवाद के बारे में समझौते से एक नवीन अध्याय का सूत्रपात हुआ है। भूटान व मालद्वीव के साथ मतभेद प्राय: नगण्य रहे हैं। तथा दोनों के आर्थिक सम्बन्ध उचित दिशा में विकसित हुए हैं।

इस प्रकार भारत व सार्क के अन्य सदस्य देशों के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों में सुधार एवं विश्वसनीयता बढ़ाने वाले कदमों के कारण मधुर सम्बन्धों का विकास हुआ है। यह प्रवृत्ति सार्क के लिए एक सुखद सूचना ही नहीं, बल्कि इससे मजबूत आर्थिक सम्बन्धों का ठोस आधार प्रदान करने की पूर्वशर्त प्रदान करता है।

भारत ने दक्षिण एशियाई क्षेत्र में प्राय: सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष के विकास पर बल दिया है, तथा क्षेत्रीय सहयोग में अपना विशेष योगदान अनेक दृष्टियों से किया है। ये भारत का ही प्रस्ताव था कि दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संघ के अन्तर्गत ही हमें अपनी तकनीकी सहयोग विकसित करना चाहिए।[1] इसके लिए उसने बड़े-बड़े कार्यक्रम भी बने रखे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से उसका यह विचार रहा था, कि विकास के कार्यक्रमों का लाभ इस क्षेत्र के समस्त देशों को मिलना चाहिए।

भारत ने सदैव ही दूसरों की भावनाओं का सम्मान किया है। यद्यपि सार्क की प्रस्तावना में किसी राजनीतिक सहयोग की चर्चा नहीं है।[2] किन्तु भूटान नरेश द्वारा यह संभावना व्यक्त की गयी थी कि राजनीतिक सम्बन्धों की किसी भी प्रकार उपेक्षा नहीं की जा सकती सम्भवत: विदेशमंत्रियों की अन्तिम बैठक में भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा अपने उद्घाटन भाषण में उपयुक्त सुझाव का सम्मान रखते हुए राजनीतिक समर्थन की ओर संकेत किया।

सार्क की स्थापना एवं विकास में भारत के सहयोग का दृष्टिकोण इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि उसने 1983-84 के कार्यक्रमों के संचालन के लिए सर्वाधिक 50 लाख रुपये अंशदान देने की

---

1. दि स्टेट्समेन, नई दिल्ली, 4 जून, 1983.
2. दि पैटियाट, नई दिल्ली, 4 अगस्त, 1983.

घोषणा कर दी।[1] भारत इस बात का पक्ष धर रहा है कि बगैर आर्थिक विकास किये दक्षिण एशिया के देशों का अपेक्षित विकास संभव नहीं होगा। यह भारत का ही प्रस्ताव था कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पारस्परिक व्यापार अधिक लाभकारी होगा, क्योंकि इससे परस्पर विश्वास में वृद्धि होगी, और समस्याओं के समाधान में सहायता मिलेगी।

भारत क्षेत्रीय सहयोग एवं विकास में पूरी रुचि लेता है, किन्तु सार्क आन्दोलन का अगुआ बन कर नहीं।[2] क्योंकि वह यह भलीभांति समझता है कि यदि वह आवश्यकता से अधिक उत्साह दिखलाएगा तो अन्य पड़ोसी देश उसे सन्देह की दृष्टि से देखेंगे, फिर भी इसके बावजूद वह अपनी रुचि में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आने देता। पी० वी० नरसिंहाराव ने भारत का विचार प्रस्तुत करते हुए सभापति पद से यह स्पष्ट किया था कि भारत का यह पक्का और सुदृढ़ विचार है कि सार्क की स्थापना का प्रयोग जन मानस के उत्थान के लिए किया जाय।[3] भारत ने सार्क के विकास के लिए सामूहिक स्वावलम्बन पर आधारित कार्य करने का आवाहन किया, यह कार्य औद्योगिक और व्यापारिक सहयोग द्वारा किया जा सकता है। यह ऐसा माध्यम होगा जो अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में अपना स्थान बना सकेगा, और इस बीच क्षेत्रीय समूह पर बाहरी दबाव कम किया जा सकेगा।[4]

भारत के विस्तृत आकार और क्षेत्रीय विशाल योजनाओं एवं कार्यक्रमों के आधार पर भले ही सहयोगी छोटे देश कुछ सन्देह मन में रखते हों, किन्तु भारत की सद्भावना, उसके कार्य करने के तरीके परस्पर सम्मान तथा समानता की दृष्टि एवं पड़ोसियों के प्रति सद्भाव आदि की भावनाओं ने उन्हें प्रभावित अवश्य किया है संभवत: भारत की यही विशेषता है कि जिसे ध्यान में रखकर श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने ने यह परामर्श दिया था कि भारत को गैर अधिकारिक नेता के रूप में कार्य करना है और दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संघ को सफल भी बनाना है।[5]

---

1. दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 28 जुलाई, 1983.
2. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 27 जुलाई, 1983.
3. जी० के० रेड्डी, स्ट्रेस ऑन रीजनल कोआपरेशन फॉर कलेक्टिव सेल्फ रिलायॅन्स, दि हिन्दू, मद्रास, 2 अगस्त, 1983.
4. दि पैट्रियाट, नई दिल्ली, 20 फरवरी, 1984, दि हिन्दू, मद्रास, 28 फरवरी, 1984.
5. एन० एम० खिलनानी, सार्क : 'फोरम फॉर ग्रोथ', दि ट्रिब्यून चण्डीगढ़, 20 अक्टूबर, 1986.

अत: दक्षिण एशिया में भारतीय भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उदाहरण स्वरूप वह इस क्षेत्र में आर्थिक और सैनिक शक्ति में अपने पड़ोसी देशों से कहीं अधिक शक्तिशाली है। इसके अतिरिक्त उसे इण्डोचीन युद्ध (1962) तथा भारत पाकिस्तान युद्ध 1965 तथा 1971 का कटु अनुभव हो चुका था। चूँकि मार्क का प्रस्ताव एक मुस्लिम बहुल बांग्लादेश की उत्पत्ति था, अत: भारत को इस्लामी संगठन का भय होना स्वाभाविक था। किन्तु इन सब परिस्थितियों के होते हुए भी सार्क के उद्भव में समानता की भावना के आधार पर उसने पूर्ण सहयोग किया। एक अगुआ देश बनकर नहीं, अपितु क्षेत्र के एक सामान्य सदस्य के रूप में।[1] इसके अतिरिक्त जहाँ तक इसके विकास का प्रश्न है भारत ने सामूहिक स्वावलम्बन पर आधारित कार्यक्रम करने का आवाहन किया।[2] इससे यह आशा बंधती है कि आगामी वर्षें में भारत दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

भारत आकार, स्थिति एवं शक्ति के सन्दर्भ में दक्षिण एशिया का केन्द्र-बिन्दु है। भू-राजनैतिक दृष्टि से भारत इस क्षेत्र की धुरी के रूप में जिस पर सम्पूर्ण दक्षिण एशिया की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति आधारित है।[3] परन्तु इन देशों के सन्दर्भ में भारत सैन्य दृष्टि से सुदृढ़ अवश्य है परन्तु राजनयिक व आर्थिक रूप से समन्वय स्थापित करने में असफल रहा है। सामरिक एकरूपता को लेकर आज तक इस क्षेत्र में 1947 जैसी स्थिति विद्यमान है। भारत के द्वारा 1980 के दशक में मालद्वीव, श्रीलंका व नेपाल के प्रति अपनाये गये दृष्टिकोण ने दूरियों में और अधिक वृद्धि की, बजाय घटाने के 1990 के दशक में इन देशों के प्रति विश्वसनीयता विकसित करने वाले कदम उठाये हैं, किन्तु जब तक इनके सहयोग से भारत एक सामरिक आमराय सम्पन्न दृष्टिकोण का विकास करने में सफल नहीं होता भारत व इन देशों के मध्य संशय, आशंका एवं भय का वातावरण सक्रिय रहेगा।

भारतीय विदेशी विशेषज्ञ मोहम्मद अयूब के मत में दक्षिण एशिया ने भारतीय नेतृत्व की

---

1. एच० के० दुआ, ''रीजनल रियालिटीज,'' दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 27 जुलाई, 1983.
2. दि हिन्दू, मद्रास, 18 फरवरी, 1984.
3. पीटर लियोन, साउथ एशिया एण्ड दॉ जियोस्ट्रेटेजिक ऑव दा नाईनटिन नाईनटिज, कन्टम्प्रेरी साउथ एशिया वाल्यूम 1, अंक 1, 1992, पृ० 25-39.

स्थिति की असफलता का कारण भारत की आन्तरिक राजनीति में उभरती हुई असहनशीलता है।[1] इस असहनशीलता के दो महत्वपूर्ण प्रभाव परिलक्षित हुए जिससे भारत व उसके पड़ोसी देशों के मध्य अच्छे सम्बन्ध नहीं बन सके। उनका मत है कि भारतीय राजनीति के आधार स्तम्भ तत्व धर्म निरपेक्षता, सहिष्णुता, संघात्मकता आदि रहे हैं परन्तु इन्दिरा गाँधी व राजीव गांधी के कार्यकालों के समय इनका अभाव रहा है। केन्द्रीकृत व शक्तिरहित राजनीति व केन्द्रीकृत नौकरशाही के तालमेल के कारण आन्तरिक अस्थिरता व अलगाववाद का बाहुल्य रहा है। ऐसी सिथति में समस्त आन्तरिक विवादों हेतु पड़ोसी देशों पर उत्तदायित्व थोपने के कारण भारत के साथ इन देशों के सम्बन्ध में मधुर नही रहे। इसी सन्दर्भ में एक अन्य विशेषज्ञ के मतानुसार भारत की हिन्दू राज्य के रूप में नई परिभाषा से भी इसके पड़ोसी देशों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।[2] उनका मानना है कि अयोध्या प्रकरण के बाद तथा भारत में भारतीय जनता पार्टी का राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावशाली होने से पड़ोसी देशों में भारत के प्रति भय एवं आशंका की मिलीजुली प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया।

एक अन्य विद्वान के अनुसार सार्क की सफलता के लिए शायद एक सामान्य बाह्य खतरे अथवा निर्माता दुश्मन की कमी भी काफी हद तक जिम्मेदार है।[3] उनके अनुसार यूरोप व दक्षिण पूर्व एशिया के संगठनों का एक महत्वपूर्ण निर्माता दुश्मन होने के कारण वे अधिक सफल रहे जबकि दक्षेस के सम्बन्ध में इस तरह की व्यवस्था देखने को नहीं मिलती है। उदाहरण के लिए, यूरोपीय समुदाय के संगठन की सफलता का श्रेय सोवियत साम्यवाद के, निर्माता दुश्मन को हैं तो आशियान की सफलता का श्रेय 'सीयेटो' नामक सैन्य संगठन को है। कालान्तर में सीयेटो का स्थान चीन व फिर वियतनाम ने ले लिया।[4] इस टिप्पणी में सम्भवतः तनिक सत्यता हो सकती है, लेकिन पूर्णतया नहीं। क्योंकि इस प्रकार की नकारात्क धारणा केवल किसी संगठन के प्रारम्भिक वर्षों या स्थापना हेतु तो लाभकारी साबित हो सकते हैं परन्तु यह धारणा दूरगामी एवं सुदृढ़ सहयोग के लिए

---

1. मोहम्मद अयूब, इंडिया एज ए रिजनल हेजेमोन : एक्सटर्नल अपरच्यूनिटीज एण्ड इन्टरनल कन्सटरेन्ट्स, "इन्टरनेशनल जनरल वाल्यूम 46, समर 1992, पृ० 442.
2. अतुल कोहली, डेमोक्रेसी एण्ड डिस्कन्टेन्ट : इण्डियाज ग्रोइंग क्राइसिस ऑव गवर्नेबिलिटी, न्यूयार्क, 1990.
3. रमेश ठाकुर,दॉ पालिटिक्स एण्ड ईकोनामिक्स ऑव इंडियाज फॉरेन पालिसी, दिल्ली, 1994 पृ० 178.
4. ठाकुर, पाद टिप्पणी संख्या 2, 217.

लाभकारी नहीं हो सकती। इसके लिए कम से कम क्षेत्रीय देशों के बीच कतिपय मूलभूत संदर्भों में एकरूपता होना अनिवार्य है। उन देशों के मध्य साझे हितों के अभाव में उन्हें अधिक समय तक एकत्र रखना असंभव है। न ही उनके बीच गम्भीर विवादों के चलते निर्माता दुश्मन होने के बाद भी सहयोग स्थापित नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त समस्याओं के होने के बावजूद भारत एवं सार्क सदस्य देशों के मध्य मधुर सम्बन्धों की व्यापक संभावनाएँ दृष्टिगत हैं। दक्षिण एशिया के देशों के बीच आर्थिक मुद्दों के अलावा कई ऐसे अविवादपूर्ण विषय है जहाँ ये देश पूर्णतः सहयोग दिखा सकते हैं। मुख्यतः आतंकवाद नियंत्रण, नशीली दवाओं की तस्करी, पर्यावरण से सम्बन्धित समन्वय, पर्यटन का विकास, बाढ़, नियंत्रण, गैर-कानूनी शरणार्थी नियंत्रण आदि क्षेत्रों में बगैर किसी दबाव के समानता के आधार पर व्यापक सहयोग की संभावनाएँ उपलब्ध हैं शीतयुद्धोत्तर युग में इन सम्भावनाओं ने और अधिक वृद्धि हुई है। क्योंकि इस काल में तनाव में कमी, रक्षा खर्च में कटौती, बाह्य हस्तक्षेप में अल्पता, राजनैतिक द्वन्द्विताओं का अन्त, विचारधारा का विघटन आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ समक्ष आई हैं जिससे विश्व स्तर पर व्यापक तनाव शिथिलता आई है जिससे लाभान्वित होकर ये देश भी परस्पर सहयोग की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

भारतीय सन्दर्भ में कतिपय सकारात्मक परिवर्तनों के कारण सार्क के साथ सम्बन्ध सुधारने की आशाएँ बढ़ी हैं। सर्वप्रथम 1990 के दशक में भारत ने सामान्यतः अपने पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध सुधार कर विश्वसनीयता को विकसित करने में सहयोगी तत्वों की वृद्धि की है। द्वितीय सार्क के संगठनात्मक ढांचे की स्थापना तथा साफ्टा जैसी आर्थिक संस्था की पहल के कारण उदार व मुक्त व्यापार की व्यापक संभावनाओं का जन्म हुआ है। तृतीय दक्षिण एशिया के अन्य देशों को भी यह समझना होगा कि भारत में अस्थिरता व कमजोरी के दुस्प्रभाव इस संगठन पर पड़ेंगे। अतः भारत के साथ अत्यधिक वैमनस्य के सम्बन्धों को त्यागना होगा। संभवतः यह धारणा अब इन छोटे राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत कर ली गयी है।

परन्तु उपर्युक्त सम्भावनाओं को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए इन देशों के बीच दृष्टिकोणों में परिवर्तन लाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ-साथ सार्क द्वारा एक वृहत व्यवस्था

पर, आधारित प्रणाली को विकसित करना होगा। इस संगठन को नये विचारों के आधार पर आन्तरिक सुदृढ़ता प्रदान करना होगा। इसके अन्तर्गत कुछ नवीन समुदायों में विशेष रूप से बौद्धिक समूह व व्यापारिक समूह विशेषतः महत्वपूर्ण हो सकते हैं। भारत को भी सार्क की इन गतिविधियों में भाग लेने के अलावा अपनी विश्वसनीयता में वृद्धि करने वाले कदमों की प्रक्रिया को जारी रखते हुए द्विपक्षीय सम्बन्धों को मजबूत करना होगा। क्योंकि इस प्रकार के सम्बन्धों के आधार पर ही दोनों के बीच उपस्थित गलत धारणाओं का अन्त होकर दक्षिण एशिया में एक कुशल व सशक्त क्षेत्रीय व्यवस्था का विकास होगा।[1]

---

1. श्रीधर के० खत्री, ए डिकेड ऑव साऊथ एशियन रिजनलिज्म, रिट्रोस्पेक्ट एण्ड प्रोस्पेक्टस कन्टमप्रेरी साऊथ एशिया, वाल्यूम 1, अंक 1, 1992, पृ० 11-16.

निष्कर्ष एवं सुझाव

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) अपने पूरे अस्तित्व के साथ दिसम्बर, 1985 में प्रथम शिखर सम्मेलन (ढाका) में आया। अपने प्रारम्भिक चरण में सार्क दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग (SARC) के नाम से जाना गया था। यह नाम इसे नई दिल्ली, 1-2 अगस्त, 1983 में हुई विदेश मंत्रियों की बैठक में दिया गया था, और जिसे 5 दिसम्बर, 1985 को ढाका में हुई विदेश मंत्रियों की बैठक में दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) में परिवर्तित करने की संस्तुति की गयी, जिसे बाद के शिखर बैठक में स्वीकृति मिल गई।[1] इन दोनों नामों का मौलिक अन्तर संगठन शब्द से स्पष्ट हो जाता है।

सार्क ने निरन्तर अपनी प्रगति में उत्तरोत्तर शक्तिशाली बनने का प्रयत्न किया। कुछ लोगों के अनुसार सार्क क्षेत्रीय सहयोग में ही अधिक विश्वास रखता है, क्योंकि वे समान इतिहास और संस्कृति से जुड़े हुए हैं, परन्तु सदस्य देशों के मध्य उनकी आर्थिक और सैनिक शक्तियाँ मतभेद उत्पन्न करती हैं। विशेषज्ञों की दृष्टि में क्षेत्र का यह राजनीतिक मतभेद आर्थिक और तकनीकी सहयोग द्वारा आसानी से दूर किया जा सकता है। सार्क निर्माताओं ने आरम्भ से ही राजनीति को सार्क से दूर रखने का प्रयास किया, जिससे क्षेत्रीय सहयोग की वृद्धि में कोई कठिनाई न हो और क्षेत्रीय सहयोग हेतु समान स्वीकृति सिद्धान्तों को आधार बनाया। किन्तु ध्यातव्य है कि राजनीतिक इच्छा के बगैर कोई सहयोग सम्भव नहीं है। उदाहरणस्वरूप बंगलौर शिखर बैठक (द्वितीय) तक भारत श्रीलंका तथा भारत पाकिस्तान के मध्य द्विपक्षीय सम्बन्ध अत्यन्त वैमनस्यपूर्ण हो चुके थे, किन्तु भारत और श्रीलंका की आन्तरिक राजनीतिक इच्छा ने ही स्थिति को सम्भाला और आगे की सार्क सम्मेलनों में श्रीलंका ने हिस्सा लिया। दक्षिण एशिया के इस वातावरण से सार्क के विकास को तीन रूपों में आंका जा सकता है—

(i) सार्क ने बड़ी चुनौतियों का सामना करते हुए अपने अस्तित्व को बनाए रखा।

---

1. सार्क पर्सपेक्टिव, एडीटेड एण्ड पब्लिस्ड बाई सेक्रेटिएट ऑफ दि साउथ एशियन एसोसियेशन फॉर रीजनल कोआपरेशन, काठमाण्डू, मई, 1987, पृ० 19.

(ii) सातों सार्क सदस्य देशों में समान इतिहास तथा समान संस्तुति की भावना ने आपसी विवादों के होते हुए पारस्परिक सहयोग बनाए रखा।

(iii) संकटकालीन परिस्थितियों का सामना करते हुए सार्क अग्रसर होता रहा।[1]

सार्क के अब तक ग्यारह शिखर सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं। इन सम्मेलनों में सार्क को क्या अर्जित हुआ, तथा सहयोग का क्षेत्र किन-किन रूपों में सामने आया, इसका एक सिंहावलोकन आवश्यक है।

सर्वप्रथम कोलम्बो में 31 अगस्त से 2 सितम्बर, 1981 तक हुई पूर्ण समिति की बैठक में विदेश सचिवों के विचारार्थ तेरह सहयोग के कार्यक्षेत्रों का प्रस्ताव किया गया।[2] विदेश सचिवों तथा पूर्ण समिति ने विभिन्न अन्तरालों के साथ काठमाण्डू, इस्लामाबाद, कोलम्बो तथा ढाका में अपनी विभिन्न बैठकों में पूर्व निर्धारित तेरह कार्य क्षेत्रों में से, नौ कार्यक्षेत्रों को सहयोग के लिए चुना गया, जिसे 1983 में दिल्ली में हुई विदेश मंत्रियों की बैठक में औपचारिक स्वीकृति मिल गयी। ये नौ कार्यक्षेत्र इस प्रकार थे—(i) कृषि,(ii) ग्रामीणविकास, (iii) मौसम विज्ञान, (iv) संचार व्यवस्था, (v) वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहयोग, (vi) स्वास्थ्य एवं जनसंख्या, (vii) परिवहन व्यवस्था, (viii) डॉक सेवायें तथा (ix) खेल कूद कला तथा सांस्कृतिक सहयोग। इन समस्त कार्यक्षेत्रों को ढाका शिखर बैठक में स्वीकारोक्ति प्राप्त हो गई तथा उनके कार्यान्वयन हेतु योजनायें बनाई गईं। इसी क्रम में बंगलौर, काठमाण्डू तथा इस्लामाबाद शिखर बैठक तक कार्य क्षेत्रों की संख्या बढ़कर सत्रह तक पहुँच गयी। कार्यक्षेत्रों की बढ़ती हुई संख्या तथा सीमित साधनों के कारण संख्या वृद्धि पर रोक लगाकर केवल उन्हीं कार्यक्षेत्रों पर कार्य करने का निर्णय लिया गया जो क्षेत्र के लिए विशेष उपयोगी तथा जनजीवन के स्तर को ऊंचा उठाने वाले हों।

---

1. वी० कनेसलिंगम, 'स्ट्रेन्थिनिंग ऐण्ड कनसोलीडेटिंग दि सार्क प्रोसेस दि टास्क अहेड, दि मार्गा, मार्गा इन्सटीट्यूट कोलम्बो, श्रीलंका, 1988.
2. (i) सार्क मौसम केन्द्र, (ii) सार्क कृषि केन्द्र, (iii) भूमि सुधार, (iv) प्रानि स्रोत संग्रह, (v) तपेदिक निवारण, (vi) मलेलिया केन्द्र, (vii) डॉक सेवा, (viii) तकनीकि विकास, (ix) सॉफटवेयर केन्द्र, (x) परिवहन प्रशिक्षण, (xi) शिल्पकला केन्द्र, (xii) सार्क जहाजरानी समिति, (xiii) सार्क जहाज चालक परिषद, स्रोत—वी० पी० श्रेष्ठ, सार्क ऐन इकनॉमिक पर्सपेक्टिव सी० एन० ए० एस०, काठमाण्डू, 1988, पृ० 26.

बंगलौर शिखर बैठक में सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित आतंकवाद की समस्या पर नियंत्रण करने तथा नशीली दवाओं के प्रयोग पर रोक लगाने एवं बालकों एवं महिलाओं के विकास एवं स्वास्थ्य पर ध्यान देने सम्बन्धित प्रस्तावों को इस बैठक की विशेष उपलब्धि कहा जा सकता है।

जनवरी, 1987 में काठमाण्डू में सार्क सचिवालय की स्थापना की जा चुकी थी, तथा नवम्बर, 1987 में काठमाण्डू के शिखर बैठक में इसके पूर्व के निर्णित विषयों पर विचार विमर्श के साथ जो नवीन उपलब्धि सार्क के साथ जुड़ी, वह थी दक्षिण एशिया क्षेत्र के लिए खाद्य पदार्थों का भण्डारण जिसे क्षेत्रीय सहयोग के विकास में एवं परस्पर विश्वास के स्थायित्व में अगला कदम कहा जा सकता है।

इस्लामाबाद शिखर सम्मेलन से प्राप्त जो विशेष उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं, उनमें मादक द्रव्यों से होने वाले खतरों एवं इनकी तस्करी पर नियंत्रण, सैन्य खर्चों में कटौती, किसी भी सदस्य देश में उग्रवादियों या भाड़े के सैनिकों से निपटने के सार्थक प्रयास, मानव संसाधनों के विकास, क्षेत्र को परमाणु अस्त्र रहित बनाने सम्बन्धी संकल्प तथा दक्षिण एशिया सम्बन्धी सांस्कृतिक उत्सव के आयोजन की स्वीकृति आदि शामिल थे।

वस्तुतः इस शिखर सम्मेलन की सफलता में अनुकूल परिस्थितियों तथा क्षेत्र के दो बड़े देशो, भारत और पाकिस्तान के बीच हुई सौहार्दपूर्ण वार्तालाप को विशेष महत्व दिया जा सकता है क्योंकि इससे दोनों देशों के मध्य न केवल पारस्परिक मधुर सम्बन्ध बनाने में सफलता प्राप्त हुई, अपितु दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन के मूल तत्व, पारस्परिक सहयोग की वृद्धि में भी एक कड़ी जुई गई, जिससे इस संगठन को और दृढ़ता प्राप्त हुई।

माले में हुई सम्मेलन की पांचवीं बेठक में शामिल प्रमुख मतों में उच्च तकनीकी क्षेत्र में सहयोग बढ़ाना, जैव विज्ञान, तथा जर्म प्लाज्म बैंक की स्थापना एवं क्षेत्रीय योजनाओं के लिए एक क्षेत्रीय कोश की व्यवस्था, कुटीर उद्योग तथा हस्तशिल्प के विकास, पर्यटन के विकास हेतु बिना वीसा के सदस्य देशों के मध्य आवागमन की सुविधा, मानव संसाधन विकास, क्षय रोग नियंत्रण एवं क्षेत्रीय दस्तावेज केन्द्रों की स्थापना आदि उल्लेखनीय है। इसके अलावा क्षेत्रीय विकास एवं जनकल्याण के लिए वर्ष 1991 आवास वर्ष,1992 को पर्यावरण वर्ष तथा 1993 को विकलांग निवारण

वर्ष के रूप में मनाने के निर्णय को सार्क सदस्यों के बीच बढ़ते हुए सहयोग का अग्रिम चरण कहा जा सकता है। इसी प्रकार शताब्दी के अन्तिम दशक को महिला दशक के रूप में मनाने और उनके विरुद्ध अभियान छेड़ने के निर्णय को भी माले शिखर सम्मेलन की सार्थक सफलता के रूप में देखा जा सकता है।

आपातकालीन परिस्थितियों के दौरान उपयोग में लाये जाने, खाद्य सामग्री के सुरक्षित भण्डार की व्यवस्था सार्क की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिसका उल्लेख सार्क चार्टर की धारा 3 में किया गया है। इस व्यवस्था के संचालन हेतु एक सार्क फूड सिक्योरिटी बोर्ड की स्थापना की गयी, जो प्रत्येक सदस्य देश मिलाकर निर्मित हुई है। इस खाद्य भण्डारण हेतु सदस्य देशों द्वारा जिस मात्रा में खाद्यान्न देने की व्यवस्था को गयी उसे निम्नांकित तालिका द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।[1]

Share of SAARC Food Security Reserve

Country	Quantity in Mt	Percentage Share
Bangaladesh	21,000	10.55
Bhutan	180	0.09
India	153,200	76.60
Maldives	20	0.01
Nepal	3,600	1.80
Pakistan	19,100	9.55
Srilanka	2,800	1.40
Total	200,000	100.00

Source : B. P. Shrestha, *SAARC an Economic Perspective*, CNAS, Kathmandu, 1988, p. 25)

खाद्य भण्डारण के अतिरिक्त सार्क की उपलब्धियों में बच्चों के स्वास्थ्य एवं विकास तथा महिलाओं के स्तर को उच्च करने एवं उन्हें सार्क के क्रियाकलापों में सहभागी बनाने के प्रयास को क्षेत्र के विकास हेतु एक अच्छा प्रयास किया गया और 1989 तथा 1990 वर्ष में इस कार्य को पूर्ण करने का दृढ़ निश्चय किया गया। भारत में बालिका वर्ष के अवसर पर 1996 में बालिकाओं को नि: शुल्क यात्रा सुविधा देने का विचार किया गया।

दूर संचार व्यवस्था के अन्तर्गत भारत द्वारा सम्बन्धित विषयों पर प्रसारण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। इसी प्रकार नेपाल में युवा काय्रक्रम के अन्तर्गत शैक्षिक केन्द्र खोलकर कार्यक्रम का संचालन प्रारम्भ कर दिया गया है।

भारत के प्रयासों पर अन्तर व्यापार पर बल दिया गया, जिससे कि क्षेत्र का आर्थिक विकास तीव्रता से हो सके, और क्षेत्रीय सहयोग आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ सके। प्रधानमत्री राजीव गांधी द्वारा दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग के अन्तर्गत सांस्कृतिक आयोजनों पर बल दिया और भारत में हुए अपना उत्सव की तरह सार्क का क्षेत्रीय महोत्सव मनाये जाने का अनुरोध किया, जिसे सभी देशों द्वारा सहर्ष स्वीकृति प्राप्त हो गयी।

सार्क के सदस्य देशों के मध्य सूचनाओं के विनिमय के लिए तथा शीघ्र सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य से सातों सदस्य देशों की राजधानियों को हवाई मार्ग से जोड़ दिया गया।

दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग के विकास में भारत-श्रीलंका समझौता, फरक्का समस्या का समाधान (बांग्लादेश के साथ) नेपाल के साथ सम्बन्ध सुधार, भूटान को बड़ी मात्रा में आर्थिक सहयोग तथा मालद्वीव में विदेशी सैनिक विद्रोह के दौरान भारत द्वारा दी गयी सफल सहायता आदि उपलब्धियों को भुलाया नहीं जा सकता।

1995 में सार्क देशों ने दक्षिण एशियाई क्षेत्र के लिए एक दक्षिण एशियाई वरेण्य व्यापार समझौता (SAPTA) संपन्न किया। वरेण्य व्यापार से यह तात्पय्र है कि किसी एक देश के साथ, अन्य की तुलना में, व्यापार को वरीयता देना, या उसके साथ व्यापार करना पसंद करना। दक्षिण एशिया में वरेण्य व्यापार समझोता (SAPTA) 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक में दक्षिण एशिया के मुक्त व्यापार क्षेत्र बन जाने की आशा में किया गया था।

दक्षिण एशियाई वरेण्य व्यापार समझौते पर, 11 अप्रैल, 1993 को ढाका शिखर सम्मेलन के अवसर पर सदस्य, देशों के मंत्रियों ने हस्ताक्षर किये थे। वरेण्य व्यापार समझौते (SAPTA) के लिए पहल दिसम्बर, 1991 के कोलम्बो शिखर सम्मेलन में की गयी थी। इस समझौते को ऐसी वृहद व्यवस्था कहा गया जिसके द्वारा क्षेत्र के भीतर शनै-शनैः आर्थिक उदारीकरण की व्यवस्था हो सकेगी। इसके अर्न्तगत समयान्तराल पर व्यापार से सम्बन्धित वार्ता का प्रावधान है जिससे व्यापार एवं सीमा शुल्क में रियायतों की व्यवसथा की जा सके। वरेण्य समझौते (SAPTA) में सार्क क्षेत्र के सर्वाधिक कम विकसित देशों के पक्ष में व्यापार को बढ़ावा देने का प्रावधान है।

1994 में काठमाण्डू में हुई एक क्षेत्रीय कार्य-गोष्ठी में साप्टा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—(क) साप्टा को प्रभावी बनाने हेतु उन उत्पादों पर रियायतें दी जाएं जिनके व्यापार की अधिक सामर्थ्य हो। (ख) कुछ सामान्य रियायतों पर सर्वसम्मति हो, (ग) वरीयता के आधार पर सहयोग के लिए, साप्टा की संरचना में सेवाओं को भी सम्मिलित किया जाए आदि।

दक्षिण एशियाई वरेण्य व्यापार समझौते की औपचारिकाताओं को पूर्ण करने हेतु सातों सार्क सदस्य देशों के विदेश सचिवों तथा विदेश मंत्रियों की दिसम्बर, 1995 में नई दिल्ली में हुई बैठक में साप्टा की विस्तृत कार्यविधि निर्धारण करने से सम्बन्धित समस्त औपचारिकताएँ पूर्ण कर ली गयीं। इसके अतिरिक्त सदस्य देशों द्वारा इस समझौते के अनुमोदन सम्बन्धी प्रपत्र के स्थान पर मुक्त व्यापार क्षेत्र (SAFTA) की स्थापना के लिए शीघ्र ही वार्ता आरम्भ करने पर बल दिया गया जिससे 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुक्त व्यापार की नींव रखी जा सके। इसका अर्थ होगा कि ऐफ्टा (EFTA) और नैफ्टा (NAFTA) की भांति दक्षिण एशिया में भी करों और सीमा शुल्क के बंधनों से रहित पारस्परिक व्यापार सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार दक्षिण एशिया में वस्तुओं का क्रय-विक्रय कहीं भी सरलता से संभव हो सकेगा।

सार्क द्वारा सिद्धान्त रूप में मुक्त व्यापार क्षेत्र स्वीकार कर लिया गया है, परन्तु उसके लिए कुछ समस्याओं का समाधान करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। प्रथम, व्यापार संतुलन को ठीक करना, द्वितीय सीमा शुल्क के अतिरिक्त आवागमन के मार्ग की बाधाओं जैसी रुकावटों को दूर करने से सम्बद्ध है। साप्टा से साफ्टा तक का मार्ग तय करने के लिए कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं जैसे

पाकिस्तान द्वारा भारत को 'सर्वाधिक वरीय राष्ट्र' का दर्जा देने को सहमत न होना, छाटे देशों को भी व्यापार के समान अवसर उपलब्ध करना, आदि।

भारत द्वारा 1996 में नेपाल को अनेक व्यापारिक सुविधाएँ देने के निर्णय से यह आशा की गयी कि, दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र (साफ्टा) स्थापित करने में मदद मिलेगी। ये सुंविधाएँ देने का उद्देश्य भारत-नेपाल व्यापार की वृद्धि और नेपाल में संयुक्त पूँजी निवेश को प्रोत्साहित करना था। परिणामस्वरूप मुक्त व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा।

दक्षिण एशियाई वरेण्य व्यापार को मुक्त व्यापार में सन् 2000 से 2005 ई० की अवधि में परिवर्तित करने का सिद्धान्त रूप में पूर्व निर्णय को व्यावहारिक रूप 1997 के सार्क के माले शिखर सम्मेलन में दिया गया। यह औपचारिक रूप से तय किया गया कि सन् 2001 तक दक्षिण एशिया का मुक्त व्यापार क्षेत्र स्थापित कर लिया जायेगा।

1991 के कोलम्बो सार्क शिखर सम्मेलन में एक दक्षिण एक्षिण एशियाई विकास कोष (SADF) स्थापित करने का विचार रखा गया था जिसका उद्देश्य यह था कि सार्क सदस्य देशों की विकास परियोजनाओं में क्षेत्रीय स्तर पर पूंजी निवेश को प्रोत्साहन दिया जा सके। इस बात की भी आवश्यकता थी कि पूँजी निवेश सर्वेक्षण किया जाए ताकि उत्पादन क्षमता और निर्यात योग्य वस्तुओं की पहचान हो सके। इस प्रस्ताव को भी 1995 के ही नई दिल्ली शिखर सम्मेलन में सभी सदस्य देशों द्वारा स्वीकार कर लिया गया परन्तु औपचारिक स्थापना जून 1996 में की गयी। विकास कोश का मुख्यालय और सचिवालय ढाका में स्थापित किया गया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सार्क अपने क्षेत्रीय विकास में एक प्रगतिशील दिशा की ओर सतत् रूप से अग्रसर है। यदि इसकी उपलब्धियों पर सामूहिक रूप से सिहावलोकन किया जाय तो यह भी ज्ञात होगा कि इस संगठन ने अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अपना महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली स्थान बना लिया है, और महाशक्तियाँ अब इसके अस्तित्व की उपेक्षा नहीं कर सकतीं, सार्क अपनी बाल्यावस्था और किशोरावस्था को पार करता हुआ वयस्क वनने की ओर अग्रसर है।

सार्क के भविष्य की ओर जब दृष्टिपात करें तो सदस्य राज्यों के बीच द्विपक्षीय समस्यायें सामने आ जाती हैं। यह स्पष्ट है कि द्विपक्षीय सम्बन्ध और क्षेत्रीयता में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक

के बिना दूसरे की व्यावहारिकता संभव नहीं।[1] इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए परस्पर वार्तालाप एवं मेल मिलाप ही सर्वोत्तम उपाय है। ऐसा शिखर बैठकों में राष्ट्राध्यक्षों की परस्पर बातचीत में देखा जा चुका है। ऐसा शिखर बैठकों में राष्ट्राध्यक्षों की परस्पर बातचीत में देखा जा चुका हैं। सार्क से सम्बन्धित एक मुख्य बात यह है कि क्षेत्र के अन्दर ही देशों की समान समस्याओं के समाधान के लिए ही उसकी स्थापना की गयी है। यह संगठन न तो मात्र राजनीतिक सहयोग के लिए है और न मात्र आर्थिक सहयोग के लिए ही, अपितु सार्क का ढांचा एक खुला हुआ एवं असीमित उद्देश्यों वाला है, और भविष्य में भी इसके उद्देश्य सीमित नहीं रहेंगे। इसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सुरक्षात्मक तथा सभी प्रकार के सहयोग के लिए द्वार खुले हैं। विशेपता यह है कि प्रत्येक पक्ष पर सभी सातों सदस्य देशों का एकमत होना अनिवार्य है। अत: कहा जा सकता है कि सार्क के विकास के लिए आर्थिक सहयोग का उद्देश्य सर्वप्रमुख होना चाहिए, और उससे होने वाले लाभ का वितरण विकसित एवं विकास कर रहे देशों पर समान रूप से लागू होना चाहिए। इसके लिए बाजारों का विलयन व्यापार को प्रोत्साहित करने में सहायक हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि सभी सदस्य राज्य मिलकर यह निश्चय करें कि बाह्य देशों द्वारा निर्मित वस्तु इस क्षेत्र में बिकने न पाये। बल्कि कुछ चुने हुए सामानों के लिए एक सामान बाजार की व्यवस्था उचित होगी। दक्षिण एशिया के सभी सदस्य देश सामान्यत: कृषि प्रधान देश हैं, और अधिकांशत: यही जीविका का साधन है। यदि कृषि में सुधार होता है तो आर्थिक जीवन में भी सुधार सम्भव है, किन्तु कृषि की प्रगति की भी एक सीमा है, क्योंकि वह प्राकृतिक वर्षा पर निर्भर करती है। अत: यदि व्यापार के माध्यम से विकास किया जाय तो निर्यात का महत्व बढ़ जाता है। निर्यात के अभाव में विदेशी मुद्रा अर्जित नही की जा सकती और ऐसी स्थिति में विदेशी मुद्रा के द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुएँ नहीं मिल सकतीं। ध्यान यह रखना है कि विदेशी सहायता दक्षिण एशिया क्षेत्र में औद्योगीकरण का स्थान नहीं ले सकती। दूसरे यह भी सत्य है कि विदेशी सहायता बिना शर्त के प्राप्त नहीं होती। वह आर्थिक और राजनीतिक बन्धनों से बंधी रहती है, परिणाम स्वरूप वह पर निर्भरता की ओर ले जाती है। दक्षिण एशियाई देशों का लम्बे समय तक उपनिवेश देश के रूप में रहने के

कारण यहाँ का विकास भी अतयन्त सीमित हो पाया है। सभी सदस्य देश प्राय: एक समान उत्पादन करते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता के कारण इनका मूल्य कम मिलता है। अत: क्षेत्रीय विकास के लिए यह आवश्यक है कि क्षेत्र के अन्दर ही आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन किया जाय और उसके कुछ अंश का निर्यात करके आर्थिक स्थिति में सुधार किया जाय दक्षिण एशिया के विकास में सामूहिक शक्ति की समस्याओं का मुकाबला कर सकती है। सामूहिक सहमति से किया गया खाद्य पदार्थों का भण्डारण इसका एक ज्वलन्त प्रमाण है। क्षेत्रीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह कम होते हुए भी सहयोग की दृष्टि से बहुत बड़ी सफलता है।[1]

सार्क के सदस्य देशों को मिलकर इस क्षेत्र में ऐसे उद्योगों की स्थापना करनी चाहिए जो क्षेत्र के लिए लाभदायक हों और स्वतन्त्र रूप से साधन सम्पन्न न होने के कारण स्थापित न किये जा सकते हों। यही भी आवश्यक है कि उत्पादित सामान आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने वाले हों। इस क्षेत्र के सदस्य देश पश्चिमी देशों पर निर्भर न रहकर इन्हीं उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ खरीदें। कम खर्चे में लगाये जाने वाले उद्योगों को सदस्य राज्यों पर छोड़ दिया जाय, यह ध्यान रखते हुए कि उन्हें कच्चा माल पास में ही उपलब्ध हो जायेगा। इस प्रकार आर्थिक सहयोग बढ़ने के साथ-साथ पारस्परिक विश्वास में भी वृद्धि होगी।

प्राय: यह देखने को मिलता है कि सार्क के मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय सहयोग को महत्व देते हुए भी सदस्य देश अपने-अपने प्रभाव को बढ़ाने की होड़ में सार्क के नियमों तथा सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य करते हैं, जिससे सार्क अपने उद्देश्यों से दूर हो जाता है। भारत का उद्देश्य सदैव ही यह रहा है कि इस क्षेत्र को शक्तिशाली बनाने के लिए बाहरी शक्तियों को दूर रखना आवश्यक होगा, जिससे क्षेत्र की पहचान बनाई जा सके और क्षेत्र के लोग अपनी समस्याओं को सार्क की छत्रछाया में बैठकर हल कर सकें सार्क के लिए यह आवश्यक है कि क्षेत्रीय सहयोग अपनी ही शक्ति द्वारा बढ़ाया जाय, न कि पराश्रित होकर। क्षेत्रीय समस्याओं के हल के लिए सदस्य राज्यों में राजनीतिक इच्छा का होना। सार्क के भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए दूरदृष्टि का होना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे कि नये अवसरों के निर्माण में रचनात्मक कार्य किये जा सकें। शिखर बैठकें इस प्रकार के रचनात्मक विचार-विमर्श के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

---

1. फॉरन अफेयर्स रिपोर्टस, आई सी डब्ल्यू ए नई दिल्ली, जनवरी, 1989, वाल्यूम 38, नं० 1, पृ० 16.

मार्क का जन्म अत्यन्त उच्च इच्छाओं की पूर्ति के लिए हुआ है, जिनमें शान्ति का विकास करना, क्षेत्र में स्थायित्व लाना, मेल-मिलाप बढ़ाना, परस्पर सम्मान के साथ क्षेत्र का विकास करना, प्रभुत्व सम्पन्नता तथा क्षेत्रीय अखण्डता बनाये रखना, राजनीतिक स्वतंत्रता सुरक्षित रखना, एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना तथा परस्पर समान लाभ के लिए कार्य करना आदि उद्देश्यों का समावेश किया गया है। इन सबके लिए सार्क की सीमा के अन्दर ही परस्पर स्वीकृति प्राप्त कुछ मानक निर्धारित करके राजनीतक पर्यावरण को विकसित करना अधिक लाभदायक होगा, जिससे कि क्षेत्रीय व राष्ट्रीय समस्याएँ आसानी से हल हो सकें। सार्क के भविष्य के लिए द्विपक्षीय समस्याओं का बाधक होना उसकी शान्ति के माग्र में सबसे बड़ी रुकावट है, किन्तु धैर्य, साहस और राजनीतिक इच्छा से इन समस्याओं को हल कर लेना कठिन नहीं है। वस्तुत: क्षेत्रीय सहयोग अधिकांशत: द्विपक्षीय सम्बन्धों पर ही निर्भर करता है। क्षेत्रीयता की शक्ति समस्याओं को कम करने में सहायक होती है।

यद्यपि सार्क के सदस्य देश निर्गुट आन्दोलन के सदस्य हैं, किन्तु फिर भी महाशक्तियों के प्रभाव में आकर कछ देश अलग रेने का प्रयास करते हैं। जो उचित नहीं है। सार्क के सदस्य राज्यों को उसके सिद्धान्तों एवं नीतियों का पालन करना चाहिए। क्षेत्र की बात करते समय निर्गुट आन्दोलन के सिद्धान्तों का विशेष महत्व हो जाता है। कुमार खड्ग शाह के अनुसार दक्षिण एशिया क्षेत्र के सुरक्षा के वातावरण में तीन प्रकार के परिवर्तन हुए दिखाई देते हैं—(1) दक्षिण एशिया क्षेत्र बाहरी शक्तियों के साथ शक्ति सन्तुलन बनाये रखने में सहायक हुआ है, (2) राजनीतिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टि से अपनाये गये सम्बन्धों में किसी न किसी रूप में दो प्रकार की विचारधारायें मौजूद हैं, (3) नाभिकीय परमाणु अस्त्रों के बहिष्कार तथा उनके उत्पादन को रोकने सम्बन्धी विचारधारा का विकास।[1]

इन परिवर्तनों को ठोस रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि विश्व की महान शक्तियों पर कोई विचार थोपने के पहले दक्षिण एशिया के क्षेत्रों को अपना गतिरोध दूर करना चाहिए, ताकि

1. इनागरल ऐड्रेस इन रीजनल सिक्योरिटी इन साउथ एशिया, ऐडिटेड बाई श्रीधर के० खत्री, काठमाण्डू, 1987, पृ० 21.

अपने क्षेत्र में छोटे राज्यों के अस्तित्व को पुर्षतः सुरक्षा प्रदान करना चाहिए। इसके साथ ही क्षेत्र के सदस्य राज्यों को आर्थिक विकास के लिए तीव्र इच्छा, आन्तरिक एकता तथा सुरक्षा व्यवस्था को बढ़ाना होगा। इस उद्देश्य के लिए अपनी वैदेशिक नीति में अनुकूल परिवर्तन करके रुकावटों को दूर करना होगा।[1]

सार्क का भविष्य विश्व की महाशक्तियों के क्रियाकलापों को दक्षिण एशिया के क्षेत्र से दूर रखने पर निर्भर करता है। साथ ही क्षेत्रीय सुरक्षा की स्थापना में छोटे राज्यों के व्यवहार तथा भारत के दायित्व का भी प्रमुख स्थान है, क्योंकि किसी भी क्षेत्र पर किसी भी महाशक्ति का प्रभाव पूरे क्षेत्र के प्रभुत्व को कम करता है। सार्क के सदस्य राज्य सम्भवतः इस बाहरी प्रभाव को रोक पाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। बाहरी शक्तियों के प्रभाव को समाप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं—

1. सार्क के सदस्य राज्यों में एकता और विश्वास, शान्ति की तकनीक, सैनिक व्यय में कमी, प्रचार साधनों को प्रोत्साहन, नकारात्मक प्रतिक्रियाओं पर रोक, आत्मनिर्भरता हेतु आर्थिक सहयोग एवं ऊर्जा के साधनों का उचित उपयोग, खाद्य पदार्थों तथा तकनीकी ज्ञान की समुचित साझेदारी आदि के सहयोग में दृढ़ता लाना आवश्यक है।
2. द्विपक्षीय मुद्दों को महाशक्तियों के सहयोग से सुलझाने के स्थान पर सार्क के मंच से ही सुलझाया जाय।
3. क्षेत्रीय संगठन के विरुद्ध कार्यवाही करने की धमकी देने अथवा सैनिक बल का प्रयोग करने पर उस देश के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध तथा अन्य प्रभावी प्रतिबन्ध लगाया जाय।
4. नागरिकों तथा राज्यों के अधिकारों की रक्षा तथा मतभेदों के समाधान के लिए क्षेत्रीय पंचायतों की स्थापना की जाय।

1. सी० पी० श्रेष्ठ, सार्क ऐन इकनॉमिक पर्सपेक्टिव सी० एन० ए० एस०, काठमाण्डू, 1988, पृ० 93

5. वाह्य आक्रमणों का सामना करने हेतु सदस्य देशों द्वारा सामूहिक उत्तरदायित्व का निर्वाह किया जाय।[1]

उपर्युक्त उपाय तभी सार्थक होंगे जबकि सार्क के सदस्य देशों में राजनीतिक इच्छा सुदृढ़ हो, तथा पारस्परिक सहयोग के माध्यम से परस्पर विश्वास का वातावरण बनाने का मार्ग प्रशस्त हो और क्षेत्र के भावी विकास के लिए सार्क संविधान के अनुरूप लिए गए संकल्पों को पूर्ण करने हेतु प्रभावशाली पर्यावरण का निर्माण हो।

---

1. हमीद एच० खिजिलबंश, दि सुपरपावर्स एण्ड सार्क'', पाकिस्तान होराइजन, कराची, जनवरी, 1989 वाल्यूम 42, नं० 1, पृ० 90-92.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अप्पदोराय एवं राजन, 'इंडियाज फॉरेन पॉलिसी एण्ड रिलेशंज, नई दिल्ली, 1985

2. उपाध्याय, एस० के० राइट ऑफ ट्रान्जिर, राइजिग, नेपाल

3. कौशिक, देवेन्द्र इंडियन ओशियन : एज ए जोन ऑव पीस, नई दिल्ली, 1972

4. कपूर एवं विलसन, फॉरेन पालिसीज ऑव इंडिया एण्ड हर नेवरज, लन्दन, 1996

5. कोहली, अतुल, डेमोक्रेसी एण्ड डिस्कन्टेन्ट : इंडियाज ग्रोइंग क्राइसिस ऑव गवर्नेबिलिटी, न्यूयार्क, 1990

6. कोहली, एस० एन० सी० वाकर एंड दी इंडियन ओसन, नई दिल्ली, 1978

7. कुमार, सुरेश, 'प्रोबलम ऑव न्यूक्लियर प्रोलिफिरेशन इन साउथ एशिया : ए स्टडी ऑव इण्डियाज मिजाईल डेवलपमेंट प्रोग्राम, कुरुक्षेत्र, 1996

8. खन्ना, वी० एन०, भारत की विदेश नीति

9. खण्ड जे० डी०, नेपाल्स रिलेशन्स, कोआपरेशन एण्ड पीस, काठमाण्डू, 1984

10. खिलानी, एन० एम० सार्क, फोरम फॉर ग्रोथ, दि ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, 1986.

11. गुप्ता, सिसिर, कश्मीर : ए स्टडी इन इंडिया-पाकिस्तान, रिलेशंज, बम्बई, 1996

12. गांगुली, सुमीत, दॉ ओरिजन ऑव वार इन साउथ एशिया : दॉ-इण्डो पाकिस्तानी कनफ्लिक्ट सिन्स, 1947, बोल्डर, 1986

13. गुणारतना, रोहन, इंडियन इन्टरवेनशन इन श्रीलंका : दॉ रोल ऑव इण्डियाज इन्टेलीजेन्स, एजेन्सीज, कोलम्बो, 1993

14. गुप्ता, रंजन, दी इंडियन ओसन : द पॉलिटिकल ज्योग्राफी, दिल्ली, 1969

15. घोस , पार्थ, कोऑपरेशन एण्ड कॉनफ्लिक्ट इन साऊथ एशिया, नई दिल्ली, 1989

16. चोपड़ा सुरेन्द्र, पाकिस्तान : कानफलिक्ट एण्ड कॉपरेशन, ईयर बुक ऑन इण्डियाज फॉरेन पालिसी, नई दिल्ली, 1986

17. ठाकुर, रमेश, दॉ पालिटिक्स एण्ड इकोनोमिक्स ऑव इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, दिल्ली 1994

18. थपलियाल संगीता, ट्रिटी ऑन शेयरिंग ऑव दॉ गंगा एट फरक्का, स्ट्रेटेजिक ऐनेलिसिस, 1997

19. थॉमस, जी० सी०, साउथ एशियन स्कोरिटी इन दॉ नाईनटिन नाइनटीज, लन्दन, 1993

20. दत्त, वी० पी० इंडियाज फॉरेन पालिसी, नई दिल्ली, 1987

21. दुआ, एच० के० रीजनल रियलिटीज, दि इण्डियाज एक्सप्रेस नई दिल्ली, 1983

22. परसाई भारत कुमार दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग, ललितपुर

23. पाठक, जी० के० रीजनल कोआपरेशन इन साऊथ एशिया, इंडियन जनरल ऑफ नेपालीज स्टडीज सेन्टर फार स्टडी ऑफ नेपाल, वाराणसी, 1987

24. पानिक्कर, के० एम०, इंडिया एंड दी इंडियन ओसन, बम्बई, 1972

25. प्रकाश, बुद्ध, इण्डिया एण्ड दॉ वर्ल्ड, होशियारपुर, 1964

26. फडनीस, उर्मिला, मालदीव्स, वाइन्ड्स आफ चेन्ज इन ऐन ए टाल स्टेट, नई दिल्ली, 1985

27. बहादुर, कलीम, इंडिया-पाकिस्तान रिलेशंज, ईयर बुक ऑन इंडियाज फॉरेन पालिसी, नई दिल्ली, 1988

28. ब्रेचर, माइकेल, नेहरू : ए पॉलिटिकल बायोग्राफी, लन्दन, 1959

29. मुनी एस०डी०, पेंगज ऑव प्रोक्सीमिटी, नई दिल्ली, 1993

30. मुनी, एस० डी०, इंडिया-नेपाल ए चेजिंग रिलेशन्सशिप, नई दिल्ली, 1992

31. यादव, आर० एस० इंडिया एण्ड इण्डियन ओशियन इन दॉ नाईनटीज, एशियन प्रोफाईल (हांगकांग) 1992

32. राजन, एम० एस० इण्डियाज फॉरेन रिलेशन्ज ड्यूरिंग नेहरू ईरा : सम स्टेडिज, नई दिल्ली, 1976

33. राना, मधुकर शमशेर, इकोनॉमिक डाइमेन्शन ऑफ रीजनल कोआपरेशन : ए स्ट्रेटेजिक पर्सपेक्टिव, रीजनल सिक्योरिटी इन साऊथ एशिया, काठमाण्डू, 1987

34. रे, जयन्त कुमार, ईशयुज इन इण्डिया-बांग्लादेश रिलेशन्स, नई दिल्ली, 1987-88

35. रावत, पी० सी० इन्डोनेपाल इकोनामिक रिलेशन्ज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1975

36. रेग्मी एम० सी० लैण्ड ओनरशिप इन नेपाल, बर्कले, 1979

37. वन्डर्स विलियम जे० इंडिया पाकिस्तान एण्ड द ग्रेट पावर्स, लन्दन, 1972

38. वर्मा, एस० पी० एवं मिश्र, फॉरेन पालिसिज इन साऊथ एशिया, ओरियेन्ट लांगमैन, न्यू दिल्ली, 1969

39. वाजपेयी के० पी० ब्रासटेल एण्ड बियोन्ड प्रस्पेसनज एण्ड मैनेजमेंट ऑव क्राईसिस इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, 1995

40. सिंह, नगेन्द्र, भूटान ए किंगडम इन हिमालयाज, नई दिल्ली, 1972

41. सिंह जसजीत, यूनाइटेड नेशंस पीस कीपिग आपरेशनज : दॉ चैलेंज ऑव चेंज, स्ट्रेटेजिक ऐनेलिसिज, 1996.

सरकारी स्त्रोत एवं अन्य

- भारत सरकार पुनर्वास मंत्रालय रिपोर्ट 1951-52, 1957-58
- एशियन रिकार्डर
- एशियन सर्वे
- बी० बी० वर्ल्ड सर्विस
- भारत सरकार विदेशमंत्रालय वार्षिक रिपोर्ट
- फॉरेन अफेयर्स रिकार्ड
- यूनाइटेड नेशन्स, वीकली बुलेटिन, न्यूयार्क, 1949
- विश्व के आर्थिक और राजनीतिक भूगोल की रूपरेखा, प्रगति प्रकाशन, मास्को
- रीजनल स्टडीज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, एडीनबर्ग, इंग्लैण्ड, 1986

- सार्क पर्सपेक्टिव, एडीटेड एण्ड पॅब्लिस्ड बाई सेक्रेटियेट ऑफ दी साऊथ एशियन एसोसिएशन फॉर रिजनल कोआपरेशन, काठमाण्डू, 1987
- यूनाइटेड नेशन्स, वीकली बुलेटिन न्यूयार्क

समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ

- दि हिन्दू, मद्रास
- संडे टाइम्स ऑव इण्डिया, नई दिल्ली,
- हिन्दू मद्रास
- आउट लुक, नई दिल्ली
- राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ
- दि टाइम्स ऑव इंडिया, नई दिल्ली
- दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली
- फ्रन्टलाइन, नई दिल्ली
- दि पैट्रियाट, नई दिल्ली
- दि ट्रिब्यून, चण्डीगढ़
- स्टेट्समैन वीकली, नई दिल्ली
- इंडिया टूडे, नई दिल्ली,
- इंडियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली
- नव भारत टाइम्स, नई दिल्ली
- दि नेशनल हेराल्ड, नई दिल्ली
- आज, वाराणसी
- दि अमृत बाजार पत्रिका, कलकत्ता